पलासी का युद्ध

[BATTLE OF PLASSY]

अर्थात्

भारत में अंगरेजी राज कायम

होने का इतिहास

लेखक

गिरिधर शुक्ल

प्रकाशक

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४१६, अहियापुर

इलाहाबाद

दूसरी बार]   जनवरी १९५५   [मूल्य ५)

प्रकाशक—

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४१६, अहियापुर,

इलाहाबाद

मुद्रक

भोलानाथ जायसवाल

जनता प्रेस

सालिगगंज रोड, मुट्ठीगंज प्रयाग।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी व डा० ईश्वरी प्रसाद के मत

—:ॐ:—

"पलासी का युद्ध" नाम की पुस्तक का मैंने सिंहावलोकन किया। यह पुस्तक सुप्रसिद्ध कुछ अँग्रेजी तथा फारसी ग्रन्थों के आधार पर लिखी गई है। प्रस्तुत सामग्री के प्रयोग में लेखक ने कुशलता का अच्छा प्रदर्शन किया है। वर्णन शैली में प्रवाह एवं रोचकता है जिससे पढ़ने में आनन्द आता है। जिस युग की घटनाओं का पुस्तक मे वर्णन है वह नैतिक पतन के लिये प्रसिद्ध है, अँग्रेज हों चाहे हिन्दुस्तानो सभी स्वार्थपरता,: धूर्तता, अदूरदर्शिता, लोभ तथा नीचता के शिकार बन गये थे, यदाकदा कोई उदात्त और भावों का व्यक्ति दिखाई दे जाता था। दुष्टों के युग में अनुपातत: मीरजाफर, अमीचन्द आदि प्रमुख दुष्ट और स्वार्थान्ध थे। कुटिल किन्तु चतुर क्लाइव ने भी अवसर देख कर अपने दाँव लगाये और सफलता प्राप्त की, जिससे उसको तथा उसके सहयोगियों को तो सर्वथा लाभ ही हुआ उसके देश और जाति की समृद्धि का मार्ग भी खुल गया। उस अकथनीय कथा का लेखक ने ऐसा सुपाठ्य और रोचक वर्णन किया है जो साधारण पाठक को कुतूहल और आनन्ददायक होगा। इतिहास के विद्यार्थियों को यह पुश्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

प्रयाग
१२-५-५० }

रामप्रसाद त्रिपाठी

प्रयाग विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के प्रधान और प्रसिद्ध इतिहासकार डा० ईश्वरी प्रसाद जी लिखते हैं :—

प्लासी का युद्ध भारतीय इतिहास की एक रोमांचकारी एवं महत्वपूर्ण घटना है। इसी युद्ध के बाद हमारे देश में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हुई। जगत सेठ तथा जमींदारों के षड़यन्त्रों का इस पुस्तक में रोचक वर्णन है। अलीवर्दी खाँ की मृत्यु के पश्चात् किस प्रकार सिराजुद्दौला अंगरेजों की कुटिल नीति का शिकार बना इसका लेखक ने मनोरंजक तथा सत्यपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है।

जिस युग में ये घटनायें हुई हैं वह एक धूर्तता, कपट तथा प्रपंच का युग था। भारतीय तथा अँगरेज दोनों ही भ्रष्टाचारी हो रहे थे। जगत सेठ, मीरजाफर, राजबल्लभ, अमीचन्द आदि अपने स्वार्थ में लिप्त थे और अंगरेजों की मदद से सिराजुद्दौला को पदच्युत करने के लिए षड़यन्त्र कर रहे थे। इन षड़यन्त्रों की सफलता क्लाइव की कूटनीति द्वारा हुई। क्लाइव का काम बन गया। बंगाल की राज्यक्रान्ति का इस पुस्तक में हृदयग्राही वर्णन है। इतिहास की इन घटनाओं का लेखक ने निष्पक्षता के साथ प्रदर्शन किया है। हमें आशा है कि यह पुस्तक केवल इतिहास प्रेमियों के लिये ही नहीं वरन् अन्य पाठकों के लिये भी उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रयाग विश्वविद्यालय
१८-१२-५०

ईश्वरी प्रसाद

लेखक की ओर से--

"पलासी का युद्ध" भारत में अंगरेजी राज के समय की एक अत्यन्त रोमांचकारी एव महत्व पूर्ण घटना है। इतिहास के प्रयः सभी विद्वान् पलासी के युद्ध में सिराजुद्दौला की पराजय और अँग्रेजों की विजय से भारत में अंग्रेजी राज का कायम होना मानने हैं। भारत में अंग्रेजी राज कायम होने का इतिहास भी अत्यन्त रहस्य पूर्ण और आश्चर्य-जनक है। वास्तव में सत्रहवीं सदी के आरम्भ में यूरप की अंग्रेज जैसी एक छोटी सी असभ्य, निर्धन एवं निर्बल कौम का एक कम्पनी के रूप में व्यापार करने के अभिप्राय से यहाँ आकर भारत जैसे सभ्य, सुसम्पन्न और शक्तिशाली देश पर अपना प्रभुत्व और इतना बड़ा साम्राज्य कायम कर लेना कम आश्चर्य की बात नहीं है। नीचे सक्षेप में हमने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उस समय की कूटनीति, उनके वीभत्स, घृणित एवं अन्याय पूर्ण कार्यों का जो उल्लेख किया है, पाठको को उसका विस्तृत वर्णन अनेक अंग्रेजी पुस्तको के प्रमाण सहित इस पुस्तक में देखने को मिलेगा।

सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में अंगरेज जैसी एक कौम के साथ भारत जैसे प्राचीन देश का पहली बार सम्पर्क हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के बाद प्रायः सौ वर्ष तक वे यहाँ केवल थोड़े बहुत व्यापार के द्वारा धन कमाते रहे। अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में औरङ्गजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य की निर्बलता का समय आया। सौ साल के भीतर इन विदेशियों की लालसा और आकांक्षा काफी बढ़ चुकी थी। न्याय अन्याय या ईमानदारी बेइमानी का कोई विचार उस समय उनकी आकांक्षाओं और उनकी पूर्ति के उपायों में बाधा पहुँचाने वाला न था। व्यापारी कोठियों के बहाने इन लोगों ने किले बन्दी आरम्भ कर दी। उदार भारतीय नरेशों ने इस पर जरा भी ध्यान न दिया। देश में व्यापार की उन्हें खुली आज्ञायें और अनेक सुविधायें दी जा चुकी थी। इन विदेशियों (अंगरेजों) का हौसला और बल बढ़ता गया। भारतीय

व्यापार से उचित और अनुचित उपायों द्वारा उन्होंने बेहद धन पैदा किया। धन से फौजें रक्खी गईं फौजों की सहायता से उन्होंने भारतीय नरेशों के आपसी झगड़ों में कभी एक का और कभी दूसरे का पक्ष लेना आरम्भ किया। इस कूटनीति और षड्यन्त्रों द्वारा इन अँगरेज व्यापारियों का बल और भी बढ़ता गया। दिल्ली साम्राज्य की निर्बलता के कारण कोई केन्द्रीय शक्ति उस समय इस समस्त स्थिति को समझने वाली बाकी न रह गई थी। भारतीय नरेशों को एक दूसरे से लड़ा कर इलाके पर इलाका इन विदेशियों के शासन में आता गया और धीरे धीरे करके इन अँग्रेजों ने भारत में इतना बड़ा साम्राज्य कायम कर लिया कि इस देश के समृद्ध और लहलहाते हुए जीवन का अन्त हो गया। औरंगजेब की मृत्यु के कुछ दिन के भीतर ही मद्रास और बङ्गाल में ईस्ट इन्डिया कम्पनी की साजिशें शुरू हो गईं जो बढ़ते बढ़ते औरङ्गजेब की मृत्यु के पचास साल बाद पलासी के मैदान में अपना रंग लाईं। स्वभावत: अँगरेजों का हित इसी में था कि भारतीय जीवन की उस समय की अव्यवस्था को जिस तरह हो सके चिरस्थायी बना दें और राष्ट्रीय ऐक्य की उन कल्याणकर प्रवृत्तियों को जिनका बढ़ना औरंगजेब के समय में रुक गया था फिर से न पनपने दे।

ऊपर लिखे हुए ईस्ट इंडिया कम्पनी के जिन कार्यों का संक्षेप में उल्लेख किया गया है, वही हमारी इस पुस्तक का मूल विषय है। इस पुस्तक में मैंने भारत में अंग्रेजों के आने के बाद के आरम्भ काल से लेकर पलासी युद्ध तथा उसके बाद की कुछ महत्व पूर्ण घटनाओं के एक अंश को अनेक प्रसिद्ध इतिहास लेखकों की प्रामाणित पुस्तक के आधार पर ही लिखने का प्रयत्न किया है। यदि पाठक इसे पसन्द करेंगे मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

प्रयाग
२०-१०-४६

गिरिधर शुक्ल

विषय-सूची

कृतज्ञता प्रकाश

—:o:—

देशी विदेशी जिन प्रसिद्ध विद्वानों की पुस्तक के अध्ययन, आधार और सहायता से यह पुस्तक लिखी गई है, नीचे लिखे उन महानुभावों का लेखक चिर कृतज्ञ है :—

अंग्रेजी

Rise of the Christian Power in India vol. 1 by Major B. D. Basu.

Empire in Asia by W. M. Torrens.

Early Annals of the English in Bengal by D.r C. R. Wilson.

Bengal in 1756—57 by S. C. Hill.

Consideration on Indian Affairs by Bolts.

History of India by James Mill.

Decisive Battles of India by Colonel Malleson.

History of Indostan by Orme-

बंगला

बांगलार इतिहास लेखक—श्रीयुत कालो प्रसन्न वन्धोपाध्याय,
मुर्शिदाबाद काहिनी लेखक—श्रीयुत दिनेश सेन
सिराजुद्दौला लेखक—श्रीयुत अक्षय कुमार मैत्र
क्लाइव चरित्र लेखक—श्रीयुत सत्याचरण शास्त्री

पलासी का युद्ध

—:०::※::०:—

भारत में अंग्रेजों का प्रवेश

पलासी के युद्ध का इतिहास वास्तविक रूप से देखा जाय. तो उस समय की ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अंग्रेज अधिकारियों द्वारा भारतीय नरेशों के साथ किये गये षड्यन्त्रों, साजिशों, दगाबाजियों एवं भारत की भोली-भाली जनता पर किये गये निर्मम अत्याचारों की सच्ची एवं रोमांचक कहानी है। इसलिये पलासी युद्ध के पहले का इतिहास जब कि अंग्रेजों ने भारत में प्रवेश कर अपनी कूटनीति और छल-कपट से इस देश में अपने व्यापार का विस्तार किया और फिर धीरे-धीरे ऐसे उपाय करते गये कि वे अन्त में भारत के मालिक बन बैठे—पाठकों को यह जान लेना आवश्यक है।

इतिहास से विदित है कि अत्यन्त प्राचीन काल से धन-धान्य की दृष्टि से भारतवर्ष संसार का सबसे अधिक धनवान देश माना जाता था। ईसा की अठारहवीं शताब्दी तक यह देश संसार भर के धन-लोलुप व्यापारियों और जातियों के लिए उनकी

लालसा का मुख्यतम पदार्थ बना हुआ था। साथ ही साथ संसार तथा यूरोप की अन्य जातियों के बाजारों और मंडियों में भारत की बनी हुई अनेक प्रकार की उत्तमोत्तम वस्तुएँ दिखाई देती थीं।

सँसार के व्यापारियों को उस समय भारतीय धन और वैभव के ही सुनहले स्वप्न दिखाई देते थे। सच कहा जाय, तो इस भारतीय धन का लालच ही यूरोप-निवासियों को इस देश की ओर खींचकर ले आया। इसीलिए यह मानना ही पड़ता है कि भारत का यह धन और वैभव ही इस देश की समस्त आपत्तियों और पतन का मूल कारण हुआ।

ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोप की जिन अनेक जातियों ने भारत में आकर व्यापार का सिलसिला कायम किया, उनमें सबसे पहला यूरोप निवासी, जिसे इस प्रयत्न में सफलता मिली, पुर्तगाल का रहनेवाला वास्को-दे-गामा नाम का एक नाविक था। उस नाविक का जहाज अनेक स्थानों से होता हुआ मद्रास प्रान्त के मालवार. तट पर कालीकट के पास आकर ठहरा। कालीकट के राजा ने पुर्तगालियों की प्रार्थना पर उन्हें अपने राज्य में रहने और व्यापार करने की अनुमति दे दी।

सन् १५०० ईसवी में पुर्तगालियों ने अपने व्यापार के लिये कालीकट में एक कोठी बनाई। तीन साल के बाद उन्होंने कालीकट के राजा की आज्ञा से अपनी कोठी की किलेबन्दी कर ली और एक फ़ौजी अफसर को किलेदार नियुक्त किया। धीरे-धीरे

कर इन पुर्तगालियों ने किनारे-किनारे उत्तर की ओर बढ़कर गोआ नगर पर अधिकार कर लिया। भोले स्वभाव वाले भारतवासी उस समय इन विदेशियों के वास्तविक चरित्र या इनके जाल-भरे इरादों से बिलकुल अनभिज्ञ थे।

होते-होते सन् १५१० इसवी में पुर्तगालियों का कालीकट के राजा के साथ झगड़ा हो गया। उस झगड़े में पुर्तगालियों ने कालीकट के राजमहल में आग लगा दी और नगर को भी लूट लिया। केवल बारह साल पहले इन परदेसियों पर अनुग्रह करने का भोले भाले उदार राजा को यह फल मिला।

राज्य-शासन की दृष्टि से भारतवर्ष उस समय अनेक छोटी-बड़ी रियासतों में बँटा था, जो एक दूसरे से बहुत कम सम्बन्ध रखती थीं। कोई केन्द्रीय शक्ति इन रियासतों को वश में रखने या देश को एक सूत्र में बाँधने वाली नहीं थीं। मालूम होता है कि इस बात का विचार तक कि भारत एक देश है, इसका उस समय किसी को न था। नतीजा यह हुआ कि अनेक छल-कपट द्वारा सौ-सवा सौ साल के भीतर पुर्तगालियों ने भारतीय व्यापार के द्वारा इतना धन कमाया कि उसे देखकर यूरोप की अन्य जातियाँ दंग रह गईं।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में पुर्तगालियों का भारतीय व्यापार बढ़ने से उनका महत्व और वैभव दिनों दिन बढ़ता जा रहा था। इंगलिस्तान के रहने वाले अंगरेज व्यापारियों को इससे ईर्षा का होना स्वाभाविक था। इंग्लैण्ड में उस समय ब्रिस्टल का

बन्दरगाह व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। यूरोप की प्रत्येक जाति के लोग उन दिनों दूसरी किसी जाति के जहाज को पकड़ कर लूट लेना अपने लिए अपना एक उचित कर्त्तव्य समझते थे।

भारत और एशियाई समुद्रों में भी इन लोगों ने इस तरह की खुली लूट मचा रखी थी। ब्रिस्टल के मल्लाह बहुत पुराने समय से ही प्रसिद्ध समुद्री डाकू गिने जाते थे। सब से पहले ब्रिस्टल के ही एक अंग्रेज व्यापारी ने वहाँ के बादशाह को भारत से व्यापार का सिलसिला कायम करने के लिए रास्ते की खोज करने की सलाह दी थी।

पचासों साल तक इंगलैण्ड के बड़े-बड़े नाविक भारत पहुँचने के लिए काफी प्रयत्न करते रहे। सन् १५७८ ईसवी में इगलिस्तान के जहाज का एक मशहूर कप्तान भारत से लिसबन जानेवाले एक पुर्तगाली जहाज को पकड़ कर लूट रहा था। उस लूट में उसे कुछ ऐसे नकशे मिले, जिनसे अंग्रेजों को पहली बार भारत के उस समय के जल-मार्ग का पता लग गया।

सन् १६०० ईसवी में इंग्लैण्ड की महारानी एलिजेबेथ ने सुप्रसिद्ध "ईस्ट इण्डिया कम्पनी" की स्थापना की। यह कम्पनी कुछ अंग्रेज सौदागरों की एक मण्डली थी, जो भारत के साथ व्यापार करने के लिए पहले से ही उत्सुक थे। यह समझने की बात है कि इस कम्पनी के लिये महारानी ने जो आज्ञा-पत्र इस अवसर पर जारी किया था, उसमें इस कम्पनी को ऐसे साहसी लोगों की कम्पनी कहा गया है, जो बाहर जाकर लूट सट्टे आदि

आदि के द्वारा धन पैदा करने में सच-झूठ, ईमानदारी-बेईमानी अथवा न्याय-अन्याय का कोई विचार नहीं रखते थे।

कम्पनी के संचालकों ने आरम्भ ही में यह बात तै कर ली थी कि "हम किसी जिम्मेदारी के पद पर किसी भले आदमी को न रखेंगे" और महारानी के नाम यह साफ तौर से लिख दिया था कि "हमको अपना कार बार अपने निजी आदमियों के द्वारा ही चलाने की अनुमति होनी चाहिए, क्योंकि कम्पनी के हिस्से-दारों को यदि यह बात मालूम हो जायगी कि हम भले आदमियों को अपने यहाँ नौकर रखेंगे, तो सम्भव है, हमारे बहुत से हिस्से-दार अपने हिस्से वापस ले लेवें।"

यही भारत के अन्दर इन अंग्रेजों की इस 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी" के ढाई सौ साल के कारनामों और समस्त नीति की कुँजी है। इन ढाई सौ साल के भीतर कम्पनी के मालिकों व नौकरों आदि में शायद ही कोई ऐसे कुछ होंगे जिन्हें 'भला' या 'शरीफ' कहा जा सके।

नकशे मिलने के बाद सन् १६०८ ईसवी मे पहला अंगरेजी जहाज भारत पहुँचा। सूरत उस जमाने में भारतवर्ष के व्यापार की एक प्रसिद्ध और खास जगह समझा जाता था। जहाज का कप्तान मिस्टर हाकिन्स सबसे पहला अंगरेज था, जिसने समुद्र के मार्ग से आकर भारत की भूमि पर पैर रखा। इग्लैण्ड के राजा जेम्स प्रथम की ओर से दिल्ली के मुगल सम्राट के नाम हाकिन्स

अपने साथ एक पत्र लाया था। उस पत्र को उसने आगरे पहुँच कर सम्राट जहाँगीर के सामने पेश किया। यह लगभग साढ़े तीन सौ साल पहले की बात है।

उस समय के इंग्लैण्ड के बादशाह के राज्य और भारत के मुगल साम्राज्य की क्षेत्र-फल, आबादी, धन, वैभव व्यापार, कला, कौशल, दस्तकारी खुशहाली, शासन-प्रबन्ध विद्या, बल—किसी बात में भी किसी तरह की बराबरी नहीं की जा सकती। जहाँगीर के दरबार में उस समय किसी को इस बात का ख्याल तक न हो सका था कि यूरोप की एक छोटी-सी निर्बल और असभ्य जाति का जो दूत उस समय दरबार में अत्यन्त दीनता-पूर्वक घुटने टेक कर खड़ा था उसी की औलाद एक दिन मुगल साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भारत के ऊपर शासन करने लगेगी।

सम्राट जहाँगीर ने अंगरेजी दूत मिस्टर हाकिन्स का खूब आदर किया, किन्तु पुर्तगाली पहले ही से दरबार में मौजूद थे। उन्होंने सम्राट जहाँगीर से अंग्रेजों की खूब बुराइयाँ की, लेकिन उदार सम्राट ने इस पर कुछ भी ध्यान न दिया। सन् १६१२ ईसवी में अंग्रेजों ने सूरत के पास कुछ पुर्तगाली जहाजों पर हमला करके उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उसी समय से सूरत में पुर्तगालियों का प्रभाव घटने और अंगरेजों का प्रभाव बढ़ने लगा।

६ फरवरी सन् १६१३ को सम्राट जहाँगीर ने सूरत में अंग्रेजों

को अपना व्यापार करने के लिए एक कोठी बनाने की आज्ञा दे दी और यह भी आज्ञा दिया कि मुगल-दरबार में उनका एक दूत रहा करे। इंगलिस्तान के बादशाह ने सर टामस रो नामक एक होशियार व्यक्ति को अपना पहला दूत चुनकर मुगल-दरबार में भेजा। सर टामस रो सन् १६१५ ईसवी में भारत पहुँचा और उसने अपनी नम्रता और सौजन्य द्वारा सम्राट से अँग्रेजी व्यापार को बढ़ाने के लिये अनेक नई सुविधाएँ प्राप्त कर लीं।

मुगल सम्राट जहाँगीर की ओर से सन् १६१५ ईसवी में अंग्रेजों को कालीकट और मछली पट्टम में कोठियाँ बनाने की आज्ञा मिल गई। उस समय भारत में रहनेवाले अंग्रेज चूँकि भारत सम्राट की प्रजा थे, इसलिए उनमें यदि कोई झगड़ा बखेड़ा उठ खड़ा होता था, तो देशी अदालतों में ही उसका फैसला होता था। अंग्रेजों को प्रार्थना पर सम्राट जहांगीर ने राज्य की ओर से एक आज्ञा इस आशय की जारी कर दिया कि आगे से अँग्रेजी कोठी के भीतर रहनेवाले किसी कर्मचारी के अपराध पर अँग्रेज स्वयं उसका फैसला करके उसे दंड दे सकते हैं! इस बात की आलोचना करते हुए प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहास लेखक टारेन्स मुगल बादशाह के विषय में लिखता है :—

"बादशाह न्यायशील और बुद्धिमान था और उनकी आवश्यताओं को समझता था। उन्होंने जो माँगा, उसने मंजूर कर लिया। उसे यह स्वप्न में भी 'गुमान न हो सकता था कि एक न एक दिन यही अँग्रेज इसी छोटी सी जगह से बढ़ते-बढ़ते बादशाह

की प्रजा और उसके उत्तराधिकारियों तक को दण्ड देने तक का दावा करने लगेंगे। और यदि उनका विरोध किया जायगा, तो प्रजा का संहार कर डालेंगे और बादशाह् के उत्तराधिकारियों को बागी कह कर आजीवन कैद कर लेंगे।"

इसके बाद शाहजहाँ का समय आया। सन् १६३४ ईसवी में बंगाल से पुर्तगालियों को निकालने के बाद शाहजहाँ ने अंग्रेजों को बंगाल में व्यापार करने की आज्ञा दे दी। सन् १६३६ ईसवी में अंग्रेजों ने मद्रास में अपनी एक कोठी कायम की। उन दिनों बँगाल में अंग्रेजों को अन्य देशीय व्यापारी की तरह अपने माल पर चुंगी देनी पड़ती थी और राज्य की ओर से जारी किये गये हुक्म के अनुसार उनके जहाज हुगली के बहुत नीचे पिपली नामक स्थान पर ही रुक जाते थे। हुगली तक जहाज लाने की उन्हें आज्ञा न थी।

सन् १६४० ईसवी में शाहजहाँ की एक लड़की किसी तरह जल गई। उसका इलाज करनेवालों में एक अंग्रेज डाक्टर भी था। शाहजादी अच्छी हो गई। जब इलाज करने वाले को इनाम देने का समय आया तब अंग्रेज डाक्टर की प्रार्थना पर शाहजहां ने बंगाल भर के अन्दर अँग्रेजों के माल पर चुंगी माफ कर दी और उन्हें उस प्रान्त में कोठियाँ बनाने तथा उनके जहाजों को हुगली तक आने की आज्ञा दे दी। इसी आज्ञा के अनुसार सन् १६४० ईसवी में कलकत्ते की कोठी बनी। शाहसुजा उस समय बंगाल का सूबेदार था। उसने सम्राट के जारी किये हुए हुक्म के

अनुसार परदेशी अंग्रेजों का अपना कारबार जमाने में हर तरह की मदद दी।

इसके बाद औरंगजेब का समय आया। बम्बई का टापू जहाँ पर केवल एक छोटी-पुर्तगाली बस्ती थी, सन् १६६१ ईसवी में इंग्लैण्ड के बादशाह को पुर्तगालियों से दहेज में मिला और सन् १६८८ ईसवी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसे अपने बादशाह से खरीद लिया। सन् १६६४ ईसवी के करीब शिवाजी का बल बढ़ने लगा। सूरत के अंग्रेज कोठीवालों ने औरंगजेब को शिवाजी के विरुद्ध मदद देने तथा मुगल साम्राज्य की ओर से सूरत की रक्षा करने का वादा किया। औरंगजेब इस पर प्रसन्न होकर अंग्रेजों को अपना व्यापार बढ़ाने की अनेक तरह की नई सुविधाएँ प्रदान कर दीं।

लेकिन आरम्भ में इन अंग्रेज सौदागरों का चाल-चलन और व्यवहार अत्यन्त गिरा हुआ था। माल से लदे किसी दूसरे कौम के जहाज को पकड़ कर लूट लेना इनके लिये एक साधारण-सा खेल था। स्वयं अपने देश-वासियों के साथ व्यवहार की इनकी यह हालत थी कि किसी के द्वारा यदि इनके व्यापार में कोई बाधा पड़ती थी तो उसे वे मौका पा कर पकड़ लेते थे और या तो उसे कोड़े मार-मार कर मार डालते थे या अपनी कोठी में उसे बन्द करके भूखों मार डालते। भारतवासियों के साथ भी इनका व्यवहार अत्यन्त ज्यादती और बेइमानी का था। सूरत

की कोठी के अंग्रेजों के सम्बन्ध में स्वयं एक अंग्रेज विद्वान फिलिप एन्डरसन लिखता है :—

"ज्यों-ज्यों इन साहसिक लोगों के आने की संख्या बढ़ती गई इनसे अंग्रेज जाति की कोई नेकनामी नहीं बढ़ी। इनमें से बहुत ज्यादा लोग जबरदस्तियाँ और बेईमानियाँ करते थे। × × × हिन्दू और मुसलमान दोनों—अंग्रेजों को गाय खानेवाले और आग पीने वाले नीच दरिन्दे समझते थे और कहते थे कि ये लोग उन बड़े-बड़े कुत्तों से ज्यादा जंगली हैं जिन्हें ये अपने साथ लाते हैं। ये शैतान की तरह लड़ते हैं और अपने बाप के साथ भी विश्वासघात करते हैं। दूसरों से अपना काम निकालने या उनकी चीज ले लेने में ये गोलियों की बौछार या भालों की मार, किसी का भी निर्दयता-पूर्वक उपयोग करने के लिए हर समय तैयार रहते हैं।"

अंग्रेज सब से पहले सूरत में और सब से अन्त में बंगाल पहुँचे, किन्तु वहाँ उनका व्यवहार वैसा ही रहा। प्रसिद्ध इतिहास लेखक सी० आर० विलसन लिखता है :—

"बङ्गाल में भी अंग्रेज अपने झगड़ालूपन के लिए उतने ही बदनाम थे। × × × वहाँ का बूढ़ा सूबेदार नवाब शाइस्ता खाँ उन्हें नीच, झगड़ालू लोगों और चुआ-चोरों की 'कम्पनी' कहा करता था। आजकल कोई जबरदस्त प्रामाणिक इतिहासज्ञ इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि नवाब के पास अपने इस कथन के लिए काफी अच्छे सबूत थे। उस समय के उल्लेखों

की पूरी तरह छानबीन करने के बाद सर हेनरी यूल के दिल पर यह असर पड़ा कि बंगाल की खाड़ी के अन्दर कम्पनी के कर्मचारियों की नैतिक और सामाजिक अवस्था 'निस्सन्देह भयङ्कर थीं।"

कुछ ही दिनों के भीतर खास कर बम्बई में इन अंग्रेज व्यापारियों के अन्याय, अत्याचार इतने बढ़ गये कि सम्राट औरंगजेब के कानों तक उनकी शिकायतें पहुँची। फौरन ही औरंगजेब ने इस तरह की आज्ञा जारी कर दी कि इन लोगों की कोठियाँ जब्त कर ली जाँय और इन्हें मारकर हिन्दोस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। सूरत, बिजगापट्टम आदि कई जगहों की अंग्रेजी कोठियाँ जब्त कर ली गई और वहाँ से अंग्रेजों को निकाल बाहर कर दिया गया, किन्तु वे लोग भी भारत में इतने दिनों रहकर काफी चालाक हो गये थे। फौरन उन्होंने बादशाह के पैरों पर गिरकर अपने पिछले अपराधों को क्षमा कर देने की प्रार्थना की और आगे के लिए नेक-चलनी का वादा किया।

औरंगजेब ने उदारता में आकर और उन पर विश्वास करके माफ कर दिया और सूरत आदि की कोठियाँ जो जब्त कर ली गई थी, उन्हें वापस कर दीं। सन् १६९९ ईसवी में औरंगजेब ने उन्हें कई नई कोठियाँ कायम करने और वहाँ पर अपनी रक्षा के लिए किलेबन्दी तक करने की आज्ञा दे दी। औरंगजेब ही के समय में बंगाल के सूबेदार अजीमशाह ने अंग्रेजों को हुगली नदी के ऊपर सूतानदी, कलकत्ता और गोविन्दपुर नाम

के तीन गाँव बतौर जागीर के कम्पनी को दिये। उसी समय कलकत्ते में फोर्ट विलियम नामक क़िले की बुनियाद डाली गई।

जिस समय आरम्भ में यह किलेबन्दी की जा रही थी, औरंगजेब के पास इसकी खबर पहुँचाई गई और बादशाह को अंग्रेजों की उनकी इस बढ़ती हुई बुरी नीयत को रोकने की सलाह दी गई, पर सम्राट औरंगजेब की दृष्टि में अंग्रेज उस समय एक इतने मामूली तुच्छ चीज कि उनकी कारवाइयों में राज्य की ओर बाधा पहुँचाना कोई आवश्यक बात न समझी गई। इन गरीब बिदेशियों के साथ वह हर तरह से दया और उदारता का ही व्यवहार करना चाहता था।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य की निर्बलता का समय आया। अंग्रेजों को मौका मिला। इनके अत्याचारों ने और भी अधिक गंभीर और भयङ्कर रूप धारण किया। इसी बीच धीरे-धीरे भारत के पूर्वी और पश्चिमी किनारों पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की अनेक कोठियाँ बन गई और भारत में अंग्रेंजी कारबार को अधिक उन्नति करने का काफी अवसर मिला। कम्पनी के हिस्सेदार और छोटे-बड़े नौकर चाकर सभी भारत के धन से मालामाल हो गये।

औरंगजेब की मृत्यु के ठीक पचास साल बाद बंगाल में अंग्रेजी राज की बुनियाद कायम हुई। सबसे अन्तिम यूरोपियन क़ौम जो इस सिलसिले में भारत आई, फ्रान्सीसी थी। फ्राँसीसी या फ्रेंच, फ्राँस देश के रहनेवालों को कहते हैं। अँग्रेजो की ईस्ट

इण्डिया कम्पनी की ही तरह फ्रांसीसियों ने भी ठीक उसी उद्देश्य से भारत में व्यापार करने की इच्छा से सन् १६६४ ईसवी में एक कम्पनी कायम किया और दस साल के भीतर ही भीतर उन्होंने भी सूरत, मछली पट्टम तथा पांडीचेरी में अपनी कोठियाँ बना ली।

फ्रांसीसियों की नीति आरम्भ ही से यह थी कि वे अपने सद्व्यवहार द्वारा भारतीय नरेशों को प्रसन्न करके अपने पक्ष में कर लेने की कोशिश करते थे। फ्रांसीसियों के इन व्यवहारों से अंग्रेजों के दिलों में फ्रांसीसियों के प्रति ईर्षा का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। फल स्वरूप दोनों कम्पनियों में प्रतिस्पर्धा बराबरा जारी रही। ये दोनों कम्पनियाँ इस देश में अपनी-अपनी फौजें रखती थीं और जहाँ कहीं किसी दो भारतीय नरेशों में लड़ाई होती थी, तो एक-एक की और दूसरी दूसरे का पक्ष लेकर लड़ाई में शामिल हो जाती थी। भारतीय नरेशों की सहायता का सहारा लेकर इनका उद्देश्य अपने यूरोपियन शत्रु को समाप्त करना होता था। बङ्गाल में भी फ्रांसीसियों ने चन्द्रनगर में अपनी कोठी कायम कर अपने व्यापार का फैलाव आरम्भ कर दिया था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पाप

सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में अंगरेज जैसी कौम के साथ भारत जैसे प्राचीन देश का पहली बार सम्पर्क हुआ। प्राय: सौ साल तक देश में वे केवल थोड़ा-बहुत व्यापार कर धन कमाते रहे। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में औरङ्गजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य की संहति में फरक पड़ा। सौ साल के भीतर इन विदेशियों की लालसा और आकांक्षा बेहद बढ़ चुकी थी। न्याय, अन्याय या ईमानदारी, बेईमानी का कोई ख्याल उस समय उनकी इच्छाओं की पूर्ति के उपायों मे बाधा डालने वाला न था।

तिजारती कोठियों के बहाने उन लोगों ने किलेबन्दी आरम्भ कर दी। उदार भारतीय नरेशों ने इसकी जरा भी पर्वाह न की। देश में व्यापार की उन्हें आज्ञाएँ और सुविधाएँ दी जा चुकीं। इन विदेसियों का बल बढ़ता गया। भारतीय व्यापार से उचित और अनुचित उपायों से उन्होंने बेहद धन कमाना आरम्भ किया। धन से फौजें रखी गईं। फौजों की सहायता से उन्होंने मद्रास और बङ्गाल में भारतीय नरेशों के आपसी

झगड़ों में कभी एक का और कभी दूसरे का पक्ष लेना आरम्भ किया।

इस कूट-नीति और इन चालों से इन अंग्रेजों का बल और भी बढ़ता गया। दिल्ली साम्राज्य की निर्बलता के कारण कोई केन्द्रीय शक्ति इस समस्त स्थिति को समझने और इसका उपाय करने वाली बाकी न रह गई थी। भारतीय नरेशों को एक दूसरे से लड़ाकर इलाके पर इलाका इन विदेशियों के अधिकार में आता गया।

अब हम कुछ अंगरेज इतिहास लेखकों ही के विचार इस विषय में देना चाहते हैं कि मोटे तौर पर किन-किन उपायों द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी ने धीरे-धीरे करके भारत में इतना बड़ा साम्राज्य कायम कर इस देश के उस समय के समृद्ध और लहलहाते जीवन का अन्त कर दिया। एक अंगरेज इतिहास लेखक डाक्टर रसल लिखता है:—

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारतीय शासन को आरम्भ से ही बड़े-बड़े पापों ने कलुषित कर रखा था।······लगातार अनेक पीढ़ियों तक बड़े स बड़े सिविल और फौजी अफसरों से लेकर कम्पनी के छोटे-छोटे कर्मचारियों तक का एक मात्र महान् लक्ष्य और उद्देश्य यही रहता था कि जितनी जल्दी हो सके और जितनी बड़ी से बड़ी पूँजी हो सके, इस देश से निचोड़ ली जाय और फिर अपना मतलब होते ही सदा के

लिए इस देश को छोड़ दिया जाय।······यह बात बिलकुल सच्चाई के साथ कही गई है कि······पराजित प्रजा को अपने बुरे से बुरे और अय्याश देशी नरेशों के बड़े-बड़े अपराध इतने घातक मालूम न होते थे जितने अंग्रेज कम्पनी के छोटे से छोटे अपराध।"

प्रसिद्ध अङ्गरेज विद्वान् हरबर्ट स्पेन्सर पिछले करीब सौ साल के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारतीय शासन का सिंहावलोकन करते हुए लिखता है:—

"पिछली सदी में भारत में रहने वाले अङ्गरेज जिन्हें बर्क ने 'भारत में शिकार की गरज से जाने वाले फसली परिन्दे' बतलाया है अपने मुकाबले के पेरू और मेक्सिको निवासी यूरोपियनों* से कुछ ही कम जालिम साबित हुए। कल्पना कीजिये कि डाइरक्टरों तक ने यह स्वीकार किया है कि 'भारत के आन्तरिक व्यापार में जो बड़ी-बड़ी पूँजियाँ कमाई गई हैं, वे इतने जबरदस्त अन्यायों और अत्याचारों द्वारा प्राप्त की गई हैं, जिनसे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी देश या

---

*जिन्होंने वहाँ के लाखों आदिम निवासियों को अङ्ग-भङ्ग कर के और उनका शिकार खेल-खेल कर उन्हें निर्मूल कर दिया।

लेखक

किसी जमाने में भी सुनने को नहीं आये ।' अनुमान कीजिये कि वन्सीटार्ट ने समाज की जिस दशा को बयान किया है वह कितनी बीभत्स रही होगी जब कि वन्सीटार्ट हमें बतलाता है कि अंग्रेज भारतवासियों को विवश करके जिस भाव चाहते थे, उनसे माल खरीदते थे, उनके हाथ बेचते थे, और जो कोई इन्कार करता था उसे बेत या कैदखाने की सजा देते थे। विचार कीजिए कि उस समय देश की क्या हालत रही होगी जब कि अपनी किसी यात्रा को बयान करते हुए वारन हेस्टिंग्स लिखता है कि, 'हमारे पहुँचते ही अधिकाँश लोग छोटे छोटे कसबों और सरायों को छोड़-छोड़ कर भाग जाते थे।' कम्पनी के इन अंग्रेज अधिकारियों की निश्चित नीति ही उस समय यह थी कि बिना किसी कारण के देशवासियों के साथ दगा की जाय । देशी नरेशों को धोखा देकर उन्हें एक दूसरे से लड़ा दिया गया। पहले उनमे से किसी एक को उसके विपक्षी के विरुद्ध मदद दी गई और फिर किसी न किसी दुर्व्यवहार का बहाना लेकर उसी को तख्त से उतार दिया गया। जिन मातहत सरदारों के पास इस तरह के इलाके होते थे, जिन पर कम्पनी के अधिकारियों के दाँत होते थे, उनसे बड़ी-बड़ी अनुचित रकमें बतौर खिराज के लेकर उन्हे निर्धन कर दिया जाता था और अन्त में जब वो इन माँगों को पूरा करने मे असमर्थ हो जाते थे तो किसी संगीन जुर्म के दण्ड स्वरूप उन्हें गद्दी से उतार दिया जाता।"

विलियम हाविट नामक एक अङ्गरेज लिखता है:—

"जिस तरीके से ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत पर अधिकार किया, उससे अधिक बीभत्स और ईसाई सिद्धान्तों के विरुद्ध किसी दूसरे तरीके की कल्पना तक नहीं की जा सकती। ...यदि कोई कुटिल से कुटिल तरीका हो सकता था—जिस पर नीच से नीच अन्याय की कोशिशों पर न्याय का बढ़िया मुल्लमा फेरने की कोशिश की गई हो—यदि कोई तरीका अधिक से अधिक निष्ठुर, क्रूर, गर्वयुक्त और दयाशून्य हो सकता था, तो वह तरीका है जिससे भारतवर्ष की अनेक देशी रियासतों का शासन देशी राजाओं के हाथों से छीनकर ब्रिटिश सत्ता के चंगुल में इकट्ठा कर दिया गया है।······जब कभी हम दूसरी कौमों के सामने अंग्रेज कौम की सच्चाई और ईमानदारी की बात कहते हैं तो वे भारत की ओर इशारा करके खूब हिकारत के साथ हमारा खूब मजाक उड़ाते हैं।...जिस तरीके पर चल कर लगातार सौ साल के ऊपर तक देशी राजाओं से उनके इलाके छीने जाते रहे, और वह भी न्याय और औचित्य की पवित्रतम आड़ में, उस तरीके से बढ़कर दूसरों को यन्त्रणा पहुँचाने का तरीका राजनैतिक या धार्मिक किसी मैदान में किसी भी जालिम हुकूमत ने कभी पहले ईजाद न किया था; संसार में उसके मुकाबले की कोई दूसरी मिसाल नहीं मिल सकती।"

एक और अंग्रेज विद्वान् लिखता है:—

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बंगाल का राज या अरकाट

का राज या दूसरे किसी भी प्रान्त का राज और किन उपायों से प्राप्त किया, सिवाय झूठी कसमें खाने और जालसाजियाँ करने के ?"

इससे अधिक अङ्गरेज विद्वानों की राय इस विषय में देने की आवश्यकता नहीं है। सन् १७५७ से १८५७ तक सौ साल के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में भारतीय सिपाहियों का अपने देश और देशवासियों के विरुद्ध सच्चाई के साथ अपने अङ्गरेजी अफसरों की आज्ञा का पालन करना, भारतीय नरेशों का कम्पनी के अङ्गरेज अधिकारियों के साथ सन्धियों की शर्तों को ईमानदारी से निबाहना; अङ्गरेजों का बार-बार जान-बूझकर अपनी तरफ से की गई सन्धियों और वादों को तोड़ना, देशी रियासतों के यूरोपियन नौकरों का पद-पद पर अपने मालिकों के साथ विश्वासघात करना, अङ्गरेज रेजिडेंटों का देशी दरबारो में रहकर वहाँ फूट डलवाना, रिश्वतें देना, गुप्त साजिशें करना, हत्याएँ कराना और जालसाजियाँ करना, देशी नरेशों का ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ 'सन्धि और 'मित्रता' के जाल में एक बार फँस कर उससे बिना अपना मान और सर्वस्व दिये बाहर न निकल सकना, ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अपनी निर्धारित नीति के अनुसार भारत के हजारों साल के उन्नत व्यापार और उद्योग धन्धों का नाश कर डालना और इन सब के नतीजे में भारत का सौ सवा साल के भीतर संसार के सब से अधिक प्रबल, उन्नत और सम्पन्न देशों की

श्रेणी से निकल कर सब से अधिक निर्बल, अवनत और दरिद्र देशों की श्रेणी तक पहुँचा दिया जाना आदि—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पाप और कलङ्क की अत्यन्त दुखकर कहानी इस पुस्तक के त्रिविध अध्यायों में आगे बयान की जायगी।

अलीवर्दी खाँ

सन् १७०७ ईसवी में सम्राट् औरङ्गजेब के मरने के बाद मुगल साम्राज्य के पतन का समय आया। औरङ्गजेब के बाद ही दिल्ली की राज्य-शक्ति का घटना आरम्भ हो गया। चारों ओर छोटे-छोटे राज्य साम्राज्य से टूट-टूट कर अलग होने लगे और अनेक प्रान्तों के सूबेदार नाम मात्र को साम्राज्य के अधीन रहे, किन्तु वास्तव में अपने-अपने राज्यों के स्वतंत्र शासक बन गये।

बङ्गाल की राजधानी मुर्शिदाबाद में नवाब अलीवर्दी खाँ इस समय मुगल सम्राट के अधीन बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा—तीनों प्रान्तों का सूबेदार था। सरफराज खाँ के पिता शुजा खाँ की नवाबी के जमाने में हाजी मोहम्मद और अलीवर्दी खाँ नामक दो विद्वान् और प्रतिभाशाली व्यक्तियों का राज दरबार में बड़ा मान था ये दोनों व्यक्ति नवाब शुजा खाँ की दाहिनी भुजा होकर पहले मुर्शिदाबाद के मंत्रिमंडल में, उसके बाद उड़ीसा और पटना की राजधानी में रहकर राज्य का कार्य करते थे।

अलीवर्दी खाँ पटना का नवाब प्रसिद्ध था। उसके अच्छे व्यवहार से लोग उसी को राज-सिंहासन पर बैठाना चाहते थे।

इस गुप्त बात की खबर पाकर सरफराज खाँ ने पटने की ओर कूच किया और अलीवर्दी खाँ ने बादशाह का फर्मान पाकर मुर्शिदाबाद की ओर कदम बढ़ाया। रास्ते में गिरिया के मैदान में दोनों नवाबों में लड़ाई हुई। इस लड़ाई में सरफराज खाँ मारा गया और अलीवर्दी खाँ राज-सिंहासन पर बैठा।

अलीवर्दी खाँ हिन्दू, मुसलमान सभी का प्रीति-पात्र था। वह सरल-स्वभाव, शान्त उत्साहशील, न्यायपरायण और धर्मात्मा नवाब था। वह हिन्दुओं पर विशेष श्रद्धा रखता था। लोग कहते हैं कि जब वह पटने का नवाब था, उसी समय एक हिन्दू साधु ने अलीवर्दी खाँ के राज- सहासन पाने की भविष्य-वाणी की थी। मूल कहानी जो कुछ भी हो, किन्तु इतिहास से तो यह स्पष्ट है कि अलीवर्दी खाँ, बापू देव शास्त्री और उनके शिष्य महाराज नन्दकुमार पर बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखता था। अलीवर्दी खाँ के कोई पुत्र नहीं था। इसीलिए उसकी मृत्यु के बाद ऊसका नाती सिराजुद्दौला बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की राजगद्दी पर बैठा।

अलीवर्दी खाँ के समय में बङ्गाल तेरह प्रान्तों और एक हजार छः सौ आठ परगनों में विभाजित था। ये परगने जमींदारों के अधिकार में थे। वे लोग अपने बाहु-बल से स्वयं अंपने राज्य का प्रबन्ध करते थे। प्रत्येक प्रान्त का शासक एक हिन्दू अथवा मुसलमान होता था, जिसे फौजदार कहते थे। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय बङ्गाल की समस्त प्रजा

अलीवर्दी खाँ के शासन में अत्यन्त सुखी और खुश हाल थी। उस समय के किसानों की हालन के विषय में अंग्रेज इतिहास लेखक एस० सी० हिल लिखता है:—

"मैं समझता हूँ, सामाजिक इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी को स्वीकार करना होगा कि अठारहवीं सदी के मध्य में बंगाल के किसानों की हालत उस समय के फ्राँस अथवा जर्मनी के किसानों की हालत मे कहीं बढ़कर थी।"

यह उस समय के गाँवों की हालत थी। अब यदि उस समय के शहरों की हालत को देखा जाय, तो बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद के विषय में स्वयं प्रसिद्ध सेनापति क्लाइव लिखता है:—

"मुर्शिदाबाद का शहर उतना ही लम्बा, चौड़ा आबाद और धनवान था जितना कि लन्दन का शहर। केवल अन्तर इतना है कि लन्दन के अमीर से अमीर आदमी के पास जितनी दौलत हो सकती है उससे कहीं ज्यादा दौलत मुर्शिदाबाद में अनेक के पास है।"

हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ सूबेदार के व्यवहार में किसी तरह का भेद-भाव नहीं था। सूबेदार के अधीन तीनों प्रान्तों में अधिकाँश रियासतों का शासन हिन्दू राजाओं के हाथ में था। मुर्शिदाबाद के दरबार में अनेक ऊँचे से ऊँचे पद हिन्दुओं को मिल हुए थे। एस० सी० हिल लिखता है:—

"देश का व्यापार तथा दस्तकारियाँ लगभग सभी हिन्दुओं के ही हाथों में थी।"

दक्षिण में मराठों की शक्ति उस समय काफी बढ़ रही थी और बंगाल जैसे समृद्धशाली देश को विजय करने का विचार उनके दिलों में बराबर बढ़ता जा रहा था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली के शाहा दरबार की शक्ति कमजोर पड़ जाने से सन् १७४० ईसवी में मराठों ने बंगाल पर जोरदार हमले शुरू कर दिये। वीरभूमि और उड़ीसा के पहाड़ों और नदियों को पार कर हजारों मराठों के दल के दल बड़ी तेजी से बंगाल की छाती पर टूटने लगे।

अलीवर्दी खाँ ने इन हमलों से अपने सूबों की रक्षा करने के लिए दिल्ली के शाही दरबार से सहायता करने की प्रार्थना की, किन्तु वहाँ से उसे किसी प्रकार की सहायता न मिल सकी। मजबूर होकर नबाब अलीवर्दी खाँ ने दिल्ली को सालाना मालगुजारी भेजना बन्द कर दिया, किन्तु फिर भी वह अपने तईं सम्राट का सेवक होकर उसके अधीन एक सूबदार की हैसियत से शासन करता रहा।

सन् १७४१ ईसवी के लगभग मराठों के सैनिक प्रबल वेग से बढ़ते-बढ़ते बंगाल की सीमा को पार कर काटोया तक आ पहुँचे। काटोया उस समय मुर्शिदाबाद के सैनिक विभाग का प्रधान केन्द्र था। वहाँ एक छोटा सा किला था, जिसकी रक्षा

के लिए फौजी अफसर कुछ सैनिकों के साथ रहता था। पर मराठों की सेना के सामने नवाब के सैनिक न ठहर सके। मराठे सैनिकों ने बात की बात में किले में घुस कर कब्जा कर लिया और नगर का मनमाना लूट कर उजाड़ कर दिया।

नगर-निवासियों ने अपने स्त्री-बच्चों को साथ लेकर जहाँ जगह पाया, भागकर चले गये। खबर पाकर स्वयं अलीवर्दी खाँ तलवार लेकर मराठों का दमन करने के लिए निकला, पर मराठों के अनेक दल जिनका उद्देश्य ही लूट मार करना था, बढ़ते-बढ़ते मुर्शिदाबाद की राजधानी तक पहुँच कर जगत सेठ के राज भण्डार को लूट लिया और नगर को बर्बाद कर दिया। मुर्शिदाबाद में वापस आकर नवाब ने किसी तरह शान्ति स्थापित की।

क्रमशः मराठों का उपद्रव एक वार्षिक घटना में परिणत हो गया। अलीवर्दी खाँ राजधानी में शान्ति स्थापित करने के बाद एक दिन भी सुख की नींद न सोया होगा कि फिर सन् १७४१ ईसवी के अन्त में दक्षिण से मराठों के दल बङ्गाल पर हमला कर बैठे। इस बार अलीवर्दी खाँ ने अपने बहनोई मीर जाफर को सेनापति बना कर मराठों का सामना करने के लिए भेजा, पर मेदनीपुर पहुँच कर मीर जाफर विलासिता में फस गया। मीर जाफर की रण-कायरता का यह संवाद पाकर तुरन्त ही नवाब ने अपने एक दूसरे सेनापति अताउल्ला खाँ को उसकी सहायता के लिए भेजा, किन्तु मीर जाफर

की मदद करना तो दूर रहा, अताउल्ला खाँ स्वयं ही मीर जाफर को मिलाकर उसकी सहायता से बङ्गाल के राज्य को आपस में बाँट लेने का इरादा करने लगा।

मीर जाफर बड़े ही दुष्ट स्वभाव का विलास-प्रिय और स्वार्थी था। अतएव अताउल्ला खाँ को सहज ही में उसे अपने पक्ष में मिला लेने का मौका मिल गया। विश्वास-घातकों के ऐसे षड्यंत्रों की खबर पाकर अलीवर्दी खाँ स्वयं ही मैदान में पहुँच कर शत्रुओं को पीछे खदेड़ दिया। मीर जाफर और अताउल्ला खाँ दोनों ही अपने पद से हटा दिये गये। इसके अतिरिक्त अलीवर्दी खाँ ने उन्हें और कोई दण्ड नहीं दिया।

सन् १७४५ ईसवी में एक ऐसी विपत्ति उपस्थित हुई कि अलीवर्दी खाँ को जिसका कोई गुमान ही न हो सका। उसका एक विश्वास-पात्र सेनापति मुस्तफा खाँ एकाएक मराठों से मिल कर राजधानी पर धावा बोल दिया। चारों ओर घोर विप्लव मच गया। इस विद्रोह को दबाने के लिए स्वयं अली-वर्दी खाँ सेना लेकर आगे बढ़ा, पर उसके पैर न जम सके। लाचार होकर अपने जान व माल की रक्षा करने के लिए सब को यथोचित अधिकार दे देने के लिए उसे बाध्य होना पड़ा। अवसर पाकर जमींदारों के अनेक दल नवाब की इस कमजोरी से फायदा उठाकर अपने सैन्य बल को बढ़ाने लगे। ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेज व्यापारी जिनके पैर पिछलें सैकड़ों साल से बङ्गाल में काफी मजबूती से जम चुके थे, अपनी

साजिशों और षड्यंत्रों द्वारा राज्य की इस अव्यवस्था और नवाब की कमजोरी का अनुचित लाभ उठाने लगे।

मुर्शिदाबाद के पास ही अङ्गरेजों ने कासिम बाजार के पास एक छोटा-सा किला बनवा लिया। कलकत्ता की रक्षा के लिये उसके चारों ओर मराठा खाई खोदकर, कलकत्ता तथा अन्य अङ्गरेजी कोठियों में सेना इकट्ठी करने लगे। मराठों से लड़ते-लड़ते नवाब का खजाना खाली होने लगा। दरबार की इन कमजोरियों से विदेशी सौदागरों का बल बढ़ता गया और अपनी उन्नति के फैलाव का काफी मौका मिल गया। इस देश के लोगों के साथ उनका मेल-जोल बढ़ता गया। व्यापार के बहाने भारत में अङ्गरेजी राज कायम करने के उपाय सोचे जाने लगे। अलीवर्दी खाँ अङ्गरेजों की इन भीतरी चालों और इरादों को समझता था, पर वह लाचार था।

जिस समय बङ्गाल मराठों के उपद्रवों से अस्तव्यस्त हो रहा था, उस समय दिल्ली का बादशाह बिलकुल कमजोर हो चुका था। मौका पाकर केवल मराठों ही ने अपना स्वाधीन राज्य संस्थापित करने की चेष्टा नहीं की, बल्कि अनेक छोटे-छोटे शासक जो सम्राट् के अधीन थे, वे भी अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने का उद्योग करने लगे।

पटने के पास जागीरदार शमशेर खाँ तथा सरदार खाँ ने नवाब के विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा कर दिया। अलीवर्दी

खाँ ने पटने की ओर प्रस्थान किया। साथ में सिराजुद्दौला भी था। सिराजुद्दौला अलीवर्दी खाँ का बड़ा ही प्यारा था। अलीवर्दी खाँ के कोई पुत्र न होने पर सिराजुद्दौला ही उसका सब कुछ था।

इस समय सिराजुद्दौला केवल पन्द्रह वर्ष का बालक था। बालक होने पर भी वह किसी संकट अथवा आकस्मिक घटनाओं से कभी नहीं घबड़ाता था। हमेशा ही हाथ में तलवार लेकर अपने नाना अलीवर्दी खाँ के साथ युद्ध में जाने के लिये तैयार रहता था। अङ्गरेजों के इतिहास में सिराजुद्दौला को केवल ऐय्याश, निकम्मा और घृणित इच्छाएँ रखने वाला चंचल नौजवान ही बताया गया है, परन्तु सिराजुद्दौला स्वयं तलवार लेकर जितनी ही बार युद्ध में अग्रसर हुआ, आफत का सामना पाकर उसने अनेक बार जैसी फुर्ती और तेजी से तलवार चलाई, एक अलीवर्दी खाँ के सिवाय किसी भी नवाब में वैसी वीरता और रण कुशलता की मिसाल नहीं मिल सकती।

वर्द्धमान के पास जिस समय मराठों की सेना बड़े जोरों के साथ अलीवर्दी खाँ के बढ़ाव को रोक रही थी, उस समय सिराजुद्दौला ने बड़ी वीरता के साथ उनको पीछे खदेड़ दिया। प्राय: हर साल ही मराठों की लड़ाइयों में सिराजुद्दौला ने रण-पाण्डित्य और सामरिक कौशल का परिचय दिया है। सिराजुद्दौला की असाधारण वीरता और ज्ञान को देखकर अलीवर्दी

खाँ ने उसे बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के युवराज का पद प्रदान किया था।

सिराजुद्दौला को इससे बड़ी ही प्रसन्नता हुई, पर दरबार के अनेक स्वार्थी और दुष्ट लोग जो भीतर ही भीतर सिराजुद्दौला के विरोधी थे और गुप्त रूप से दूसरे को राज-सिंहासन पर बैठाने के पक्ष में थे, अलीवर्दी खाँ के इस प्रस्ताव से सन्तुष्ट न हुये।

सिराजुद्दौला और अँगरेज

इस प्रसंग में यह कहना अनुचित न होगा कि सिराजु-द्दौला बचपन से ही अङ्गरेजों की कूट-नीति से भली भांति परिचित था। कभी-कभी वह गुप्त रूप से नवाब के दर्बार में जाकर उनकी हरकतों को देखता और उन पर बड़ी गम्भीरता के साथ विचार करता था। मानों वह पहले से ही यह जान चुका था कि भविष्य में भारत और इसके समस्त प्रान्तों का स्वर्णमय राज्य, खेलने खिलौनों के समान विदेशी व्यापारी अङ्गरेजों के हाथ ऊँचे मूल्य में बिकेगा। इसीलिये अङ्गरेजों के व्यापार और महत्त्व की बढ़ती को वह तीक्ष्ण दृष्टि से देखता और भरसक उसका प्रतिवाद करता था।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि सिराजुद्दौला ने बचपन से ही अङ्गरेजों के चरित्र को भली भाँति समझने का प्रयत्न किया था। उन दिनों नवाब अलीवर्दी खाँ के दर्बार में अङ्गरेजों के प्रतिनिधि आते जाते थे। शहर के समीप ही व्यापार की कोठी स्थापित कर कासिम बाजार के अङ्गरेज प्रायः इधर-उधर घूमा फिरा करते थे। अपनी प्रजा के लोगों के साथ इनकी बेजा हर-कतों को देखकर सिराजुद्दौला के हृदय में अङ्गरेजों के प्रति जो

विद्वेष उत्पन्न हुआ था, वह फिर कभी नहीं दूर हुआ, बल्कि इनके प्रत्येक कार्य में कूट-नीति की बातों को देखकर वह मन ही मन अंगरेजों से घृणा करने लगा।

देशी व्यापार और वाणिज्य की उन्नति के बिना राज्य की उन्नति असम्भव थी। अंगरेज लोग प्रकट और गुप्तरूप से अपने वाणिज्य और व्यवसाय द्वारा देशी व्यापारियों को हानि पहुंचा कर अपने लाभ का मार्ग जितना ही सुलभ करते गए, सिराजुद्दौला इन विदेशी अंगरेज सौदागरों से उतना ही असन्तुष्ट होता गया। अंगरेजों के अलावा यूरोप के अन्य जाति के व्यापारियों को बिना महसूल के व्यापार करने का अधिकार नहीं था, इसलिए उनकी प्रतियोगिता से भारतीय व्यापार को विशेष हानि पहुँचने की सम्भावना न थी परन्तु अंगरेज लोग दिल्ली के बादशाह से फरमान लेकर जल और स्थल सब जगह बिना महसूल के ही व्यापार करने लगे और उन्होंने बेचारे असमर्थ भारतीय व्यापारियों के पथ में काँटे बिछाये। अतएव सिराजुद्दौला का केवल अंगरेजों से ही मनमुटाव बढ़ने लगा।

बादशाह से फ़रमान लेकर केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी ही बिना महसूल के व्यापार करती थी ऐसी बात नहीं थी बल्कि कम्पनी के कर्मचारियों के नातेदार, रिश्तेदार भी इस देश में आकर गुप्त रूप से अपना निजी व्यापार करते थे और कम्पनी के संचालकों से बिना महसूल व्यापार करने का परवाना लेकर वे भी मनमाना धन पैदा करते थे। ज़ान उड नामक इस

तरह के एक अंग्रेज सौदागर ने कम्पनी के पास निःशुल्क व्यापार का परवाना लेने के लिए जो आवेदन-पत्र भेजा था, उसमें साफ़-साफ़ लिखा था:—"कम्पनी के ही समान अन्य अंग्रेज़ सौदागरों को भी निःशुल्क व्यापार का परवाना न देने से उनकी बड़ी हानि होगी।"

चूँकि दिल्ली के बादशाह के फ़रमान को अस्वीकार करने का कोई उपाय नहीं था और जब तक अंग्रेज रहेंगे तब तक वे बिना महसूल के ही व्यापार करेंगे, इसलिए अंग्रेजों को बिना यहाँ से निकाले अपने देशी व्यापार की उन्नति नहीं हो सकती, यही सोचकर सिराजुद्दौला हमेशा अंग्रेजों को बंगाल से निकालने का अवसर खोजा करता था। सेनापति मुस्तफ़ा सिराजुद्दौला के इस प्रस्ताव का समर्थन करता था किन्तु नवाब अलीवर्दी खाँ के भय से वह बंगाल से अंग्रेजों को निकालने के लिए कोई उद्योग न कर सकता था।

अलीवर्दी खाँ चूँकि मराठों का दमन करने में व्यस्त रहा करता था, इसलिए अंग्रेजों के अत्याचारों को जानकर भी वह उनके प्रतिकार की कोई चेष्टा नहीं करता था, बल्कि अंग्रेजों के सम्बन्धमें सिराजुद्दौला के बढ़ते हुए विद्वेष का परिचय पाकर वह प्रायः स्पष्ट शब्दों में ही कहा करता था कि दुर्दान्त सिराज बहुत जल्द ही अंग्रेज़ों से युद्ध ठान लेगा और इसका परिणाम यह होगा कि किसी समय उसका राज्य अंग्रेजों के हाथ में चला जायगा। परन्तु सिराजुद्दौला इन सब बातों पर विशेष

ध्यान नहीं देता था। उसका विश्वास था कि एक साधारण मार मारने ही से अङ्गरेज लोग अपना सारा बोरिया बन्धन, बही खाता, मालगोदाम समेट कर प्राण लेकर भागने का भी रास्ता न पायेंगे।

सिराजुद्दौला ने जब एक बार वास्तव में अङ्गरेजों पर आक्रमण करने के लिए अपने नाना नवाब अलीवर्दी खाँ से अनुमति माँगी तब नवाब ने उसके उत्तर में यही कहा कि स्थल मार्ग से महाराष्ट्र-सेना ने युद्ध की अग्नि को जला कर उसकी ज्वाला को प्रचण्ड कर दिया है, इस समय उसी को शान्त करना कठिन हो रहा है। ऐसे सङ्कट के समय में यदि अङ्गरेजों के सामरिक जहाज भी समुद्र में अग्नि की वर्षा करने लगेंगे तो उस प्रचण्ड बड़वानल का निवारण किस प्रकार होगा।

बड़े आश्चर्य की बात तो यह हुई कि उसी सिराजुद्दौला के युवराज बनाये जाने की खबर पाकर अंगरेजों में बड़ी खुशी फैल गई। वास्तव में बात यह थी कि उस समय भी अंगरेज लोग साधारण हैसियत के थे और नवाब की कृपा पर जीने वाले भिखारी वणिक छोड़कर और कुछ भी नहीं थे। नवाब के दर्बार में उनकी कोई इज्जत न थी। वे केवल रुपये के बूते अपने व्यापार के अधिकारों की रक्षा करते चले आ रहे थे। उन दिनों रिश्वत का बाजार खूब गरम था। अंगरेज लोग इसी महामंत्र के बल से नवाब के दरबार में अधिकार रखने वाले अमीर वजीरों को सर्वदा सन्तुष्ट रखते थे। नवाब को प्रसन्न

रखने और उसकी दया दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये वे प्राय: अपने धन का बड़ा अपव्यय किया करते थे, किन्तु इतना करने पर भी वे किसी भी समय निश्चिन्त नहीं रहते थे।

नवाब अलीवर्दी खाँ बंगाल के निवासियों में बहुत सरल स्वभाव, प्रजा-हितैषी और धर्मात्मा नवाब प्रसिद्ध था। किन्तु कलकत्ते के अँगरेज उसकी खाक पर्वाह नहीं करते थे। सन् १७३६ ईसवी में जनवरी महीने की पहली तारीख को कलकत्ते के प्रधान कर्मचारी बारवल साहब को नवाब के दर्बार से नीचे लिखा हुआ पत्र मिला :—

"हुगली के सैयद, मुगल, अरमानी आदि सौदागरों ने दावा किया है कि तुमने उनके कई लाख के माल से भरे हुए कई एक जहाज लूट लिये हैं। आन्टनि नामक एक सौदागर कई लाख के माल के साथ ही साथ हमें नजर देने के लिये कुछ बहु-मूल्य वस्तुएँ लिये आ रहा था, सुना है कि तुमने वह जहाज भी लूट लिया। ये सब व्यापारी हमारे राज्य के शुभ-चिन्तक और हितैषी हैं। हम इनके दावे की उपेक्षा नहीं कर सकते। हमने तुमको व्यापार करने का अधिकार दिया है, न कि डाका डालने और लूट-मार मचाने का। यदि इस राजाज्ञा को पाते ही तुम इन सब व्यापारियों का हर्जा नहीं चुका दोगे, तो हम बहुत कड़ी सजा का हुक्म देंगे।"

यह पत्र पाकर कलकत्ते के अङ्गरेजों ने गुप्त सलाह मशवरा

करके उसके प्रतिवाद में एक पत्र भेजा। जिसमें उन सबों ने अपने अपराध को अस्वीकार किया और इधर दावा करनेवाले महाजनों की खुशामद-बरामद करके मुक्ति-पत्र अर्थात् बाजदावा लिखा लेने के लिए तरह-तरह की चेष्टाएँ करने लगे, परन्तु किसी से कुछ न बन पड़ा। अंग्रेजों की ओर से आज्ञा-पालन में विलम्ब देखकर नवाब ने उनका व्यापार बन्द करा दिया। लाचार होकर अंग्रेजों ने जगत् सेठ की शरण ली।

इस घटना से सिराजुद्दौला को बड़ी प्रसन्नता हुई। इतने दिनों के बाद अंग्रेजों को दण्ड देने का अच्छा अवसर पाकर वह अपने नाना अलीवर्दी खाँ को उत्तेजित करने लगा; परन्तु जगत् सेठ की कृपा से अंग्रेज लोग इस बार बच गये। साथ ही साथ बहुत कुछ खुशामद-मिन्नतें करके बारह लाख रुपया अर्थ दण्ड देने पर उन्हें फिर से बंगाल में व्यापार करने का अधिकार मिल गया।

युवराज होने पर सिराजुद्दौला राज्य को देखने-भालने के के लिए निकला। उस समय तक अंग्रेजों के पास फ़ौज नहीं थी। चापलूसी और खुशामद-बरामद से काम निकाला करते थे। यदि इस उपाय से काम न निकलता तो वे बिना किसी संकोच के रिश्वत देने का तरीका काम में लाते थे। विलायत के अधिकारी भी उनके इसी तरीके का समर्थन बड़ी खुशी के साथ करते थे। नवाब के दर्बार में जब कभी किसी अफ़सर

की पद-वृद्धि होती और अंग्रेज इस समाचार को सुन पाते तब उन सबों का चेहरा सूखने लगता था। वास्तव में बात यह थी कि उस अफसर को प्रसन्न करने और उसकी दया-दृष्टि के पात्र बनने के लिए इन बेचारों को नजर-भेंट देनी होती थी इन्हीं कारणों से सिराजुद्दौला के राज्य-परिभ्रमण की खबर से अंग्रेजों को बड़ी चिन्ता हुई।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि वह एक ऐसा संकटमय समय था जिसके कारण राज्य की व्यवस्था ठीक रखना भी कठिन कार्य था। मराठों की सेना के साथ युद्ध के सिलसिले में रात-दिन सफर करने और बाहर डेरों में पड़े रहने के कारण बंगाल के बूढ़े नवाब अलीवर्दी खाँ का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा, अतएव सच कहा जाय तो इसी समय से सिराजुद्दौला न अधिकांश राज्य-कार्य करना आरम्भ किया।

उस समय के अंग्रेज केवल व्यापार होने पर भी अवसर मिल जाने पर भोली-भाली प्रजा को सताने से नहीं चूकते थे। अपनी प्रजा का यह कष्ट देखकर सिराजुद्दौला उनके स्वार्थों की रक्षा के लिए अग्रसर हुआ। उसने प्रत्येक अड्डे पर अंग्रेजों की नावें रोककर इस बात की जाँच-पड़ताल करनी आरम्भ की कि वे वास्तव में कम्पनी की नौकाएँ हैं अथवा अन्य धन-लोलुप अंग्रेज़ सौदागरों की।

इस जाँच से जब यह ज्ञात हुआ कि कम्पनी के नाम की

दुहाई देकर अँगरेज मात्र बिना महसूल दिये अपना व्यापार करते चले आ रहे हैं, तब तो जो वास्तव में कम्पनी की नौकाएँ थीं, उन पर भी सन्देह होने लगा और अन्त में कम्पनी के अँगरेज भी बिना कुछ आर्थिक दण्ड दिये छुटकारा न पा सके। इस सम्बन्ध में कलकत्ते की अँगरेजी अदालत में बहुत से दावे दायर होने लगे

राज्य-कार्य का देख-भाल करते समय सिराजुद्दौला ने अँगरेजों के व्यापार-कौशल, कपट-व्यवहार और जाली कार्रवाइयों को पकड़ कर उन्हें दण्ड देना आरम्भ किया। 'मेरी' नामक जहाज भी चोरी से और बिना महसूल दिये व्यापार करने के कारण पकड़ा गया और उसकी बड़ी दुर्गति की गई। जिससे पीड़ित होकर हालवेल साहब ने अँगरेजी अदालत के सामने कहा था कि—"कम्पनी का जहाज न होने पर भी 'मेरी' ने निःशुल्क व्यापार करने का परवाना हासिल किया था और इसी प्रकार अँगरेज मात्र को निःशुल्क व्यापार के द्वारा रुपया पैदा करने का मौका न देने पर उनकी दुर्दशा का अन्त न रहेगा।" यही हालवेल का दावा था। परिणाम यह हुआ कि इस समय से अँगरेज मात्र ही सिराजुद्दौला के दुश्मन बन गये और बदला लेने के उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

जब ये सब बाते धीरे-धीरे इंगलिस्तान के अधिकारियों के कानों तक पहुँची तब वे बड़े सोच-विचार में पड़ गये। सभी

दृष्टिकोणों को लेकर भली भाँति विचार करने के बाद वे कम्पनी के कर्मचारियों को पहली नीति का अनुसरण करने अर्थात् नवाब को सन्तुष्ट रखने के लिये कुछ अधिक रुपया खर्च करके झगड़ा-फसाद मिटाने की राय देने लगे।

जगत् सेठ और जमींदारों के षड्यंत्र

मराठों की सेनाओं ने बङ्गाल में युद्ध की जिस अग्नि को भयानक रूप से जलाया था, उसको शान्त करने में बङ्गाल के नवाब अलीवर्दी खाँ का सारा खजाना खाली हो गया। आवश्यक खर्च के लिये भी प्रायः कर्ज लेना पड़ता था। आज यहाँ, कल वहाँ, कभी हाथी पर, कभी घोड़े पर, कभी उड़ीसे में, कभी बिहार में तलवार लेकर दुश्मनों के पीछे दौड़ते-दौड़ते बूढ़े नवाब अलीवर्दी खाँ का शरीर अनेक प्रकार के के रोगों से ग्रस्त हो गया। इतना अधिक प्रयत्न करने पर भी वह मराठों के उपद्रवों को शान्त न कर सका। कभी यहाँ, कभी वहाँ इस प्रकार निरन्तर बाहर डेरों में पड़े रहने के कारण उसे राज्य के कार्य को भली भाँति देखने का समय भी नहीं मिला।

कहने की आवश्यकता नहीं कि अलीवर्दी खाँ अपनी प्यारी प्रजा की रक्षा के लिये दुश्मनों की सेना के पीछे दौड़ते-दौड़ते अन्त में थक गया, किन्तु जिसके धन और मान के लिये वह इतने दिनों तक प्राण देता रहा, उस प्रजा के दुःख-जनित हाहाकार को वह एक साल के लिये भी शान्त न कर सका। इधर

मराठों के सेनापति ने भी अलीवर्दी खाँ के समान प्रबल पराक्रमी प्रतिद्वन्द्वी के साथ रात-दिन युद्ध में फँसे रहने के कारण एक दिन भी साँस लेने का मौका न पाया था। अतएव सन् १७५१ में सन्धि का प्रस्ताव उपस्थित हुआ और दोनों पक्षों ने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

कई एक साल के बाद युद्ध के कारण होने वाले कोलाहल का अन्त हुआ। मराठों के साथ सन्धि हो गई। सुवर्णरेखा नदी उड़ीसा और बङ्गाल की सीमा निश्चित हुई। सन्धि-पत्र में लिखा गया कि यदि मराठे सुवर्ण रेखा नदी से पार आने की चेष्टा न करें तो नवाब उनको बारह लाख रुपया सालाना चौथ अदा करेगा। सन्धि तो हो गई, किन्तु चौथ का रुपया अदा करने का कुछ भी उपाय न किया गया। लाचार होकर अलीवर्दी ने जमींदारों से राय लेकर "चौथ-मराठा" नामक एक नया कर कायम किया और नवाब सरकार का खर्च कम करने के लिये फौज के एक बड़े भाग को बरखास्त कर दिया। इस उपाय से देश में शान्ति स्थापित हो गई।

अलीवर्दी खाँ के पहले जितने नवाब हो चुके थे, उन सबों के शासन-काल में जमींदारों को राज्य-शासन के कार्य में कोई विशेष अधिकार नहीं प्राप्त था और न जमींदारी पर ही उनका कोई आधिपत्य था। यदि वे निश्चित समय के भीतर राज्य का कर नहीं अदा करते थे तो उन्हें बड़े क्लेश भोगने पड़ते थे। किसी को कैद कर लिया जाता था। किसी की जमींदारी छीनकर दूसरों

को दे दी जाती थी, किसी-किसी को प्राण दण्ड तक दिया जाता था, किन्तु नवाब अलीवर्दी खाँ के शासन-काल में ऐसी कोई बात नहीं थी।

चूँकि अलीवर्दी खाँ ने जमींदारों की ही सहायता और जगत् सेठ की कृपा से राज्य प्राप्त किया था इसलिए उसके शासन-काल में जमींदार लोग ही वास्तव में सिंहासन के मालिक बन गये। अलीवर्दी खाँ उनके साथ मिलकर दुश्मनों से लड़ता था और जमींदारों से राय लिए बिना किसी भी काम में हाथ नहीं डालता था। सिराजुद्दौला को यह सब अच्छा नहीं लगता था। जमींदारों को भी उसके रंग-ढंग और बात-व्यवहार से यह भली भाँति ज्ञात हो गया था कि सिंहासन पर बैठते ही सिराजुद्दौला स्वभावत: उनके साथ कठोरता का व्यवहार करेगा। अतएव बूढ़े नवाब अलीवर्दी खाँ के बीमार होने पर स्वयं सिराजुद्दौला को राज्य के कार्य में तत्पर हुआ देखकर जमींदार लोग बड़े भयभीत और कुपित हुए।

इन सब जमींदारों में परस्पर मेल-मिलाप बढ़ने लगा। सभी को अपने भविष्य की चिन्ता लग गई। राज्य-कार्य के सम्बन्ध में कभी-कभी मुर्शिदाबाद आने पर ये जमींदार लोग जगत् सेठ के राज महल में एकत्रित होते थे और वहीं बैठकर देश की परिस्थिति और सुख-दु:ख की आलोचना किया करते थे। कुछ ही दिनों में यह सेठ-भवन बंगाल से जमींदारों का मंत्रणा भवन बन गया। जगत् सेठ तथा अन्यान्य जमींदारों की बढ़ती हुई शक्ति को

देखकर सिराजुद्दौला मन ही मन क्षुभित होने लगा; अतएव जमींदार लोग भी उससे असन्तुष्ट हो गये। अलीवर्दी खाँ के जीवनकाल में ही सब जमींदार सिराजुद्दौला के दुश्मनों के साथ मिलकर उसके विनाश का उपाय सोचने लगे।

जमींदार लोग जगत् सेठ के आश्रित थे और सेठ की समृद्धि और गौरव की वृद्धि के मूल कारण भी जमींदार लोग ही थे। अतएव चाहे अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए और चाहे स्वदेश के हित-साधन के लिए, जगत् सेठ को जमींदारों की सहायता करनी पड़ी और सिंहासन पर पदार्पण करने के पहले ही ये लोग परस्पर मिलकर सिराजुद्दौला की कब्र खोदने का इन्तजाम करने लगे। जगत् सेठ के प्रताप की महिमा सभी जानते थे। इसमें शक नहीं कि उन दिनों सारे भारतवर्ष में उसके ऐश्वर्य की महिमा फैल रही थी। वही ऐश्वर्य जगत् सेठ के मान और गौरव का कारण था।

बादशाह फर्रुखसियर तख्त पर बैठने से पहले कुछ दिनों तक बंगाल का राज-प्रतिनिधि रहा था; उस समय उसकी दशा बड़ी शोचनीय थी। उसी समय दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार जमाने के लिए उसने जगत् सेठ की शरण ली थी। शाहजादे की प्रार्थना पूरी करने के लिए जगत् सेठ ने धन से उसकी बड़ी सहायता की थी। उसी सहायता से ही फर्रुखसियार ने दिल्ली के सिंहासन को प्राप्त किया और सेठ-वंश के उपकार को याद कर "जगत् सेठ" की उपाधि से युक्त एक रत्न मोहर और

फरमान प्रदान किया। इसके अनुसार जगत् सेठ को बंगाल, बिहार और उड़ीसा के नवाब के बगल में बैठने का गौरवपूर्ण सम्मान प्राप्त हुआ और इस आशय का एक शाही हुक्म जारी हुआ कि नवाब लोग जगत् सेठ की इच्छा के विरुद्ध किसी कार्य में हस्तक्षेप न करें।

नवाब मुर्शिदकुली खाँ पहले नवाब का दीवान था। बादशाह उसको किसी तरह नवाब नाजिम का पद भी प्रदान करने के लिए राजी न था; किन्तु अन्त में जगत् सेठ की कोशिश से मुर्शिदकुली खाँ नवाबी के पद पर आरूढ़ हुआ था। मुर्शिदकुली खाँ की नवाबी की सनद में भी इस बात का उल्लेख है। इन समस्त कारणों से जगत् सेठ का मान और गौरव किसी भी अंश में नवाब से कम न था। राज कर संग्रह करने का भार जगत् सेठ के ही ऊपर था। प्रति वर्ष बही-खाते के तबादिले के मौके पर जमींदार लोगों को जगत् सेठ के महल में इकट्ठा होना पड़ता था। राज्य का कर अदा करने में असमर्थ होने पर जगत् सेठ के ही पास से कर्ज लेकर उन्हें चुकाना होता था। जगत् सेठ के ही यहाँ टकसाल भी थी। इन सब कारणों से जगत् सेठ के यहाँ रुपये की बड़ी आमदनी थी और इसलिए कि पीछे किसी समय कोई अत्याचारी नवाब इस धन के भण्डार को लूट न ले, जगत् सेठ के वेतन-भोगी दो हजार सवार हर समय उसके महल की रक्षा के लिए तैनात रहते थे।

देश में अराजकता फैलने, नवाब के अत्याचार करने अथवा

जमींदार लोगों के बागी होने पर सब से पहले जगत् सेठ के ही सर्वनाश की सम्भावना थी। इसीलिए जमींदारों को असन्तुष्ट और बागी होते देखकर अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए ही जगत् सेठ को उन सबों के साथ मिल जाना पड़ा और उस समय सब लोग मिलकर सिराजुद्दौला की राज्य-प्राप्ति में बाधा डालने के लिए तरह-तरह की चालबाजियों से गुप्त सलाहें करने लगे।

सिराजुद्दौला को मिथ्या बदनाम करने के लिए उस समय के जमींदारों ने प्रजा-मात्र के हृदय में नवाब के विरुद्ध अनेक प्रकार की घृणित बातों को फैलाकर विप के बीज बो दिये थे। सिराजुद्दौला को विलास-प्रिय कहकर चारों ओर इस बात का प्रचार किया गया कि सिराजुद्दौला उच्च कुल के हिन्दू घरानों की बहू-बेटियों को अपने सिपाहियों द्वारा जबरदस्ती पकड़वा मँगाकर अपने महल में रखता है। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए सिराजुद्दौला के सर्वनाश के उपायों में लगे हुए जिन लोगों ने उसके विरुद्ध सर्वसाधारण के मन को बिगाड़ रखा था, उनमें इस बात का विचार तक न हो सका कि उनकी यह नीति और आपस की कलह बढ़ते-बढ़ते किसी दिन हमारी स्वाधीनता के विनाश का ही कारण होगी।

अवसर पाकर राजबल्लभ इत्यादि प्रधान कर्मचारियों ने सिराजुद्दौला के बिरुद्ध हिन्दुओं के हृदयं में विद्रोह का विष भरने का प्रयत्न करने लगे। अंग्रेजों को हमारी इस आपसी फूट

और कलह से अपना मतलब पूरा करने का अच्छा अवसर मिलता गया। सन् १७४३ ईसवी में ढाका के नवाब नवाजिश मोहम्मद को जब यह समाचार मिला कि नवाब अलीवर्दी खाँ अपने बाद सिराजुद्दौला को बंगाल, बिहार और उड़ीसा के राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहता है तो उसी समय से वह इसमें बाधा डालने का प्रयत्न करने लगा और स्वयं मुर्शिदाबाद में पहुँचकर अपने बनवाये हुए मोती झील के प्रसिद्ध महल में आकर रहने लगा। अलीवर्दी खाँ की जिन्दगी का किनारा जितना ही निकट आता गया, नवाजिश मोहम्मद की गुप्त अभिसन्धि का उतना ही विकाश होता गया। धीरे-धीरे राजबल्लभ भी अपने पुत्र कृष्णबल्लभ को खजाना आदि सौंपकर ढाके से मुर्शिदाबाद चला आया। अब सब ने समझ लिया कि नवाब अलीवर्दी खाँ की इच्छा कुछ भी क्यों न हो उनका दम निकलते ही राजबल्लभ की सहायता से बलवान और समृद्धिशाली नवाजिश मोहम्मद ही बंगाल-बिहार और उड़ीसा की राजगद्दी पर बैठेगा।

ठीक ऐसे ही समय में अनेक स्वार्थी कर्मचारी भी अपनी इच्छा से ही नवाजिश मोहम्मद के पक्ष में हो गये। अपने अनुकूल वातावरण पाकर और राज्य के कर्मचारियों को भी अपने पक्ष में देखकर नवाजिश मोहम्मद भी खूब खुले हाथों पानी के समान रुपया खर्च करने लगा। जमींदार लोग भी प्रायः उसी के दर्बार में आने-जाने लगे और धीरे-धीरे उसके सहायग तथा

पक्षपाती बन गये। इन्हीं समस्त कारणों से सिराजुद्दौला बहुत दुखी हुआ।

सिराजुद्दौला के विरुद्ध षड्यंत्र के कार्य चल ही रहे थे कि मराठों के साथ सन्धि स्थापित करके निर्द्वन्द राज्य-सुख भोगने के लिए नवाब अलीवर्दी खाँ राजधानी मुर्शिदाबाद में वापस आया। समय पर बिना भोजन किये और सोये बिना दुश्मन की सेनाओं के पीछे दौड़ते-दौड़ते उसका पुष्ट और बलिष्ठ शरीर अनेक रोगों से ग्रस्त हो गया। एक तो बुढ़ापे की अवस्था थी ही, उस पर रोगों ने उसे और भी जर्जरित कर दिया। ऐसी विकट परिस्थिति में नवाब अलीवर्दी खाँ को राज्य के कार्य में योग देने का मौका नहीं मिला। उसकी इच्छा के अनुसार सिराजुद्दौला ने ही समस्त राज्य के कार्यों को देखना आरम्भ किया और राज्य के कार्य में हाथ डालते ही उसकी मोह-निद्रा भंग हो गई।

जिस सिंहासन पर वीर नवाब अलीवर्दी खाँ बड़ी दृढ़ता और निश्चय के साथ विराजमान रहता था, जिस सिंहासन का भावी उत्तराधिकारी होने के कारण दाई की गोद में सिराजुद्दौला बड़े लाड़-प्यार से पाला गया था, सिंहासन पर एक दिन के लिए भी सिराजुद्दौला पैर रखेगा, इसका निश्चय ही क्या था? राज के समस्त कर्मचारी अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए नवाजिश मोहम्मद के पक्षपाती हो गये थे। राजवल्लभ अटूट धन-भण्डार लेकर नवाजिश मोम्मद के हित-साधन में

तत्पर हो रहा था। सिराजुद्दौला के विरुद्ध सर्व साधारण के हृदय में विद्वेष का विष भरने के लिए तरह-तरह के उपायों से काम लिया जाने लगा था।

इस ओर सिराजुद्दौला की आशा का एकमात्र सहारा अन्तिम शय्या पर पड़ा हुआ बूढ़ा नवाब, राजकोष धन-शून्य, देश दुश्मनों से भरा हुआ। ऐसी नाजुक परिस्थिति में सिराजुद्दौला बाहु-बल से सिंहासन की रक्षा करने के लिए गुप्त रीति से यथोचित प्रबन्ध करने लगा। ढाके का नवाब नवाजिश मोहम्मद और उसका प्रतिनिधि राजबल्लभ, इन दोनों ने पर्याप्त धन संचित किया था और सिराजुद्दौला की दृष्टि में दोनों ही प्रधान राज-विद्रोही थे। सब लोगों को यह दृढ़ निश्चय हो गया कि यदि एक बार भी किसी प्रकार सिराजुद्दौला को सिंहासन पर पैर रखने का मौका मिल गया, तो वह सब से पहले नवाजिस मोहम्मद और राजबल्लभ की खबर लेगा। इसलिए ऐसी परिस्थिति में आत्मरक्षा करने और अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए नवाजिश मोहम्मद और राजबल्लभ प्रकट रूप से अपना पक्ष सबल करने लगे।

सिराजुद्दौला के भविष्य का आकाश काली घटाओं से घिरने लगा। उसने यह भली भाँति समझ लिया कि बल-प्रयोग के अतिरिक्त सिंहासन के प्राप्त करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। किन्तु केवल अपने ही शारीरिक बल से तो काम चलने का नहीं इसके लिए रणकुशल, साहसी और विश्वासपात्र सेना-पतियों की

जरूरत है। युद्ध में जय-लाभ करने के लिए पर्याप्त सेना भी होनी चाहिए। साथ ही साथ इतना धन भी चाहिए जिससे सिपाहियों को अन्न-वस्त्र और वेतन देकर उनका प्रति-पालन किया जा सके। सच कहा जाय तो उस समय सिराजुद्दौला के पास यह कुछ भी सामान न था।

राजधानी मुर्शिदाबाद में जो धनवान् और जमींदार लोग रहते थे, वे जानते थे कि देश में विचारों की व्यवस्था ठीक नहीं है "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत सभी दिशाओं में चरितार्थ हो रही है। जिसके हाथों में ताकत हो, वही छीन ले; अथवा नवाब की इच्छा ही एकमात्र प्रबल शक्ति है, वही जो चाहे करे। ऐसे विचारों के कारण ये लोग ऊपर से अपने को नवाब के अधीन थे पर भीतर से एक दूसरे को परास्त करने की चिन्ता में अपने पास आवश्यक सेनाओं का संग्रह रखते थे और एक होशियार सन्तरी की तरह अपनी और अपने पास-पड़ोस की रक्षा करते थे। सिराजुद्दौला को यह समझने में देर न लगी कि सिंहासन के लिए नवाजिश मोहम्मद के साथ युद्ध छिड़ने पर ऊपर कहे गये वर्ग के नागरिक और जमींदार भी इशारा पाते ही नवाजिश मोहम्मद के पक्ष में जा मिलेंगे।

धन की तृष्णा में व्याकुल होकर सिराजुद्दौला शिकारी की भाँति चारों ओर ताक रहा था कि इतने में एक और भयानक संकट सामने आकर उपस्थित हो गया। नवाजिश मोदम्मद के हित चिन्तकों में से राजबल्लभ और हुसेनकुली खाँ, जो बंगाल के

इतिहास में अपना एक विशेष स्थान रखते, दोनों ही अपनी बुद्धि और कुटिल नीति के कारण विशेष रूप से शक्तिशाली हो गये थे। नवाजिश मोहम्मद का खजाना हुसेनकुली खाँ के हाथ में था। अतएव नवाजिश मोहम्मद के घर में हुसेनकुली खाँ का यथेष्ट प्रभुत्व था, परन्तु भाग्य-दोष के कारण हुसेनकुली खाँ अपने इस प्रभुत्व का सदुपयोग न कर सका और गृह-दासियाँ छिपे-छिपे नवाजिश मोहम्मद की बीबी घसीटी बेगम के साथ हुसेन-कुली खाँ के अनुचित सम्बन्ध की बातें करने लगीं।

धीरे-धीरे बात बढ़ती ही गई। सब लोग जान गये, किन्तु सिराजुद्दौला से हिम्मत बाँधकर यह बात कोई न कह सका। अन्त में जब यह पारिवारिक कलंक बहुत फैल गया और चारों ओर बदनामी होने लगी तब इस कलंक का प्रतिकार करने के लिए नवाब अलीवर्दी खाँ की बेगम ने एक दिन गुप्त रीति से यह पाप-वार्ता सिराजुद्दौला के कह सुनाई। इसे सुनते ही सिराजु-द्दौला आग बबूला हो गया। वह क्रोध के आवेश में अपने को न सम्हाल सका और शीघ्र ही मुर्शिदाबाद का राजमार्ग हुसेन-कुली खाँ के हृदय-रक्त से कलंकित हो गया।

उसके बदन को खंड-खंडकर और हाथी पर रखकर सब के देखते-देखते सिराजुद्दौला के सिपाही शहर आम रास्ते से लेकर चल दिये। इस घटना की खबर पाकर भी नवाजिश मोह-म्मद और नवाब अलीवर्दी खाँ ने किंचित् शोक या असन्तोष प्रकट नहीं किया, किन्तु इससे भविष्य के लिए राजवल्लभ का

अन्तरात्मा काँप उठा। उस समय के अंग्रेज लेखक 'अर्मी' ने इसके विषय में भी ऐसे ही कलंक का उल्लेख किया है। वह लिखता है :—

"हुसेनकुली की मृत्यु के बाद नवाजिश के प्रधान मंत्री राजबल्लभ का विधवा घसीटी बेगम पर पूरा प्रभुत्व रहा और उसके साथ राजबल्लभ का भी वह अनुचित सम्बन्ध रहा जो उसके पद और धर्म के सर्वथा विरुद्ध था।"

राजबल्लभ, सिराजुद्दौला को मिथ्या बदनाम करने के लिए और उसके विरुद्ध प्रधान तथा गण्य-मान्य वीर सेनापतियों को उत्तेजित करने के लिए अनेक प्रकार की झूठी अफवाहें उड़ाने लगा।

राजबल्लभ और अंग्रेज़ों के षड्यन्त्र

हुसेनकुली खाँ की हत्या से सिराजुद्दौला के हाथ केवल कलंक की कालिमा छोड़ कर और कोई भी वस्तु न लगी। यद्यपि यह प्रसिद्ध है कि बूढ़े नवाब अलीवर्दी खाँ और नवाजिश मोहम्मद इन दोनों में से किसी ने भी हुसेनकुली खाँ के लिए तनिक भी शोक नहीं किया था, तथापि इस मौके से लाभ उठाने के लिए सिराजुद्दौला के विरोधियों को अच्छा अवसर मिल गया। राजबल्लभ तो तुरन्त ही चौकन्ना हो गया और अपने पक्ष को सबल बनाने के लिए अनेक प्रकार के उपाय करने लगा।

नवाब अलीवर्दी खाँ मराठों से युद्ध करने के कारण अपना स्वास्थ्य पहले से ही खो चुका था। इधर जब उसने देखा कि उसके नाती सिराजुद्दौला के विरुद्ध तरह-तरह की हानिकारक बातें फैलाई जा रही हैं तब उसने समझ लिया कि सिराजुद्दौला के भावी आकाश में सुख का चन्द्रमा और प्रताप का सूर्य न चमक कर तूफानी बादलों का ही केन्द्र बन जायगा। ऐसा सोचते-सोचते वह सिराजुद्दौला के भविष्य के लिए दिन-रात चिन्तित रहने लगा, परिणाम यह हुआ कि शान्ति न मिलने

और दिन-रात चिन्ता करने के कारण वह रोग-शय्या के अधीन हो गया।

नवाब अलीवर्दी खाँ के रोग-ग्रस्त होते ही अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए षड्यंत्र में निपुण राजबल्लभ, नवाजिश मोहम्मद को नवाबी के सिंहासन पर बैठाकर सिराजुद्दौला के समस्त अभिमान को चूर्ण करने के उपाय करने लगा। इसमें सन्देह नहीं कि मराठों के साथ सन्धि हो जाने से देश में पूर्ण रूप से शान्ति विराजने लगी थी। यदि कोई नई बात हुई थी तो केवल इतनी ही कि उड़ीसा का प्रदेश नवाब के शासन से निकल गया था। पुर्निया में सैयद अहमद राज्य कर रहा था, इसीलिए वहाँ सिराजुद्दौला का शुभचिन्तक कोई भी नहीं था। उधर ढाका राजबल्लभ के अधिकार में था ही, ऐसी दशा में सिराजुद्दौला का पक्ष लेकर खड़े होने का साहस भी वहाँ के किसी मनुष्य में नहीं हो सकता था। बिहार-प्रदेश का कुछ भाग महाराष्ट्रों को समर्पित किया गया था और राजा रामनारायण उस पर शासन कर रहा था, किन्तु वहाँ भी उस समय तक रामनारायण का आधिपत्य भली भाँति संस्थापित न हो सका था।

इस प्रकार के वातावरण में नवाब अलीवर्दी खाँ की चिन्ता दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी और उसका शरीर रोगों के कारण उत्तरोत्तर शिथिल पड़ने लगा। सभी ओर दृष्टिपात करने के बाद सिराजुद्दौला ने देखा कि केवल मुर्शिदाबाद के प्रदेश पर ही नवाब की

शासन-शक्ति का थोड़ा-बहुत प्रभाव है किन्तु इस प्रदेश की प्रसिद्ध प्रतिभाशालिनी शासनकर्त्री रानी भवानी, धन कुबेर जगत् सेठ तथा उद्योगशील अंग्रेजों से, ऐसे संकट काल में सहायता मिलने की सम्भावना नहीं जान पड़ती।

राजबल्लभ की कोशिशों से अपने में किसी न किसी प्रकार की शक्ति रखने वाले प्रायः सभी व्यक्ति सिराजुद्दौला के दुश्मनों से मिल गये थे। लोग यह नहीं समझते थे कि राज्य के कार्यों में हाथ डालकर सिराजुद्दौला ने किस प्रकार राज-धर्म का पालन किया था? यही एक कारण है कि अपने नाना अलीवर्दी खाँ के मरने बाद वह केवल कुछ ही महीने सिंहासन पर बैठा और उसके वे भी दिन अनेक प्रकार के कलह-विवादों और लड़ाई-झगड़ों में ही बीते। एक दिन के लिए भी निश्चिन्त होकर राज्य के कार्यों को करने का मौका उसके हाथ नहीं लगा। इसीलिए सिराजुद्दौला के शासन-कार्य की समालोचना करने के लिए उस समय की घटनाओं और परिस्थितियों की समालोचना करनी आवश्यक है, विशेषकर उस समय की जब कि सिराजुद्दौला नवाब अलीवर्दी खाँ के बीमार रहने पर उसके प्रतिनिधि-रूप से शासन कर रहा था।

अंग्रेज इतिहास-लेखकों ने बड़े प्रयत्न और आग्रह से सिराजुद्दौला को जैसा दुश्चरित्र बताया है, अंग्रेजी दफ़्र के कागज-पत्रों में उसकी वैसी दुश्चरित्रता का कोई भी प्रमाण नहीं मिलता। सिराजुद्दौला अंग्रेजों पर विश्वास नहीं करता था, उन्हें देखना

भी पसन्द नहीं करता था, उनके छल-चातुरी और दगा-फरेब के कामों पर उन्हें उचित दण्ड देता था। यह सब सही है किन्तु राज्य के कार्यों को हाथ में लेकर उसी सिराजुद्दौला ने भी अंग्रेजों को छल-फरेब और जाल दगाबाजी के अपराध में कठिन दण्ड नहीं दिया। उन्हें अपदस्थ करने अथवा उनका सर्वनाश करने की कभी चेष्टा नहीं की, बल्कि किसी-किसी मामले से तो यह स्पष्ट जाना जा सकता है कि जब राजा और जमींदार अंग्रेजों को कुछ भी सताते और तंग करते थे तब जमींदारों को कड़ी सजाएँ देकर वह अंग्रेजों के व्यापार की रक्षा और सहायता करता था।

सिराजुद्दौला द्वारा शासक की हैसियत से किये गये इस व्यवहार के साथ राजबल्लभ के व्यवहार की तुलना करनी आवश्यक है। राजबल्लभ को अंग्रेज लोग अपना भाई मानते थे। अंग्रेज जिस समय खुल कर सिराजुद्दौला के साथ शत्रुता करने में लिप्त हुए, उस समय राजबल्लभ के पुत्र कृष्णबल्लभ ने अंग्रेजी किले में आश्रय लिया था किन्तु जिस समय राजबल्लभ ढाके का नवाब था, उस समय उसने बिना किसी कारण के ही अंग्रेजों की दुर्दशा का अन्त कर डाला था। उसने एक बार अंग्रेजों से नजर तलब की, किन्तु अंग्रेजों ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। बस, इसी पर राजबल्लभ ने अंग्रेज गुमाश्तों को कैदखाने में बन्द कर दिया। अंग्रेजों का सारा कारबार बन्द कर देने के लिए बाकरगंज से ढाका प्रदेश में नावों के द्वारा अंग्रेज सौदा-

गरों का धान, चावल इत्यादि जो माल आता था उसे तुरन्त रोक दिया।

राजवल्लभ के शासन-काल में लोग अंग्रेज सौदागरों की नौकरी करने का साहस न करते थे। करों अथवा नजरों की अदायगी के बहाने से राजवल्लभ इन लोगों के साथ प्रायः इसी प्रकार का व्यवहार किया करता था। उसके मुर्शिदाबाद चले आने पर उसका पुत्र कृष्णबल्लभ कुछ दिनों तक ढाके की नवाबी करता रहा। राजवल्लभ के अत्याचारों से यूरोपियन सौदागर कभी-कभी ऐसे दुःखी होते थे कि प्रायः इसके लिए सभी दर्जे के यूरोपियन सौदागर नवाब के दरबार में अपना दावा पेश करके किसी प्रकार उन अत्याचारों के कष्टों से छुटकारा पाते थे, किन्तु वे ही अंगरेज अपने आश्रय-दाता नवाब के साथ थोड़ी-थोड़ी-सी तुच्छ बातों पर कलह-विवाद ठान देने में भी तनिक नहीं चूकते थे।

कलकत्ते के किसी हिन्दू या मुसललान के निःसन्तान मर जाने पर नियमानुसार यदि नवाब की सरकार से उसकी सम्पत्ति को नवाबी खजाने में दाखिल करने का प्रबन्ध किया जाता तो कोई न कोई बहाना करके अंग्रेज लोग चट उसमें बाधा डालने के लिए तैयार हो जाते थे। फ्राँसीसियों के साथ अंग्रेजों का मेल-मिलाप भी बड़ा था और शत्रुता भी परले सिरे की थी। नवाब अलीवर्दी खाँ के शासन-काल के अन्त समय में यूरोप में अंग्रेजों और फ्राँसीसियों में युद्ध छिड़ने का सूत्रपात हुआ।

इसी बहाने से अंग्रेज लोग कलकत्ते में भी एक किला बनवाने और सेना-संगठित करने की भी चेष्टा करने लगे। उन्होंने नवाब के आश्रय में, नवाब के राज्य में निर्द्वन्द्व और बेखटके व्यापार करने और धन पैदा करने का जो अधिकार पाया था, उसके लिए कृतज्ञ होना तो दूर रहा, वे प्राणपण से इस बात का प्रयत्न करने लगे कि कलकत्ते में नवाब की शासन-शक्ति ही न जमने पाये।

नवाब अलीवर्दी खाँ इसे जानता था, किन्तु मराठों के झगड़ों में फँसे रहने के कारण सब कुछ जानते और सुनते हुए भी वह कुछ नहीं कर सकता था। परन्तु अब अंग्रेजों की धृष्टता और निर्भीकता पर लक्ष्य करके सिराजुद्दौला को सावधान करते समय वह साफ-साफ कहने लगा कि अंग्रेजों की रण-शक्ति का नाश किये बिना बंगाल के राज्य का कल्याण कदापि नहीं होगा। इतने दिनों के बाद नवाब अलीवर्दी खाँ जैसे अनुभवी और धर्मशील राजा को भी अपने पक्ष का समर्थन करते देखकर सिराजुद्दौला को बड़ी प्रसन्नता हुई, परन्तु वह प्रसन्नता केवल प्रसन्न हो लेने भर की ही थी। जब काफी सेना थी, पर्याप्त धन था, अलीवर्दी खाँ के प्रबल प्रताप से शत्रुओं के हृदय कम्पित होते थे, उस समय सब कुछ हो सकता था।

अंग्रेज, फ्राँसीसी और डच, सभी विदेशी सौदागर नवाब की कृपा से बंगाल में व्यापार कर रहे थे। ये जातियाँ यूरोप

में परस्पर शत्रु हों या मित्र, वहाँ इनमें आपस में सन्धि हो या विग्रह उसके साथ बंगाल का भी कुछ सम्बन्ध हो सकता है, यह सिराजुद्दौला न समझ सका। अंग्रेज और फ्राँसीसियों से यूरोप में युद्ध छिड़ने पर बंगाल में अंग्रेजों की किलेबन्दी का मतलब क्या ? यूरोप में युद्ध होने के कारण क्या फ्राँसीसी लोग कलकत्ते में लूट-मार मचा सकते हैं ? सिराजुद्दौला ने समझ लिया कि किला तैयार कर लेना ही अंग्रेजों का मूल उद्देश्य है। फ्राँसीसियों से युद्ध की आशंका यह केवल बहाना-मात्र हैं।

इधर अंग्रेज लोग केवल किला बनवा कर के ही शान्त नहीं रहे, बल्कि इंगलिस्तान के अधिकारियों की आज्ञा पाकर उन्होंने कलकत्ते की रक्षा के लिए सैन्य-दल का संगठन करना भी आरम्भ कर दिया। इस ओर अलीवर्दी खाँ सिराजुद्दौला को यह उपदेश दे रहा था कि अंग्रेजों की रण-शक्ति का सर्वनाश किये बिना बंगाल के राज्य का कदापि कल्याण नहीं हो सकता और उधर अंगरेज लोग बराबर अपनी रण-शक्ति को बढ़ाते चले जाते थे। सिराजुद्दौला चुपचाप रह कर इसे सहन न कर सका और प्राय: नित्य ही नाना अलीवर्दी खाँ के पास अंग्रेजों के विरुद्ध अभियोग उपस्थित करने लगा।

राजबल्लभ अंग्रेजों के व्यवहार-बर्ताव और उनकी कूटि-नीति तथा कार्य-प्रणाली से भली भाँति परिचित था। वह कासिम बाजार की अंग्रेजी कोठी के गुमाश्ता वाट्स साहब को अपने हाथ में कर लेने का उद्योग करने लगा। वाट्स साहब कलकत्ते के

अंग्रेजी दरबार को प्रायः नित्य ही समाचार भेजा करता था। अतएव मुर्शिदाबाद के नवाबी दर्बार की एक-एक बात अंग्रेजी गवर्नर को दिन-प्रति दिन घर बैठे ही मालूम होती रहती थी। वाट्स साहब कों अपने हाथ में कर लेने पर कलकत्ते का अंग्रेजी दर्बार भी राजबल्लभ की मुट्ठी में आ गया।

इन समस्त बातों का पता पाकर सिराजुद्दौला शत्रुता के पूर्ण लक्षणों को भली भाँति समझ गया किन्तु इतने विलम्ब के बाद समझने से क्या? नवाब अलीवर्दी खाँ का रोग धीरे-धीरे असाध्य होने लगा। मृत्यु-शैय्या पर पड़े हुए नवाब के अन्त समय में युद्ध कैसे ठन सकता था! राजबल्लभ और अंग्रेज सौदागरों ने मौका पाकर परस्पर प्रीति-बन्धन को दृढ़ करना और शक्ति बढ़ाना आरम्भ किया। इसीलिए सिराजुद्दौला की क्रोधाग्नि शान्त न होकर दिनोंदिन अधिक प्रज्ज्वलित होने लगी।

दुर्भाग्य से राजबल्लभ की सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हो गईं। नवाब अलीवर्दी खाँ की जिन्दगी में ही सन् १७५६ ईसवी में नबाजिश मोहम्मद की मृत्यु हो गई। राजबल्लभ पर भयानक संकट के पहाड़ टूट पड़े और उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। इसके थोड़े ही दिन बाद पुर्निया का अधिकारी सैयद अहमद भी मर गया। उसका पुत्र शौकतजंग पुर्निया का नवाब हुआ। शौकत-जंग अभी नौजवान था और घसीटी बेगम महल के भीतर रहने वाली एक साधारण-सी ही स्त्री थी। अतएव सिराजुद्दौला का कंटक दूर हुआ समझकर बूढ़े नवाब अलीवर्दी खाँ को कुछ

आश्वासन मिला ही था कि इतने में सिराजुद्दौला के विरुद्ध राजबल्लभ ने एक नये प्रतिद्वन्द्वी को खड़ा कर दिया।

नवाजिश मोहम्मद के कोई सन्तान न थी। इसलिए उसने सिराजुद्दौला के छोटे भाई को गोद लिया था। नवाजिश मोहम्मद की जिन्दगी में ही इस दत्तक पुत्र का भी देहान्त हो गया किन्तु उसका एक अल्पवयस्क पुत्र वर्तमान था। राजबल्लभ ने उसी बालक को गद्दी पर बैठाकर घसीटी बेगम के नाम से स्वयं बंगाल, बिहार और उड़ीसे का शासन करने की कल्पना की।

नवाब अलीवर्दी खाँ के जीवन की आशा भंग होने लगी। बड़े-बड़े अनुभवी राजवैद्य बूढ़े नवाब की ओर आँसुओं भरी दृष्टि से देख व्यथित चित्त हो निराश लौटने लगे। सिराजुद्दौला हर घड़ी अपने नाना अलीवर्दी खाँ की चारपाई से लगा बैठा रहता था। राजबल्लभ ने सोचा कि यही मौका अच्छा है। उसने कृष्णबल्लभ को समाचार भेजा—"अब क्या देखते हो? ढाके से सब माल-असबाब और परिवार को लेकर नावों पर सवार हो कलकत्ते को भाग जाओ।" कलकत्ते पहुँचने पर कृष्णबल्लभ को अंग्रेजों के यहाँ आश्रय मिलने के लिए राजबल्लभ ने वाट्स साहब से बहुत कुछ अनुरोध किया। अंग्रेज इतिहास-लेखकों का कथन है कि :—

'वाट्स साहब का कुछ भी अपराध नहीं था। सब लोग कह रहे थे कि वृद्ध नवाब का दम निकलने भर की देर है, राज-बल्लभ के रहते हुए सिराजुद्दौला को सिंहासन पर बैठने का

अवसर कभी न आयेगा। घसीटी बेगम की पोष्य सन्तान ही गद्दी पर बैठेगी। ऐसी दशा में घसीटी बेगम के पुराने सेवक और विश्वास पात्र मंत्री राजबल्लभ के अनुरोध की अवहेलना किस प्रकार की जाती। वाट्स ने जिस समय यह अनुरोध-पत्र गवर्नर ड्रेक के पास भेजा था, उस समय गवर्नर ड्रेक स्वास्थ्य-लाभ के लिए बालेश्वर बन्दर पर जल वायु-परिवर्तन के लिए गया हुआ था। उसकी अनुमति की प्रतीक्षा न करके अंग्रेजों ने कलकत्ते में कृष्णबल्लभ को आश्रय देना स्वीकार कर लिया।

इस ओर कृष्णबल्लभ ने पुरुषोत्तमधाम की तीर्थ-यात्रा का बहाना करके परिवार के सहित ढाके का सारा खजाना और माल असबाब नावों पर लादकर कूच किया और उसकी नौकाएँ तीर्थ-यात्रा का भाग छोड़कर पद्मा और जलंगी को पार किया और भागीरथी में आ पहुँचीं। इसके बाद लोगों को पता भी न चला कि वे नावें किधर गईं। इस प्रकार कृष्णबल्लभ सकुशल कलकत्ते के बन्दरगाह पर पहुँच गया।

सिराजुद्दौला को कठोर स्वभाव वाला अत्याचारी नवाब समझकर राजबल्लभ तनिक भी उससे भयभीत नहीं हुआ। वह यह भली भाँति जानता था कि सिराजुद्दौला ही वास्तव में नवाब है। सिंहासन पर बैठने के बाद ढाके की नवाबत के लिए उपयुक्त नवाब को निर्वाचित करने और ढाके के पूर्व नवाब नवाजिश मोहम्मद से और मुझसे निकासी का सारा हिसाब

वसूल करने का पूरा अधिकार उसे ही होगा। फिर, नवाब नाज़िम की हैसियत से हो अथवा नवाजिश मोहम्मद के उत्तराधिकारी की हैसियत से विधान के अनुसार और शास्त्र की आज्ञा के अनुसार नवाजिश मोहम्मद की सम्पत्ति पर मेरी अपेक्षा सिराजुद्दौला का ही विशेष अधिकार है, इसे कोई अस्वीकार न कर सकेगा।

इस अधिकार के अनुसार सिराजुद्दौला यदि अपने चाचा नवाजिस मोहम्मद की छोड़ी हुई सम्पत्ति तथा नवाजिश मोहम्मद की स्त्री अर्थात् अपनी चाची घसीटी बेगम को अपने राजमहल में ले जाकर उसका प्रतिपालन करना चाहेगा तो, मुझे उसमें बाधा डालने का क्या हक होगा? इतना नहीं, बाधा डालने पर अन्यान्य लोग भी क्या कहेंगे? उपाय यदि कुछ हो सकता है, तो केवल इतना ही कि सिराजुद्दौला यदि सिंहासन पर न बैठ सके तो इन सब बातों की कोई सम्भावना नहीं हो सकती। इस प्रकार अपने मन में तर्क-वितर्क करने के बाद अन्त में राजबल्लभ मोतीझील में सैन्य संग्रह करके बाहु-बल और छल-कपट से सिराजुद्दौला को दबाने की चेष्टा करने लगा।

उन दिनों रास्तों और घाटों की यथेष्ट सुविधा नहीं थी। नावों के द्वारा लोग देश-विदेश आते-जाते थे। सैनिक सिपाही नावों पर चढ़कर युद्ध के लिए यात्रा करते थे। सौदागर और व्यापारी नावों के द्वारा ही अपना व्यापार किया करते थे। पद्मा और भागीरथी के मार्ग से लोग बड़ी सरलता के साथ मुर्शिदाबाद

आ सकते थे। कई एक फाटकों के अतिरिक्त मुर्शिदाबाद में कोई किला अथवा चारदीवारी नहीं थी। राजधानी बिलकुल अरक्षित दशा में पड़ी हुई थी। देश में अरक्षित, प्रजा सहारा-बिहीन और जमींदार असन्तुष्ट! इस दशा में यदि कोई साहस करके देश पर चढ़ाई कर देता तो बिना विशेष श्रम के ही विजय-लाभ कर सकता था।

कुछ भी हो, अन्त में जगत् सेठ और समस्त जमींदार मिल कर मनमाने नवाब को निर्वाचित करने की चेष्टा करने लगे। यद्यपि नवाब अलीवर्दी खाँ ने पहले से ही सिराजुद्दौला को सिंहासन पर बैठाने की घोषणा कर दी थी और इसी घोषणा के अनुसार सिराजुद्दौला को यूरोपियन सौदागरों से भी नजर नजराने मिलने लगे थे, तथापि मुसलमान इतिहास-लेखक सैयद गुलाम हुसेन ने इस बात को स्वीकार नहीं किया है। वह लिखता है :—

"सैयद अहमद के साथ अलीवर्दी खाँ का बड़ा मेल-जोल था। वह प्राय: उसके दर्बार में आया जाया करता था। मृत्यु के पहले तक सैयद अहमद को यह विश्वास था कि मैं ही अलीवर्दी खाँ के सिंहासन पर बैठूँगा।"

उसके मर जाने के बाद उसका पुत्र शौकतजंज बहादुर पुर्निया का नवाब हुआ और अलीवर्दी खाँ के सिंहासन पर भी उसकी लोभ-दृष्टि लगी हुई थी। लोग इन सब बातों को अच्छी तरह जानते थे। राजबल्लभ को जब कोई दूसरा उपाय

न दिखाई पड़ा तब वह एक अबोध बालक को सिंहासन पर बैठाने की कल्पना करने लगा था, किन्तु अब सब लोगों ने मिल कर शौकतजंग को नवाब बनाने का प्रस्ताव उठाया। शौकतजंग ने भी इसे स्वीकार किया, परन्तु उसके चतुर मंत्री इस प्रस्ताव से एक बड़े असमंजस में पड़ गये और अन्त में उनकी राय से इस विषय में दिल्ली से एक सनद प्राप्त करने का उपाय करना निश्चय हुआ। इस काम के लिए दिल्ली में प्रचुर धन की वर्षा होने लगी।

जो लोग सिराजुद्दौला को पदच्युत करने के लिए इन सब षड्यंत्रों में लगे हुए थे, वे सभी शौकतजंग और उसके पिता सैयद अहमद को अच्छी तरह जानते थे। सैयद अहमद पहले उड़ीसे का शासक था। जब उसने उत्कल-प्रदेश की परम सुन्दरी ललनाओं की सुन्दरता में अपने को भूल कर उनके सतीत्व का सर्वनाश करने की ठानी तो धर्मात्मा अलीवर्दी खाँ ने उसे उड़ीसे से अलग कर दिया था। उसी सैयद अहमद का आदर्श और उपदेश पाकर शौकतजंग के चंचल हृदय ने भी सदाचार की शिक्षा लाभ करने का अवसर न पाया।

शौकतजंग की अपेक्षा सिराजुद्दौला पढ़ा-लिखा था। समय-समय पर राज्य-कार्य की देखभाल करने से वह पूरा राजनीतिज्ञ बन गया था। जरूरत पड़ने पर तलवार लेकर युद्ध के मैदान में वीरों के समान सन्मुख युद्ध में लड़कर प्राण दे देने के लिए भी वह कातर नहीं था। अनेक बार वह अपनी अनुपम वीरता का परि-

चय दे चुका था, किन्तु शौकतजंग में ये कोई भी गुण नहीं थे। ऐसी दशा में लोग क्यों सिराजुद्दौला के बजाय शौकतजंग को चुनकर उसे राजगद्दी पर बैठाने के लिए आतुर हो रहे थे ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि ये लोग देश की भलाई के लिए अथवा जनता के कल्याण के लिए आतुर नहीं थे, बल्कि सभी अपने-अपने स्वार्थ में अन्धे हो रहे थे और अपना मतलब गाँठने की फिक्र में थे। इसीलिए इन्हें योग्य और अयोग्य का विचार जरूरी न समझ पड़ा और इन्होंने भविष्य में सिराजुद्दौला को मुफ़ बद-नाम करके अपने पापों को छिपाने की चेष्टा की।

नवाजिश मोहम्मद और सैयद अहमद की मृत्यु के पहले ही इंगलिस्तान से एक समाचार आया था कि फ्राँसीसी लोग अनेक फौजी जहाज लेकर भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए आ रहे हैं। यह खबर सच रही हो या झूठ, किन्तु कलकत्ते के अंग्रेज़ों ने इसी बहाने से कलकत्ते में एक किला बनवाने के लिए इंगलिस्तान से दो-चार अच्छे-अच्छे कारीगर भेज देने के लिए वहाँ के अफसरों को एक प्रार्थना-पत्र लिखा था। इससे पहले कर्नल स्काट ने जब एक बार किला बनवाने के लिए पचहत्तर हजार रुपये की मंजूरी का प्रस्ताव पेश किया था तब उस समय उसे किसी ने स्वीकार नहीं किया, किन्तु अब बड़ी शीघ्रता के साथ सभी अंग्रेज किला बनवाने के लिए व्याकुल होने लगे।

फ्राँसीसियों के साथ लड़ाई-झगड़े की सूचना पाने पर इंग-लिस्तान के अंग्रेज अफसरों ने इस देश के अंग्रेजों को सावधान

करने के लिए २६ दिसम्बर सन् १७५५ ईसवी को एक पत्र लिखा था, जिसका आशय यह था :—

"हम बड़े जोरों के साथ तुम्हें यह अनुमति दे रहे हैं कि तुम बड़ी होशियारी से रहो और बंगाल में यदि तुम अपनी सम्पत्ति और अधिकारों को सुरक्षित रखना चाहते हो तो अपनी रक्षा के लिए नवाब से प्रार्थना करो। हमारी राय में तुम्हारे व्यापार-व्यवसाय और माल-असबाब की रक्षा का इसके अतिरिक्त और कोई अच्छा उपाय नहीं है। नवाब के आश्रय में ही तुम्हारा कल्याण है इसे निश्चय जानो।"

इस पत्र की राय के अनुसार कलकत्ते के अंग्रेजों को नवाब की शरण लेकर उसी के आश्रय में अपनी रक्षा करनी चाहिए थी और ऐसा होने पर नवाब-सरकार और अंग्रेजों के साथ किसी प्रकार के युद्ध-विग्रह की सम्भावना भी न रहती, किन्तु कलकत्ते के अंग्रेज, जिनकी नीयत बंगाल की नवाबी का अन्त कर देना था, सिराजुद्दौला से सहायता माँगने की आज्ञा पाकर भी उसके दुश्मनों का साथ देने के लिए अग्रसर हुए। नवाब की अनुमति के बिना ही कलकत्ते में किला बनवाने लगे।

कम्पनी के अंग्रेज सौदागरों ने व्यापार की आड़ में अपने षड्यंत्र और साजिशों के प्रयत्न बराबर जारी रखे। व्यापार के काम में इन लोगों का हिन्दुओं से अधिक काम पड़ता था, इसलिए अठारहवीं सदी के मध्य में बंगाल के अन्दर हमें यह लज्जाजनक दृश्य देखने को मिलता है कि उस समय के अंग्रेज सौदा-

गर कुछ हिन्दुओं के साथ मिलकर देश के मुसलमानी राज्य को नष्ट करने के षड्यंत्र रच रहे थे। अंग्रेज कम्पनी के गुप्त सहायकों में खास तौर से इस समय कलकत्ते का एक अत्यन्त धनाढ्य अमीचन्द था, जिसका विस्तृत विवरण इस पुस्तक में आगे मिलेगा।

अमीचन्द को इस बात का लालच दिया गया कि नवाब को खत्म करके मुर्शिदाबाद के खजाने का एक बड़ा हिस्सा इन समस्त सेवाओं के बदले तुमको दिया जायगा और "इंगलिस्तात में तुम्हारा नाम इतना अधिक होगा जितना भारत में कभी न हुआ था।" कम्पनी के आदमियों को आदेश था कि "अमीचन्द की खूब खुशामद करते रहो।" अंग्रेज षड्यंत्रकारियों में एक खास नाम इस समय कर्नल स्काट का मिलता है। कर्नल स्काट ने बहुत दिनों तक बंगाल में रहकर वहाँ के लोगों से खूब मेलजोल बढ़ाया था और अमीचन्द की सहायता से उसने चुपके-चुपके बड़े-बड़े हिन्दू राजाओं और रईसों को अपनी ओर मिला लिया था। अमीचन्द के धन और अंग्रेज कम्पनी के झूठे-सच्चे वादों ने मिलकर नवाब के अनेक दरबारियों और सम्बन्धियों की नीयत को डाँवा डोल कर दिया था। उधर चुपके-चुपके कलकत्ते में अंग्रेजों की किलेबन्दियाँ भी बराबर जारी थीं।

अलीवर्दी खाँ के अन्तिम दिन

'अंग्रेज लोग सबसे पहले भारत के पश्चिमी तट पर उतरे, लेकिन उनकी राजनैतिक सत्ता की बुनियाद पहले-पहल बंगाल में ही पड़ी। इनके दो कारण बताये जाते हैं। सब से पहला और खास कारण यह था कि जब कि पश्चिमी तट पर मराठों की जबरदस्त जल-सेना उस समय मौजूद थी जो कि अपने समय में दुनिया की सब से बड़ी जल-सेना मानी जाती थी, मुगलों के पास कोई जल-सेना ही नहीं थी और बंगाल का दरवाजा समुद्र से आने वालों से लिए एकदम खुला हुआ था। दूसरा कारण यह था कि पश्चिमी प्रान्तों के अलावा बंगाल कहीं अधिक उपजाऊ और मालामाल था। सम्भव है कि एक तीसरा कारण यह भी रहा हो कि बंगाल के निवासी अधिक सीधे-सादे थे और अधिक सरलता से अंग्रेजों की चालों में आ सके।

अलीवर्दी खाँ के समय में सबसे पहले सन् १७४६ ईसवी में कर्नल मिल नाम के एक अंग्रेज ने जर्नन के साथ मिलकर बंगाल, बिहार और उड़ीसा विजय करने की एक योजना तैयार करके यूरोप भेजी, जिसमें उसने लिखा था:—

"मुगल साम्राज्य सोने और चाँदी से लबालब भरा हुआ है। यह साम्राज्य सदा से निर्बल और अरक्षित रहा है। बड़े आश्चर्य की बात यह है कि आज तक यूरोप के किसी बादशाह ने जिसके पास जल-सेना हो, बंगाल को विजय करने का प्रयत्न नहीं किया। एक ही बार में अनन्त धन प्राप्त किया जा सकता है, जो कि दक्षिण अमरीका के ब्रेजील और पेरू के सोने की खानों के समान का होगा।"

"मुगलों की राजनीति खराब है। उनकी सेना और अधिक खराब है। जल-सेना उनके है ही नहीं। साम्राज्य के भीतर लगातार विद्रोह होते रहते हैं। यहाँ की नदियाँ और यहाँ के बन्दरगाह दोनो ही विदेशियों के लिए खुले हुए हैं। यह देश उतनी ही सरलता से विजय किया जा सकता है या अपने अधीन किया जा सकता है जितनी सरलता से कि स्पेन वालों ने अमरीका के नंगे बाशिन्दों को अपने अधीन कर लिया था।"

"××× अलीवर्दी खाँ के पास तीन करोड़ पाउण्ड (लगतीस करोड़ रुपये) का खजाना मौजूद है। उसकी सालाना आमदनी कम से कम बीस लाख पाउण्ड होगी। उसके प्रान्त समुद्र की ओर से खुले हैं। जहाजों में डेढ़ हजार या दो हजार सैनिक इस काम के लिए काफी होंगे। ×××"

कर्नल मिल इस सारे कुचक्र को ईस्ट इण्डिया कम्पनी से छिपाकर पूरा करना चाहता था। मिल जिस ढङ्ग से चाहता था

उस ढङ्ग से बङ्गाल विजय नहीं किया जा सका और वैसा हो भी नहीं सकता था, पर लक्ष्य अंग्रेज कम्पनी का भी यही था। अलीवर्दी खाँ अंग्रेजों की तमाम चालों और इरादों को समझता था और यह भी जानता था कि अंग्रेज किस प्रकार लुके-छिपे अभी से कुचक्रों द्वारा अपने पैर फैलाते जा रहे हैं।

नवाब अलीवर्दी खाँ ने अपना सन्देह दूर करने लिए सबसे पहले कर्नल स्काट को अपने दरबार में बुलाया, पर उसने पहले तो आने का वादा किया और फिर बात को टाल कर मद्रास की ओर चला गया। नवाब अलीवर्दी खाँ ने अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों को हुकुम दिया कि आप लोग फौरन किले बन्दियाँ बन्द कर दें। उसने अंग्रेज तथा फ्रान्सीसियों के वकीलों को दरबार में बुलाकर उनसे कहा:—

"तुम लोग सौदागर हो। तुम्हें किलों की क्या जरूरत? जब तुम मेरी हिफाजत में हो तब तुम्हें दुश्मम का डर नहीं हो सकता।"

बहुत सम्भव है कि अलीवर्दी खाँ इस विषय में अपनी इच्छा पूरी कर पाता, किन्तु वह इस समय तक काफी बूढ़ा और रोग-ग्रसित हो चुका था।

अब अलीवर्दी खाँ के ज्यादा दिन तक जीने की आशा न रही थी। एक तो बुढ़ापे की अवस्था, दूसरे उदरी जैसा असाध्य रोग। कुछ दिनों तक वैद्यों के बताये हुए नियमों का पालन कर अन्त में अलीवर्दी खाँ ने दवाइयों का सेवन करना भी एकदम

बन्द कर दिया। सभी ने यह निश्चित रूप से जान लिया कि बूढ़े नवाब अलीवर्दी खाँ का जीवन-प्रदीप अब अधिक दिन प्रज्ज्वलित नहीं रह सकता। अलीवर्दी खाँ का अन्त समय जितना ही नजदीक आता गया, सिराजुद्दौला के भविष्य का आकाश उतना ही भयानक तूफानी बादलों से घिरने लगा। अन्त में एक दिन बूढ़े नाना अलीवर्दी खाँ ने अपने परम प्रिय नाती सिराजुद्दौला को शान्ति देने वाले बचनों से धीरज और तसल्ली देने के लिए सबके सामने इस प्रकार कहना आरम्भ किया :—

"तलवार हाथ में लेकर अपनी सारी जिन्दगी केवल लड़ाइयों के मैदान में ही गुजार कर अब मैं इस दुनिया से कूच कर रहा हूँ। किन्तु मैं जन्म भर किसके लिए इतनी लड़ाइयाँ लड़ता रहा और किसके लिए विविध उपायों से प्राणपण के साथ इस राज्य की रक्षा करके आज मर रहा हूँ? बेटा! तुम्हारे ही लिए मैंने यह सब किया। मेरे न होने पर तुम्हारी कैसी दुर्दशा होगी, इसी को सोच-सोच कर मैंने कितनी ही रातों पलक नहीं लगाया। तुमने यह कुछ भी नहीं जाना। मेरे न होने पर कौन किस तरह सर्वनाश कर सकता है, इसे मैं भली भाँति जानता हूँ। दीवान मानिकचन्द तुम्हारा कट्टर दुश्मन बन बैठा, किन्तु हमने इसीलिए उसे एक इलाका देकर सन्तुष्ट कर रखा है। इस समय और क्या कहूँ। अब तुम मेरा अन्तिम उपदेश ध्यान देकर सुन लो—

"अंग्रेज सौदागरों की शक्ति किस प्रकार इस देश में बढ़ रही है, इसे हर घड़ी नजर में रखना। वे ही एक मात्र तुम्हारी विपत्ति को लाने वाले और समस्त आशंकाओं की जड़ हैं। यदि ईश्वर मेरी जिन्दगी को कुछ दिन इस दुनिया में और कायम रखता तो मैं तुम्हारी इस आशंका को भी जड़ से उखाड़ कर दूर फेंक देता, किन्तु अब यह नहीं हो सकता। अब यह काम अकेले तुम्हीं को करना पड़ेगा। इन अंग्रेज सौदागरों ने तैलंग प्रदेश की लड़ाई में अपनी जिस कुटिल-नीति का परिचय दिया था, उसे ध्यान में रखते हुए तुम्हें हर समय होशियारी से रहना पड़ेगा।

इन अंग्रेज सौदागरों ने उस प्रदेश के निवासियों में परस्पर लड़ाई झगड़ा कराके सारा प्रदेश आपस में बाँट चूँटकर प्रजा का सर्वस्व लूट लिया, परन्तु समस्त यूरोपियन सौदागरों को एक ही साथ नीचा दिखाने की कोशिश न करना। अंग्रेजों की ही शक्ति बहुत ज्यादा बढ़ गई है। देखो, उस रोज वे अंग्रिया देश को विजय करके आये हैं। सब से पहले इन्हीं का दमन करना। अंग्रेजों को नीचा दिखाते ही अन्यान्य यूरोपियन सौदागर सर उठाने या किसी तरह का उत्पात करने की हिम्मत न करेंगे। अंग्रेजों को किला बनवाने अथवा सेना एकत्रित करने का मौका कभी न देना। अगर दिया तो समझ लो कि यह देश फिर तुम्हारा नहीं रहेगा।"

हम जिस समय की बात कह रहे हैं, उस समय कासिम

बाजार की अंग्रेजी कोठी में फोर्थ नामक एक अंग्रेज डाक्टर था। वह केवल दवाइयों का सामान अपने पास रखता था, परन्तु जरूरत पड़ने पर कम्पनी का सब काम करने के लिए तैयार रहता था ? उस जमाने में यही रिवाज-सा हो रहा था। सभी मनुष्य आवश्यकता पड़ने पर प्राय: समस्त कार्यों को कर डालने का अभ्यास रखते थे। इसी रिवाज के अनुसार अंग्रेज डाक्टर फोर्थ भी कभी-कभी अंग्रेजों का प्रतिनिधि बन कर नवाब अलीवर्दी खाँ के दर्बार में आता-जाता था।

नवाब अलीवर्दी खाँ जिस समय चारपाई से लग गया था और उसमें उठने की ताब न रह गई थी, उन दिनों उस डाक्टर को प्राय: रोज ही नवाबी दर्बार का भेद लेने के लिए नवाब के पास जाना पड़ता था। उस समय यही उसका मुख्य कार्य हो रहा था। वह डाक्टर और नवाब अलीवर्दी खाँ बीमार, इसी-लिए रोगी अलीवर्दी खाँ के घर का दरवाजा डाक्टर फोर्थ के लिए खुला ही था। वह प्राय: इसी बहाने से रोज नवाब के पास हाजिर होता था और जो कुछ सुनता था उसका पूरा-पूरा विवरण बड़े यत्न के साथ लिख रखता था। इस स्थान पर उसके कुछ अंश का उल्लेख कर देना भी आवश्यक जान पड़ता है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि कासिम बाजार के अंग्रेजों के साथ राजबल्लभ का बहुत कुछ मेल-जोल हो गया था और इसीलिए कृष्णबल्लभ ने कलकत्ते में अंग्रेजों के यहाँ आश्रय

पाया था। राजबल्लभ घसीटी बेगम के पक्ष में था, बल्कि एक-मात्र राजबल्लभ ही असहाय अवस्था में उस समय घसीटी बेगम का सहायक और आश्रयदाता था। अब उसी राजबल्लभ के साथ अंग्रेजों का मेल बढ़ता हुआ देखकर सिराजुद्दौला को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि अंग्रेज लोग भी घसीटी बेगम के पक्ष में जा मिले हैं। निष्पक्ष भाव से इतिहास की आलोचना करने वालों को यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि केवल सिराजुद्दौला ने ही अंग्रेजों को मिथ्या बदनाम करने के लिए इस बात की चर्चा नहीं फैलाई बल्कि अंग्रेज इतिहास लेखकों ने ही उसे दूसरे रूप में इस प्रकार लिखा है :—

"सभी लोगों का ख्याल था कि अलीवर्दी खाँ के न होने पर राज्य पर घसीटी बेगम का अधिकार होगा, इसलिए उसके प्रधान साथी और सलाहकार राजबल्लभ को अपने हाथ में रखने के लिए कलकत्ते के अंग्रेज कृष्णबल्लभ को आश्रय देने के लिए बाध्य हुए थे।"

किन्तु डाक्टर फोर्थ इस बात को स्वीकार नहीं करता। उसने सिराजुद्दौला को ही लोक और समाज में कलह-प्रिय चंचल नौजवान प्रमाणित करने की चेष्टा की है। वह लिखता है :—

"मैं नित्य प्रातःकाल नवाब को देखने जाया करता था। मृत्यु के पन्द्रह दिन पहले जब मैं एक रोज उसे देखने गया तब उस वक्त सिराजुद्दौला ने आकर नवाब से अर्ज़ किया कि मुझे

खबर मिली है कि शायद अंग्रेजों ने घसीटी बेगम की सहायता करनी मंजूर की है।

बूढ़ा नवाब फौरन ही मेरी ओर देखकर पूछने लगा—'क्या यह बात ठीक है?'

मैंने कहा—'नहीं, यह कदापि ठीक नहीं। हमें नीचा दिखाने की आशा से हमारा बुरा चाहने वाले दुश्मनों ने इस तरह की अफवाह उड़ाई होगी। अंग्रेजों की कम्पनी सौदागरों की है, सैनिकों की नहीं। देश के राष्ट्र-विप्लव में वह कैसे सहायता दे सकती है? देखिए, एक सौ वर्ष से अधिक समय बीत गया, हम लोग वाणिज्य करते चले आते हैं और हमेशा केवल वाणिज्य के ही लाभ में सन्तुष्ट रहते हैं। राष्ट्र-विप्लव के मामलों में हम कभी किसी के पक्ष का समर्थन नहीं करते।'

इस पर नवाब ने प्रश्न किया—'कासिमबाजार में तुम्हारी कोठी है या किला? वहाँ कितने सैनिक रहते हैं?'

मैंने कहा—'नियम से अधिक नहीं रहते। कर्मचारियों को मिलाकर लगभग सब चालीस आदमी हैं।'

नवाब ने प्रश्न किया—'क्या कभी इससे ज्यादा नहीं रहते?'

मैंने कहा—'ज्यादा रहे थे' सिर्फ मराठों के उपद्रवों के समय में। किन्तु अब वे सब अतिरिक्त सिपाही झगड़े शान्त हो जाने पर कलकत्ते चले गये हैं।'

नवाब ने प्रश्न किया—'तुम्हारे फौजी जहाज कहाँ रहते हैं ?'

मैंने कहा—'बम्बई में।'

नवाब ने प्रश्न किया—'वे जहाज क्या इधर कभी नहीं आयेंगे ?'

मैंने कहा—'यह हम नहीं कह सकते। इस समय तो उनके आने का कोई कारण दिखाई नहीं देता।'

नवाब ने प्रश्न किया—'तीन महीने पहले भी क्या तुम्हारे कोई जहाज यहाँ नहीं थे ?'

मैंने कहा—'आये थे। इस तरह दो एक जहाज तो प्रायः हर साल ही आया करते हैं। वे केवल रसद पहुँचाने के लिए आते हैं।'

नवाब ने प्रश्न किया—'इस प्रदेश में लड़ाकू जहाज लाने का क्या प्रयोजन है ?'

मैंने कहा—'कम्पनी के वाणिज्य की रक्षा और फ्रान्सीसियों से युद्ध छिड़ने की आशंका को निवारण करना ही एक मात्र हमारा उद्देश्य है।'

नवाब ने प्रश्न किया—'फ्रान्सीसियों के साथ क्या फिर तुम्हारा युद्ध छिड़ गया है ?'

मैंने कहा—'नहीं, अभी नहीं। किन्तु शीघ्र ही छिड़ जाने की आशंका है।'

ऊपर दिया गया प्रश्नोत्तर डाक्टर फोर्थ के हस्त लिखित विवरण का अनुवाद है। डाक्टर फोर्थ ने कम्पनी की नमक-हलाली में कोई कसर उठा न रखी थी। उसकी निजकी बातें ही इसका अकाट्य प्रमाण हैं। उसने अंग्रेजों को बिल्कुल सीधा, सरल स्वभाव वाला, ऐसे कि मानों भेड़ के बच्चे साबित करने के लिए कितनी ही बातें कह डालीं।

फिर भी हमें अंग्रेज इतिहास-लेखकों के लेखों से ही यह प्रमाण मिल रहा है कि अंग्रेजों ने बिना नवाब की रजामन्दी के ही किला बनवाना शुरू कर दिया, राजबल्लभ और घसीटी बेगम की सहायता करने के लिए कृष्णबल्लभ को कलकत्ते में आश्रय दिया, इंगलिस्तान से आज्ञा पाकर भी नवाब की शरण लेने के बजाय शत्रुओं का आश्रय ग्रहण किया। फ्रान्सीसियों के साथ युद्ध छिड़ने का भूठा बहाना कर सैन्य संग्रह और युद्ध की तैया-रियाँ की, किन्तु सिराजुद्दौला ने नवाब के पास आकर जब यह अभियोग उपस्थित किया कि अंग्रेज लोग घसीटी बेगम के पक्ष का अवलम्बन कर रहे हैं तब अंग्रेजों का प्रतिनिधि डाक्टर फोर्थ तुरन्त ही बड़ी तेजी के साथ बोल उठा—

'ऐं! यह क्या बात? अंग्रेज तो केवल बनिये हैं, वे क्या राजनैतिक लड़ाई-झगड़ों में कभी किसी के पक्ष का अवलम्बन कर सकते हैं? वास्तव में ये सब बातें हमारे शत्रुओं की मन-गढ़न्तें छोड़ कर और कुछ नहीं हैं।'

धीरे-धीरे बूढ़े नवाब अलीवर्दी खाँ के जीवन की अन्तिम घड़ी बहुत ही निकट आ गई। असाध्य रोग से उसका शरीर बहुत ही दुबला हो गया था। उसके शरीर में सिवा हड्डी और मांस के कुछ भी न रह गया था। सभी प्रकार की औषधियाँ दी गई, किन्तु किसी से भी कुछ लाभ न हुआ। १० अप्रैल १७५६ ईसवी को नवाब अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हुई और सिराजुद्दौला अपने नाना की राजगद्दी पर बैठा।

सिराजुद्दौला के साथ छेड़-छाड़

अलीवर्दी खाँ की मृत्यु के बाद सिराजुद्दौला जब बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूबेदार की हैसियत से अपने नाना की राजगद्दी पर बैठा तब उस समय उसकी उम्र चौबीस साल से ऊपर न थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की साजिशें भीतर ही भीतर काफी फैल चुकी थीं और अंग्रेजों के हौंसले बढ़े हुए थे। भारत में अंग्रेजी राज का कायम होना और सिराजुद्दौला के विरुद्ध अंग्रेजों के षड्यन्त्र—इन दोनों में अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। एक दिन बङ्गाल की राजगद्दी अभागे सिराजुद्दौला के लिए फूलों की कोमल सेज साबित न हुई। अंग्रेज सौदागर आरम्भ से ही उसके रास्ते में काँटे बिछाते रहे।

उन अंग्रेज सौदागरों ने जो इससे पहले अपने तईं प्रत्येक भारतीय नरेश को "विनीत और आज्ञाकारी प्रजा" कहा करते थे और एक-एक रिआयत के लिए अर्जियाँ दिया करते थे, अब अपने गुप्त प्रयत्नों के द्वारा जान-बूझकर नवाब सिराजुद्दौला का तरह-तरह से अपमान करना शुरू कर दिया। वास्तव में वे अब छेड़-छाड़ का बहाना ढूँढ़ रहे थे। सबसे पहला अपमान जो इन लोगों ने सिराजुद्दौला का किया वह यह था। प्राचीन प्रथा के

अनुसार हर नये सूबेदार के राजगद्दी पर बैठने के समय सब अधीन राजाओं, अमीरों और विदेशी कौमों के वकीलों का दरबार में उपस्थित होकर उपहार भेंट करना आवश्यक था। इसका मतलब यह होता था कि वे सब लोग नियमानुसार नये नवाब को नवाब स्वीकार करते हैं।

सिराजुद्दौला के राजगद्दी पर बैठने के समय अंग्रेज कम्पनी की ओर से कोई उपहार नहीं भेंट किया गया। इसके अतिरिक्त जब कभी अंग्रेजों को मुर्शिदाबाद के दरबार से कोई काम पड़ता था, तो वे कभी सिराजुद्दौला से रूबरू बात न करते थे, बल्कि ऊपर ही ऊपर कुछ ले देकर दरबारियों से अपना काम निकाल लेते थे। वे सिराजुद्दौला के साथ पत्र-व्यवहार करने से भी बचते थे। उन्होंने एक बार अपनी कासिमबाजार की कोठी में सिराजुद्दौला को आने तक से रोक दिया। निस्सन्देह कोई शासक अथवा नरेश कभी इस प्रकार के अपमान को गवारा नहीं कर सकता। किन्तु इस व्यक्तिगत अपमान के अलावा और भी कई ऐसे खास कारण थे, जिनसे अन्त में सिराजुद्दौला को अंग्रेज कम्पनी की बढ़ती हुई ताकत को रोकने के लिए बाध्य होना पड़ा। इनमें से तीन मुख्य कारण थे :—

१—साम्राज्य के क़ानून और नवाब की आज्ञाओं—दोनों के विरुद्ध अंग्रेजों ने उस प्रान्त के भीतर कलकत्ते में तथा और अनेक जगहों में भी किलेबन्दी कर ली और कलकत्ते के चारों ओर एक बड़ी खाई खोद डाली

२—दिल्ली के बादशाह ने इन मुट्ठी भर अंग्रेजों पर दया करके बङ्गाल के भीतर उनके माल पर हर तरह की चुंगी माफ कर दी थी अर्थात् कम्पनी के दस्तखती पास से जिसे 'दस्तक' कहते थे, कम्पनी का माल प्रान्त भर में जहाँ चाहे बिना महसूल आ जा सकता था। अब इन अंग्रेजों ने इस अधिकार का दुरुपयोग करना शुरू किया और अनेक भारतीय व्यापारियों से रुपये लेकर उनके हाथ अपने 'दस्तक' बेचने शुरू कर दिये, जिसके कारण राज्य की आमदनी को बहुत बड़ा धक्का पहुँचा। इतना ही नहीं, आगे चलकर जिस सम्राट् ने विदेशी माल पर महसूल माफ कर दिया था, उसी की देशी प्रजा का माल जब इन विदेशियों की कोठी में या उनकी बस्तियों में जाता था, तब कम्पनी ने उस पर जबरदस्त चुंगी वसूल करनी शुरू कर दी जिसका कानूनन उन्हें कोई अधिकार नहीं था।

३—नवाब के जो नौकर या दर्बारी किसी तरह का जुर्म करते थे या नवाब के विरुद्ध आचरण करते थे अंग्रेज उनको कलकत्ते में बुलाकर अपनी कोठी में सहारा देने लगे।

इन सब बातों की शिकायतें सिराजुद्दौला के कानों तक लगा-तार बराबर पहुँचती रही, इतने पर भी वह सहन करता रहा। इतने में सिराजुद्दौला को खबर लगी कि अंग्रेज लोग पुर्निया के नवाब शौकतजंग को सिराजुद्दौला से लड़ाकर उसे मुर्शिदाबाद की राजगद्दी पर बैठाना चाहते हैं। इस खबर को पाते ही सिराजु-द्दौला सेना लेकर पुर्निया की ओर बढ़ा। उधर सिराजुद्दौला के

आने का समाचार पाते ही शौकतजंग उपहार सहित स्वागत के लिए आगे बढ़ा। शौकतजंग ने उस विषय में अपने को निर्दोष बतलाया और अंग्रेजों के वे सभी पत्र सिराजुद्दौला के सामने पेश कर दिया, जिनमें अंग्रेजों ने ही शौकतजंग को सिराजुद्दौला के खिलाफ भड़काया था।

किन्तु सिराजुद्दौला की उदारता असीम थी। उसने शौकत-जंग को बहाल रखा और अंग्रेजों के साथ भी दया और क्षमा का बर्ताव कायम रखा। अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों, दोनों के नाम उसने केवल यह आज्ञा जारी कर दी कि आप लोग भविष्य में न कोई किला बनायें और न पुराने किले की मरम्मत करें। फ्रान्सीसियों ने नवाब की आज्ञा मान ली, किन्तु अंग्रेजों ने, जिनके इरादे कुछ और ही थे, नवाब की आज्ञा पर कोई अमल न किया, उलटा आज्ञा-पत्र ले जाने वाले आदमी का खुले तौर से अपमान किया।

ढाके का दीवान राजवल्लभ सिराजुद्दौला के विरुद्ध बगावत करके अंग्रेजों से मिल गया था। इससे सिराजुद्दौला राजवल्लभ से नाराज था। अंग्रेजों ने राजवल्लभ के लड़के कृष्णवल्लभ को कलकत्ते बुलाकर अमीचन्द के मकान के भीतर रखा। सिराजु-द्दौला ने अंग्रेजों को आज्ञा दी कि कृष्णवल्लभ को वापस भेज दो, किन्तु अंग्रेजों ने साफ इन्कार कर दिया। अंग्रेजों की इन बेजा हरकतों पर भी सिराजुद्दौला ने शान्ति से ही सब मामले का निपटारा करना चाहा, किन्तु अंग्रेज व्यापारियों ने, जिनकी

आकांक्षाएँ बेहद बढ़ी हुई थीं और जिनके षड्यंत्र इस समय दूर-दूर तक पहुँच चुके थे; जरा भी पर्वाह न की। उनकी किले-बन्दियाँ और भी अधिक जोरों के चलती रहीं। सिराजुद्दौला के पास अब सिवाय उन्हें दण्ड देने और रोकने के और कोई चारा न था।

कलकत्ते में इस समय तक अंग्रेजों का दबदबा काफी बढ़ चुका था और हर तरह से वे नवाब का सामना करने के लिए तैयार थे। इस नवीन महानगर में अंग्रेजों का प्रबल प्रताप दिनों-दिन बढ़ता जाता था। ये लोग नवाब के राज्य में रहने पर भी कलकत्ते में अपने को स्वाधीन समझते थे। इनकी अनुमति से धीरे-धीरे बहुत से पुर्तगीज, अरमानी, मुगल और हिन्दू व्यापारी कलकत्ते में अपने मकान बनवाकर वाणिज्य-व्यापार के द्वारा खूब रुपया कमा रहे थे।

हिन्दू व्यापारियों में अमीचन्द का नाम अंग्रेज लेखकों के इतिहास में प्रसिद्ध है। अंग्रेजों ने इसे धूर्तता की मूर्ति बताकर लोक और समाज में उसकी निन्दा करने का पूरा प्रयत्न किया है। लार्ड मेकाले ने तो "धूर्त बङ्गाली" लिख कर उसका परिचय दिया है। अमीचन्द बंगाली नहीं था। वह भारतवर्ष के पश्चिमी प्रदेश का एक हिन्दू बनिया था। बंगाल और बिहार में वाणिज्य व्यापार करने के लिए यहाँ रहने लगा था। सशस्त्र सैनिकों से सुरक्षित उसके महल का विशाल फाटक देखकर

औरों की बात तो अलग रही, स्वयं अंग्रेज भी उसे एक राजा मानते थे।

सेठों में जिस प्रकार जगत् सेठ का बड़ा गौरव और सम्मान था, उसी प्रकार सौदागरों में अमीचन्द की नवाब के दर्बार में इज्जत और प्रतिष्ठा थी। संकट पड़ने पर अंग्रेज लोग सर्वदा ही अमीचन्द की शरण लेते थे। अनेक बार अमीचन्द के ही अनुग्रह की बदौलत अंग्रेजों की लाज और इज्जत बची थी, इसका अब भी कुछ न कुछ प्रमाण मिलता है। अंग्रेज इतिहास-लेखक अर्मी ने लिखा है :—

"अमीचन्द का महल बहुत ही आलीशान था। उसके भिन्न-भिन्न विभागों में सैकड़ों कर्मचारी हर समय काम किया करते थे। फाटक पर पर्याप्त सेना उसकी रक्षा के लिए तैनात रहती थी। वह कोई मामूली सौदागर नहीं था, बल्कि राजाओं के समान बड़ी शान शौकत से रहता था। नवाब के दर्बार में उसका बड़ा आदर था और नवाब उसे इतना मानता था कि कोई आफत मुसीबत आने पर नवाब-सरकार से किसी तरह की सहायता लेने के लिए लोग प्रायः अमीचन्द की ही शरण लेते थे।"

अंग्रेजों ने अमीचन्द की ही सहायता से बंगाल में अपने व्यापार विस्तार करने की सुबिधाएँ प्राप्त की थीं। उसी के सहयोग से अंग्रेज लोग गाँव-गाँव में 'दादनी' बाँटकर कपास तथा

रेशमी कपड़ों की खरीद में खूब रुपया पैदा करते थे। यदि ऐसी सुविधा न होती तो शायद ही अंग्रेज लोगों को एक अपरिचित देश में अपनी शक्ति बढ़ाने या प्रतिष्ठा प्राप्त करने का मौका मिलता, किन्तु कुछ दिन में इस देश के निवासियों के साथ परिचय होते ही उन्होंने अमीचन्द की अवहेलना और उपेक्षा करनी शुरू की। सिराजुद्दौला जिस समय गद्दी पर बैठा उस समय अंग्रेज लोग पहले की तरह अमीचन्द पर विश्वास नहीं करते थे। दोनों पक्षों में अनबन और मनोमालिन्य का जो सूत्रपात हुआ था, वह बहुत ही बढ़ चुका था।

सिराजुद्दौला अंग्रेजों को भली भाँति पहचान गया था। राज्य के कार्य में लिप्त होने पर अंग्रेजों की कुटिल नीति का परिचय पाकर वह बहुत जलने लगा था। अंग्रेजों ने नवाब की अनुमति के बिना ही किला बनवाना आरम्भ कर दिया था, जिससे सिराजुद्दौला की भभकती हुई क्रोधाग्नि में मानो घी की आहुति पड़ गई थी। उसने सिंहासन पर बैठते ही नाना अलीवर्दी खाँ के अन्तिम उपदेश का स्मरण किया और अंग्रेजों को दण्ड देने के लिए उनकी कासिमबाजार वाली कोठी के गुमाश्ता वाट्स नामक अंग्रेज को बुला भेजा। वाट्स के आने पर सिराजुद्दौला ने उससे कोई बात छिपाई नहीं। उसने साफ-साफ शब्दों में उससे समझा कर कहा—

"मैं तुम लोगों के व्यवहार से बहुत ही असन्तुष्ट हूँ। सुना है कि तुम मेरी आज्ञा की कुछ भी पर्वाह न करके कलकत्ते के

पास एक किला बनवा रहे हो। मैं तुम्हारे इन सब कामों का समर्थन कदापि न कर सकूँगा। मैं तुमको केवल वणिक् ही जानता हूँ। यदि तुम बनियों की भाँति शान्त भाव से रहना चाहो तो मैं तुम्हें आदर के साथ आश्रय दूँगा। किन्तु यह अच्छी तरह समझे रहना कि मैं ही इस देश का नवाब हूँ। यदि किले की चारदीवारी गिराने में जरा भी कोर कसर की गई तो मुझे फिर किसी तरह भी सन्तुष्ट न कर सकोगे।

वाट्स इन सब बातों का कोई ठीक जवाब न दे सका। अंग्रेज इतिहास-लेखक अर्मी ने लिखा है :—

"वाट्स साहब ने सिराजुद्दौला की बातों से, उसके चित्त में अंग्रेजों के प्रति द्वेषभाव और शत्रुता का परिचय पाकर भी ये बातें अंग्रेजी दर्बार में प्रकट नहीं कीं और केवल इसी कारण से भविष्य में इतना भारी अनर्थ उठ खड़ा हुआ।"

परन्तु वाट्स ने यथा समय वह समस्त वृत्तान्त कलकत्ते के अंग्रेजों को लिख भेजा था, इसका प्रमाण आज भी प्राप्त है। हेस्टिंग्स के लिखे हुए जो कागज इंगलिस्तान के अजायब घर में इकट्ठे किये गये हैं उनमें से एक पत्र का आशय इस प्रकार है :—

"कासिमबाजार पर आक्रमण होने से पहले वाट्स साहब ने अंग्रेजी गवर्नर और कौंसिल को सूचित किया था कि सिराजु-द्दौला के असन्तोष का जोरदार कारण यह यह है कि कलकत्ते में

अंग्रेज लोग उसकी आज्ञा और अनुमति के बिना ही किला बनवा रहे हैं। वह अंग्रेजों को केवल साधारण सौदागरों के ही समान रखना चाहता है और इस दशा में वह उन्हें हर तरह से मदद देने को तैयार है, परन्तु वह अंग्रेजों के राजाओं की भाँति ठाट-बाट जोड़ने का प्रबल विरोधी है और ऐसा करने पर वह हमारे नये किले की इमारतें आदि सब गिरवा देना चाहता है।"

सिराजुद्दौला के असन्तोष के असली कारण को सभी अंग्रेज अच्छी तरह जानते थे। उस समय के अंग्रेजों के ऐबों और दोषों को छिपा रखने के लिए इतिहास के पृष्ठों में चाहे जो कुछ लिखा गया हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि आश्रित वणिक् होते हुए भी नवाब की इच्छा और आज्ञा के प्रतिकूल किले की बुनियाद डालकर अंग्रेजों ने अपनी निरंकुशता का पूरा परिचय दिया था। यह कहना सत्य का सरासर अपमान करना है कि कलकत्ते के अङ्गरेजी दर्बार के लोग इस साधारण-सी बात को बिलकुल जानते ही न थे। भली-भाँति जानते थे, समझते थे और उन्हें यह भी विश्वास था कि सिराजुद्दौला अङ्गरेजों से द्वेष रखता है, अतएव सरलता-पूर्वक आज्ञा माँगने से वह हमें किला बनवाने की इजाजत कभी न देगा। इसलिए अंग्रेजों ने जान-बूझकर भी सिराजुद्दौला की आज्ञा का जो उलंघन किया उसके लिए ऐतिहासिक निर्णय में अङ्गरेजों को ही दोषी होना पड़ेगा।

सिराजुद्दौला ने अङ्गरेजों को समझाने का जितना भी प्रयत्न किया वह सब बेकार साबित हुआ। न तो कासिमबाजार की कोठी के गुमाश्ता वाट्स ने और न कलकत्ते की अङ्गरेजी कौंसिल ने उसकी बातों का ठीक ठीक जवाब दिया। सिराजुद्दौला ने मर्म-पीड़ित होकर भी सहन शीलता से काम लिया। यदि वह चाहता तो अङ्गरेजों के एक नाचीज गुमाश्ता वाट्स की दुर्दशा होने में देर ही क्या लगती। फिर भी सिराजुद्दौला ने उससे कुछ नहीं कहा और साक्षात्-रूप से अङ्गरेजी दरबार का स्पष्ट उत्तर पाने के लिए उसने एक राजदूत को कलकत्ते भेजने का प्रबन्ध किया।

इस समय से सिराजुद्दौला ने अपने अभीष्ट मार्ग में जिस प्रकार बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे कदम बढ़ाना शुरू किया था, इतिहास में उसकी यथोचित आलोचना नहीं हुई है। इसीलिए कुछ लोगों ने तो अनजान में और कुछ लोगों ने अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए उसे मिथ्या कलंकित किया है। सब लोग जानते थे कि अङ्गरेज यों ही सहज में किले की चारदीवारी गिरा देने के लिए राजी नहीं होंगे और सिराजुद्दौला भी यह अच्छी तरह जानता था कि चाहे जो हो, यदि अङ्गरेजों ने एक बार भी नवाब की कमजोरी का मौका पाकर भारतवर्ष की पवित्र भूमि में किला बनवा लिया तो फिर सहसा साधारण व्यापारियों की मण्डली की भाँति इन्हें भारतीय शासन के अधीन रख सकना सरल न होगा।

इसीलिए किसी साधारण राजदूत को न भेज कर एक बुद्धिमान, प्रतिष्ठित, चतुर और प्रतिभाशाली व्यक्ति से यह काम कराने के लिए उस समय के प्रसिद्ध अरमनी सौदागर ख्वाजा वाजिद को इस दूत-कार्य का भार सौंपा गया। सिराजुद्दौला को आशा थी कि शायद ख्वाजा वाजिद के परामर्श और उपदेश से अङ्गरेजों का मति-भ्रम दूर हो जायगा और रक्तपात के बिना ही शान्ति-पूर्वक सारे कलह-विवादों का निपटारा हो जायगा।

ख्वाजा वाजिद ने कोशिश करने में कोई कसर न की। उसने यथा समय कलकत्ते के अङ्गरेजी दर्बार में जाकर नवाब सिराजुद्दौला की सारी बातें कह सुनाई और बाद में अनेक प्रकार से अङ्गरेजों को समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु उसकी बातों पर किसी अङ्गरेज ने ध्यान न दिया, बल्कि उसके समझाने का उलटा ही परिणाम हुआ। अङ्गरेजों ने नवाब के पत्र का कुछ भी उत्तर देना मुनासिब न समझा। इतना ही नहीं, कलकत्ते के अङ्गरेजों ने उस प्रतिष्ठित राजदूत को अनेक प्रकार से पीड़ित और अपमानित करके शहर से बाहर निकाल दिया।

राजदूत ख्वाजा वाजिद के साथ अङ्गरेजों ने जो असभ्यतापूर्ण अमानुषिक व्यवहार किया था, उससे भी नीति-निपुण नवाब सिराजुद्दौला अधीर नहीं हुआ। उसने अङ्गरेजों के उद्दण्ड और विद्रोही स्वभाव का परिचय भली-भाँति पाकर केवल यही

निश्चय किया कि अब अथवा कुछ दिन बाद अंगरेजों के इस प्रबल उद्दण्डता के रोग का उत्कट इलाज अवश्य करना होगा। किन्तु सहसा इस तरह की कोई व्यवस्था न करके वह फिर एक बार दूत भेजकर अंगरेजों को समझाने की चेष्टा करने लगा।

सिराजुद्दौला की अधीनता में राजाराम रामसिंह गुप्तचर-विभाग के सर्वोच्च पद पर नियुक्त था। मराठों की लड़ाई के अन्तिम समय में राजाराम रामसिंह ने मेदिनीपुर की फौजदारी के पद पर रह कर अपनी स्वामि भक्ति का पूरा परिचय दिया था। इसलिए नवाब अलीवर्दी खाँ ने प्रसन्न होकर उसी के पुरस्कार में राजाराम रामसिंह को जासूसों का सरदार बना दिया था। नवाब अलीवर्दी खाँ और सिराजुद्दौला दोनों ही राजाराम रामसिंह पर बड़ी श्रद्धा रखते थे और विश्वास-पात्र कर्मचारी समझ कर प्रायः अनेक मामलों में उससे सलाह लिया करते थे। सिराजुद्दौला ने इन्हीं राजाराम रामसिंह को दूत भेजने का भार सौंपा।

ख्वाजा वाजिद के अपमान की बात चारों ओर प्रसिद्ध हो गई थी। जिन असभ्य अंगरेजों ने ख्वाजा वाजिद जैसे प्रतिष्ठित और सम्मानित राजदूत को इस तरह अपमानित कर शहर से बाहर निकाल देने में तनिक भी संकोच नहीं किया, वे अंगरेज अन्य किसी के साथ भी खातिर से पेश आयेंगे, इसकी कुछ भी सम्भावना नहीं थी। कुछ भी हो, राजाराम रामसिंह भी बड़ा

चतुर था। उसने सोचा कि शायद पहले से किसी प्रकार पता लग जाने पर अंगरेज लोग राजदूत को कलकत्ते में घुसने भी न दें, इसलिए उसने एक नये उपाय का अवलम्बन किया। अपने भाई को इस दूत-कार्य पर नियुक्त करके उसे फेरी वालों के वेश में एक छोटी-सी नाव पर सवार करके कलकत्ते भेज दिया। इस युक्ति से उसे कोई न पहिचान सका और उसने सकुशल कलकत्ते पहुँचकर अमीचन्द के मकान में आश्रय लिया और उसी के साथ अंगरेजी दरबार में जाकर उसने अपने को प्रकट किया, किन्तु उसकी भी वही दशा हुई जो कि ख्वाजा वाजिद की हुई थी। भारत-निवासियों के रक्त के प्यासे अंगरेजों ने उसकी भी एक न सुनी।

सिराजुद्दौला ने यद्यपि बिना किसी झगड़ा-फसाद के सिंहासन पर पैर रखा था तथापि अधिकांश लोगों को यह विवास हो चुका था कि राजवल्लभ के रहते हुए सिराजुद्दौला की खैर नहीं। चाहे जिस तरह हो, सिराजुद्दौला को शीघ्र ही सिंहासन से उतार कर घसीटी बेगम के नाम से महाराज राजवल्लभ ही बंगाल, बिहार और उड़ीसा की नवाबी करेगा। अलीवर्दी खाँ की जिन्दगी में ही अंगरेजों को यह प्रतीत होने लगा था और इसी कारण वश राजवल्लभ को किसी तरह अपने हाथ में रखने के लिए उसके समस्त पूर्व के अत्याचारों को भुलाकर अंगरेजों ने उसके भागे हुए पुत्र कृष्णवल्लभ को कलकत्ते में आश्रय दिया था। वाट्स प्रायः रोज ही लिखा करता था :—

"सिराजुद्दौला के तख्त पर बैठ जाने से भी क्या होगा, अभी तक घसीटी बेगम की आशा निर्मूल नहीं हुई है।"

इसीलिए कलकत्ते के अंगरेजों ने राजबल्लभ को अपने हाथ से निकाल कर नये नवाब सिराजुद्दौला के पक्ष का अवलम्बन करने का साहस नहीं किया। आगे चल कर जब राजबल्लभ की सारी आशाएँ और इच्छाएँ एकदम निर्मूल हो गईं और सिराजुद्दौला ने ही बड़ी शान के साथ जब राज्य का शासन करना आरम्भ किया तब उस समय का इतिहास लिखते हुए अंगरेज इतिहास-लेखक सन्न रह गये। उन्होंने आदि से लेकर अन्त तक सारी बातों को गोलमाल करके अंगरेजों की ओर से केवल इतना ही लिख रखा कि :—

"एक राजदूत आया था, यह ठीक है, परन्तु उसे सिराजुद्दौला ने ही भेजा था, यह हम कैसे जान सकते थे और वह हमारे शत्रु अमीचन्द के यहाँ क्यों ठहरा ? अमीचन्द से हमारी शत्रुता थी, इसलिए हमने सोचा कि अमीचन्द ने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए यह कपट-जाल फैलाया है। इसीलिए हमने राजदूत की अवहेलना की थी अन्यथा यदि हम जरा भी यह जानते कि सिराजुद्दौला ने स्वयं यह राजदूत भेजा है, तो उसे इस प्रकार कभी अपमानित न करते।"

बाद के इतिहास-लेखक चाहे कुछ भी लिखें, किन्तु एक समकालीन अङ्गरेज इतिहासक-लेखक "अर्मी" इन समस्त

बात को एकदम अस्वीकार नहीं कर सका। वह लिखता है कि:—

"राजाराम रामसिंह का भाई एक दिन कलकत्ते में आया था, उस दिन गवर्नर ड्रेक साहब राजधानी में नहीं थे। शहर-कोत-वाल हालवेल साहब के साथ ही उस राजदूत का पहला साक्षात हुआ। उसके दूसरे दिन ड्रेक साहब के आ जाने पर मंत्रि-मण्डल का अधिवेशन हुआ। जो लोग उपस्थित थे, उन सब ने यही कहा कि यह सब अमीचन्द की जाली कार्रवाई है। कारण यह था कि कासिमबाजार से खबर आई थी कि घसीटी बेगम की आशा निर्मूल नहीं हुई है। ऐसी दशा में राजदूत जो पत्र लाया था, वह सभी की नजरों में सन्देहात्मक समझा गया और किसी ने उसका उत्तर देना आवश्यक न समझा। राजदूत को चले जाने की आज्ञा दी गई किन्तु अशिक्षित और उद्दण्ड नौकरों ने कुछ और ही कर उठाया। उन्होंने राजदूत को विशेष रूप से अपमानित करके बाहर निकाल दिया।"

इस व्यवहार से बाद में सिराजुद्दौला असन्तुष्ट होगा, यह जानकर सावधान रहने के लिए शीघ्र ही कासिमबाजार की कोठी में रहने वाले गुमाश्ता वाट्स को एक उपदेश-पूर्ण पत्र कलकत्ते से लिखा गया।

यदि अमीचन्द के कुटिल कौशल का ही निश्चय हो गया था तो कासिमबाजार के गुमाश्ता वाट्स को खबरदार करने के

लिए पत्र-लिखने की क्या आवश्यकता थी ? घसीटी बेगम की राज्य-प्राप्ति की आशा अभी निर्मूल हुई या नहीं, इस सम्बन्ध में उस पर विचार करने की आवश्यकता ही क्या थी ? विचार करने से जान पड़ता है कि अंगरेज लोगों ने भविष्य में अपने दोषों को दबाने के लिए जिन कूट वर्णनों की रचना की है, कार्य के समय उन्होंने उनके प्रति कभी विश्वास-स्थापन नहीं किया था। राजबल्लभ भी मुट्ठी में रहे और सिराजुद्दौला भी उत्तेजित न हो। जान पड़ता है कि यही उस समय अंगरेजों का मूल मंत्र हो रहा था।

ज्योंही सिराजुद्दौला के पास इस असभ्यतापूर्ण अपमान की खबर पहुँची त्योंही अंगरेजों का गुमाश्ता वाट्स एक वकील को साथ लेकर दरबार में उपस्थित हुआ और वकील के मुख से पहले ही सिखाई गई मीठी-मठी बातों का पाठ पढ़ाकर बड़े अदब के साथ आसन ग्रहण किया। अंगरेज लोग जिस सिराजुद्दौला को दुर्दान्त नर पिशाच बतलाने से भी नहीं चूके हैं उसी युवक सिराजुद्दौला ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा के परम प्रतापी शानदार मुगलों के राज सिंहासन पर बैठकर अपने पैरों के नीचे आश्रय पाने वाले अङ्गरेज सौदागरों की इतनी बड़ी गुस्ताखी का परिचय पाकर भी उनके प्रति तनिक भी रोष प्रकट नहीं किया। उसने समझ लिया कि ये अङ्गरेज सौदागर केवल हमारी घरेलू लड़ाई और पारस्परिक विद्रोह के कारण ही अपने उछृङ्खल और उद्दण्ड स्वभाव का भरपूर परिचय दे रहे हैं। इसीलिए वह

सब से पहले घसीटी बेगम के षड्यंत्र का सर्वनाश करने की भरसक चेष्टा करने लगा।

घसीटी बेगम विधवा थी। सिराजुद्दौला को छोड़कर उसका दूसरा कोई अपना सगा सम्बन्धी न था। अतएव विधवा होने की दशा में वह मोतीझील के राजमहल में अकेली रहा करती थी और स्वाधीन भाव से इधर-उधर घूमा भी करती थी। उसका इस प्रकार घूमना-फिरना सिराजुद्दौला को अनुचित जान पड़ता था। इसीलिए उसने एक बार विनीत बचनों में घसीटी बेगम से, अपनी माता तथा अलीवर्दी खाँ की बेगम के साथ एक ही महल में मिलकर रहने के लिए निवेदन किया। किन्तु सिराजु-द्दौला के इस निवेदन को मान लेने से राजबल्लभ की स्वार्थ-सिद्ध का सरल मार्ग सदा के लिए बन्द होता देखकर अपने महल के विशाल फाटक पर घसीटी बेगम ने सेना का संगठन करना आरम्भ कर दिया। उसके इस कार्य से क्रुद्ध न होकर सिराजु-द्दौला ने उसे राजमहल में बुलाया, और उसके समस्त कुच-रित्रों और दुराचारों को जानते हुए भी उसके सम्मान और प्रतिष्ठा में तनिक भी कमी न की। इस प्रकार युद्ध-कलह और रक्तपात के बिना ही मोतीझील पर अधिकार करके सिराजुद्दौला अपनी चाची घसीटी बेगम को अपने महल में आदरपूर्वक ले आया।

इस चातुरी और कौशल से खून खराबी के बिना ही कलह की भभकती हुई आग सहज में ही शान्त हो गई, किन्तु इति-

हास के लेखकों ने इसके लिए भी सिराजुद्दौला की प्रशंसा नहीं की, बल्कि सच्ची-सच्ची बातों को छिपाकर उन्होंने यह लिखा है कि :—

"सिराजुद्दौला के विषय में अधिक क्या कहें; उसने सिंहासन पर बैठते ही अपनी चाची घसीटी बेगम का सर्वस्व अपहरण कर लिया था।"

कासिम बाज़ार पर हमला

इस बात का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि अंग्रेजों के अत्यन्त उद्दण्डतापूर्ण व्यवहारों के बावजूद भी सिराजुद्दौला ने सदा ही उनके हाथ सहनशीलता और उदारता का व्यवहार किया। परन्तु चालाक अङ्गरेजों ने, जिनकी आकांक्षाएँ बहुत बढ़ी हुई थीं और जिनके षड्यंत्र काफी फैल चुके थे; नवाब की बातों और इच्छाओं की कुछ भी पर्वाह न की। इस दशा में सिराजुद्दौला के पास उन्हें दण्ड देने और उनकी बेजाँ हरकतों को रोकने के सिवाय दूसरा कोई उपाय न था। लाचार होकर उसे कासिम बाजार की कोठी को घेर लेने के लिए अपनी फौजें भेजनी पड़ीं।

पिछले सैकड़ों वर्षों से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अङ्गरेज व्यापारियों ने बंगाल भर में घूम-घूम कर व्यापार करते-करते नवाब की उदारता से अनेक स्थानों में अपनी कोठियाँ कायम कर ली थीं। अलीवर्दी खाँ के मराठों के साथ एक लम्बे अरसे तक युद्ध में फँसे रहने तथा राज्य-शक्ति के निर्बल और अव्यवस्था के कारण इन अंगरेज व्यापारियों को चुपके-चुपके अपनी कोठियों की किलेबन्दी करने का मौका मिल गया। इन्हें भारत

में अपने पैर जमाने और अपना राज्य स्थापित करने के उपायों में अपनी कोठियों की किलेबन्दी से बड़ी सफलता प्राप्त हुई। यही कारण था कि अलीवर्दी खाँ और सिराजुद्दौला, दोनों ही इन अङ्गरेज व्यापारियों की कोठियों की किलेबन्दी के परम विरोधी थे।

बंगाल की पुरानी राजधानी मुर्शिदाबाद के पास ही कासिम बाजार की कोठी के चारों ओर मौका पाकर अंगरेजों ने चारदीवारी बनवा ली थी और तोपें लगाकर एक छोटा-मोटा किला-सा तैयार कर लिया था। यह किला चारों ओर से काफी मजबूत था। चारदीवारी से सटे हुए चार बड़े बुर्ज थे। हर एक बुर्ज पर दस-दस तोपें लगी थीं और नदी की ओर वाली दीवार पर कतार-कतार में बासठ तोपें लगी हुई थीं। फाटक के दोनों ओर बड़ी-बड़ी दो तोपें हर समय अपनी भयावना मुँह पसारे अंगरेज सौदागरों के युद्ध की चतुरता का परिचय दे रही थीं।

सलामी की तोपों के बहाने से और भी बहुत-सी तोपें लाकर अङ्गरेजों ने इसी किले के भीतर जमा कर रखी थीं। युद्ध के समय इनसे भी गोले बरसाने का काम निकल सकता था। कहना ही पड़ता है कि इन्हीं सब कारणों से कासिम बाजार के अङ्गरेजी किले पर बड़ी सरलता के साथ किसी के अधिकार जमा लेने की सम्भावना तक भी न थी। विलियम वाट्स, कलेट, वाट्सन, साइक्स, एच० वाट्स, चेम्बर्स वारन् हेस्टिंग्स

इत्यादि अंगरेज कर्मचारी इसी किले में रहकर कम्पनी के व्यापार की रक्षा कर रहे थे। किले की रक्षा के लिए लेफ्टिनेण्ट इलियट की मातहती में बहुत-से गोलन्दाज सिपाही हर समय बड़ी साव-धानी के साथ किले के भीतर टहलते रहते थे। एक अंगरेज इति-हास-लेखक ने लिखा है :—

"सिराजुद्दौला के कासिम बाजार पर हमला करते ही अङ्गरेजों ने बिना किसी दंगा-फसाद के किला छोड़ नवाब के पास जाकर आत्म-समर्पण किया था।"

परन्तु यह बात बिलकुल ठीक नहीं है। इंगलिस्तान के अजा-यब घर में कासिम बाजार पर हमला होने का एक हाथ का लिखा हुआ इतिहास मौजूद है। कुछ लोगों का कहना है कि वह वारन् हेस्टिंग्स का लिखा हुआ है। उसे चाहे जिस किसी ने लिखा हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह उस समय भारत में व्यापार और षड्यंत्र करने वाले अंगरेजों की ही अपने हाथों लिखी हुई अपनी कहानी है। यह सच है कि उस कहानी में कोई सिल-सिलेवार इतिहास नहीं है, फिर भी चूँकि उसे उसी जमाने के अङ्गरेजों ने ही लिखा है, इसलिए उस कहानी में जो कुछ भी इतिहास-सम्बन्धी सामग्री मिलती है; वह वास्तव में अधिक प्रमाण वाली और मानने के योग्य है।

कासिम बाजार के सभी अंगरेज सौदागर इस बात को समझते थे कि बूढ़े नवाब अलीवर्दी खाँ के मरने के बाद ही

हमारा सिराजुद्दौला के साथ युद्ध का छिड़ जाना निश्चित है। इसीलिए मौका पाकर चुपके-चुपके उन्होंने कासिम बाजार के किले में अपनी शक्ति के अनुसार गोलों और हथियारों को जमा करने में कोई कसर न की। इस प्रकार कासिम बाजार में युद्ध का जो बहुत-सा सामान इकट्ठा किया गया था, आगे चल कर कप्तान ग्रान्ट ने उसके विषय में कितने ही आक्षेप किये हैं। उसने लिखा है :—

"कासिम बाजार के छिन जाने से ही हमारे ऊपर सारी मुसीबतें आईं। वहाँ से हमारे दुश्मनों को केवल गोला-बारुद आदि सामान ही नहीं मिला बल्कि उससे उनका साहस भी बढ़ गया और वे बड़ी आसानी के साथ हमारे बड़े किले को फतह करने में कामयाब हुए।"

घसीटी बेगम का मामला तै हो जाने के बाद भी सिराजुद्दौला को चैन से बैठने का मौका नहीं मिला। उत्तर में पुर्निया का शासक शौकतजंग और दक्षिण में कलकत्ते के उद्दण्ड अङ्गरेज उस समय भी ईर्ष्या और स्पर्द्धा से सिराजुद्दौला के विनाश का षड्यंत्र रच रहे थे। इसलिए मुर्शिदाबाद के षड्यंत्र का निवारण करके सिराजुद्दौला तुरन्त ही पुर्निया के झगड़े को भी दूर कर देने के लिए सेना के साथ युद्ध-यात्रा करके राजमहल होता हुआ पुर्निया की ओर बढ़ा। चलते समय उसने कलकत्ते के उद्दण्ड अंगरेज को पुनः बड़ी डाट-डपट के साथ लिख भेजा :—

"यदि इस पत्र को पाते ही अङ्गरेज गवर्नर ड्रेक साहब किले की चारदीवारी नहीं गिरा देंगे तो मैं स्वयं कलकत्ते आकर उन्हें गंगा में फेंक दूँगा।"

ठीक समय पर यह पत्र अङ्गरेजी दरबार में पहुँचा। अङ्गरेजों ने अब तक राजबल्लभ और घसीटी बेगम पर भरोसा रख कर सिराजुद्दौला के भेजे हुए प्रतिष्ठित राजदूत को अपमानित करके नगर से बाहर निकाल देने में तनिक भी संकोच नहीं किया और नवाब का पत्र पाकर भी उसका जवाब देना जरूरी नहीं समझा, परन्तु अब की बार सिराजुद्दौला के इस क्रोध-पूर्ण पत्र को पढ़ कर सभी अंगरेज भयभीत हो गये। इस बार पत्र का उत्तर तो भेजा गया किन्तु फिर भी उसमें असल बात का कोई जवाब नहीं दिया गया। गवर्नर ड्रेक ने लिख भेजा कि :—

"यह सब बात झूठ है! किसने कहा कि अंगरेज लोग कलकत्ते में नगर की रक्षा के लिए चारदीवारी तैय्यार करा रहे हैं? फ्रान्सीसियों के साथ युद्ध छिड़ने की सम्भावना है। उन्होंने मद्रास पर अधिकार जमा लिया है और सम्भव है कि वे बंगाल पर भी आक्रमण करें। इसी आशंका से हम नदी के तीर पर तोपें लगाने के स्थानों की केवल मरम्मत करा रहे हैं। नगर को मराठों की लूट-पाट से सुरक्षित रखने के लिये कुछ दिन पहले नगर के रहने वालों की इच्छा के अनुसार हमने वहाँ पर एक मराठा खाई खोदी थी और उसके लिए नवाब अलीवर्दी खाँ से

आज्ञा ले ली गई थी। इसके अतिरिक्त हम कोई नया किला नहीं बनवा रहे हैं।"

गवर्नर ड्रेक के इस जवाब से अङ्गरेज इतिहास-लेखक भी सन्तुष्ट नहीं हो सके। उन्होंने भी लिखा है कि :—

"जब सिराजुद्दौला अङ्गरेजों पर इतना लाल-ताल होकर तलवार उठाने को तैयार हो गया तब ऐसे अवसर पर इस तरह का उत्तर भेजना युक्ति-संगत नहीं था।"

"सवाल दीगर जवाब दीगर" वाली कहावत ही यहाँ चरितार्थ होती है। अङ्गरेजों ने बाग बाजार के पास पेरिंग नामक एक नया किला बनवाया था और अपनी इच्छा के अनुसार कलकत्ते के अङ्गरेजी किले की मरम्मत करा रहे थे, परन्तु किसी भी कार्य के लिए उन्होंने नवाब की आज्ञा नही हासिल की थी। सिराजुद्दौला ने उनसे पुराने किले को गिरा देने के लिए नहीं कहा था, बल्कि कलकत्ते में बाग बाजार के पास जो नया किला बनवाया जा रहा था, उसी को गिरा देने के लिए कहा था। परन्तु गवर्नर ड्रेक ने सिराजुद्दौला की इन बातों का कुछ भी खयाल न किया।

उद्दण्ड अङ्गरेज अपनी चालबाजियों से सिराजुद्दौला को धोखा देने से बाज न आये। वह जिस समय राजमहल तक पहुँचा, तो वहीं पर गवर्नर ड्रेक का पत्र उसके हाथ लगा। पत्र को पढ़ते ही सिराजुद्दौला आग बबूला हो गया और अङ्गरेज

सौदागरों की असहनीय उद्दण्डता का यथोचित प्रतिकार करने के लिए अपनी सेना को, उनके कासिम बाजार वाले छोटे किले पर आक्रमण करने की आज्ञा दी।

लगातार किन-किन बातों से अत्यन्त दुःखी और लाचार होकर सिराजुद्दौला कासिम बाजार पर आक्रमण करने के लिए बाध्य हुआ था अधिकांश इतिहास-लेखकों ने अनेक कारणों से उनके मूल का अनुसंधान करना जरूरी न समझा और न खुल कर उनकी स्पष्ट विवेचना की। ऐसी दशा में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उनके लिखे हुए इतिहास में कासिम बाजार पर हमला करने की बाबत सिराजुद्दौला के मत्थे बहुतेरे मिथ्या कलंक मढ़ दिये गये हैं, परन्तु सिराजुद्दौला ने अत्यन्त क्रोधित होकर भी कैसी सावधानी, चतुरता और सहन शीलता के साथ रक्तपात और मारकाट के बिना ही कासिम-बाजार पर अधिकार कर लिया था, उसकी थोड़ी-सी भी आलोचना करने से सत्य का निर्णय करने के लिए अधिक कष्ट न उठाना पड़ेगा।

सन् १७५६ ईसवी के मई महीने की २४ तारीख को सोमवार के दिन तीसरे पहर उमरबेग जमादार ३००० घुड़सवार सिपाही लेकर कासिम बाजार में पहुँचा और वहाँ चुपचाप डेरा डाल दिया। नवाब के और भी सिपाही प्रायः इसी प्रकार कासिम बाजार के पड़ाव में आकर ठहरते गये। उस दिन किसी ने कुछ दंगा-फसाद नहीं किया। सबेरा होते-होते दो सौ और

घुड़सवार सिपाही और अनेक बरकन्दाज आकर उमरबेग के साथ शामिल हो गये। सन्ध्या के पहले ही दो सुशिक्षित लड़ाके हाथी झूमते-झामते कासिम बाजार में आ पहुँचे। इस कैफियत को देखकर अङ्गरेजों के प्राण काँपने लगे। यह बात किसी से भी नहीं छिपी थी कि उन्होंने किस प्रकार एक प्रतिष्ठित राजदूत को निरादर के साथ कलकत्ते से निकाल दिया था। अतएव अपनी करतूतों से भयभीत होकर दो-दो, एक-एक करके अङ्गरेज कोठी वालों ने इधर-उधर भागना शुरू किया।

मुर्शिदाबाद के भूतपूर्व अफसर विवारिज ने लिखा है कि—"हेस्टिंग्स भी इस अवसर पर कासिम बाजार में ही था और आक्रमण के समय उसके दीवान कान्ता बाबू ने उसे अपने मकान में छिपा लिया जिससे वह सही सलामत बच गया।" जो अङ्गरेज किले के भीतर थे, उन्होंने समझ लिया कि बस, इतने दिनों के बाद अब हमारे पापों के प्रायश्चित्त का समय आ गया है। ज्यों-ज्यों रात्रिका अन्धकार बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों नवाब की सेना बल-पूर्वक किले में घुसकर अङ्गरेजों के माल-असबाब का सत्यानाश करके भीषण हत्या-काण्ड मचाना आरम्भ कर देगी। उस समय किले में सिर्फ ३५ गोरे और ३५ हिन्दुस्तानी सिपाही थे। कुछ और नौकर-चाकरों के सिवाय फौज अधिक न थी। अन्त में इतने ही सिपाही बन्दूकों पर संगीनें चढ़ाकर दरवाजे पर आ डटे और बड़े गर्व के साथ फाटक को घेर कर खड़े हो गये।

परन्तु नवाब के सिपाहियों ने उस दिन भी किले पर आक्रमण करने की कोई चेष्टा नहीं की, बल्कि जमादार उमरबेग ने अङ्गरेजों की नाम मात्र की सेना को किले के फाटक पर अभिमान के साथ टहलते देखकर उसने यह कहला भेजा कि हम लड़ाई लड़ने नहीं आये हैं। फिर भी उनमें से किसी ने भी इस बात को नहीं सुना। वहाँ का अङ्गरेज गुमाश्ता वाट्स खाना और सोना सब कुछ छोड़कर रातोंरात लड़ाई के लिए जरूरी सामान इकट्ठा करने में भी जी जान से परिश्रम करने लगा। इससे यह साफ जाहिर हो गया कि नवाब की अगणित सेना के द्वारा किले पर आक्रमण होते ही अङ्गरेज भी बल-पूर्वक अपनी रक्षा करने में कोई बात उठा न रखेंगे और इसी उद्देश्य से वे बड़ी-बड़ी तोपें और गोला-बारूद संग्रह कर सिपाहियों के साथ किले के फाटक को घेर कर नवाब के आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे।

सोमवार, मङ्गल और बुध—ये तीन दिन यों ही बीत गये। चौथा दिन वृहस्पति भी यों ही बीतने लगा। चारदीवारी के बाहर नवाब की फौज कतारों में खड़ी हुई थी। यदि वह चाहती तो बात की बात में कासिम बाजार के छोटे से किले को धुआँधार मचाकर राख का ढेर बना सकती थी, किन्तु अङ्गरेज लोग उन सबों को शान्त भाव से खड़ा देखकर उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का कुछ भी निश्चय न कर सके और बड़े असमंजस में पड़कर यह सोचने लगे कि नवाब के सिपाही

बन्दूकें क्यों नहीं उठा रहे हैं ? अन्त में यह प्रबल उत्कण्ठा उनसे सहन न हुई और नवाब की सेना की इस चुप्पी के रहस्य का निर्णय करने के लिए सब ने मिलकर सलाह-मशविरा की और फिर डाक्टर फोर्थ को उमरबेग के पास भेजा।

उमरबेग के पास से डाक्टर फोर्थ के किले में वापस आने पर नवाब की ओर का यह मूल अभिप्राय ज्ञात हुआ कि कासिमबाजार के अंग्रेज गुमाश्ता वाट्स को नवाब के दर्बार में हाजिर होकर एक मुचलकानामा लिख देना होगा। यदि साधारण तरीके से वे इसे स्वीकार न करेंगे तो जबर्दस्ती पकड़ कर लिखा लिया जायगा। इसीलिए इतने सिपाही और सामन्त साथ लाये गए हैं। इस सूचना से सबका कौतूहल मिट गया, किन्तु फिर भी उत्कंठा दूर न हुई। उमरबेग की बात पर विश्वास करके वाट्स ने आत्म समर्पण करने का साहस नहीं किया और यह जानने के लिये कि वास्तव में नवाब का अभिप्राय क्या है, उसने बड़े अदब के साथ एक आवेदन-पत्र लिख भेजा। उस पत्र में उसने लिखा कि, "नवाब साहब का अभिप्राय ज्ञात हो जाने भर की देर है, इसके बाद वे जो कुछ कहेंगे, अंगरेजों को वही स्वीकार होगा।' यथा समय नवाब के यहाँ से इस पत्र का केवल यही उत्तर मिला कि, "किले की चारदीवारी गिरा दो, बस, यही नवाब का एकमात्र अभिप्राय है।"

अंग्रेजों ने बड़े अदब के साथ फिर यह लिख भेजा कि नवाब साहब जो कुछ चाहेंगे, हम उसी को मन्जूर करेंगे। परन्तु इस समय नवाब ने जो कुछ चाहा, उसे सुनकर वाट्स का दिल दहल गया। वह जानता था कि अंग्रेजी दर्बार जीते जी इस बात को मन्जूर करने के लिये तैयार नहीं। वास्तव में सिराजुद्दौला के स्वभाव और उद्देश्य को कलकत्ते के अंगरेज लोग पहिचान न सके। उन्होंने कासिम बाजार पर हमले की खबर पाकर यह समझा था कि शायद यह रिश्वत या नजर-भेंट वसूल करने के लिये एक नया जाल फैलाया गया है। अतएव जैसा कुछ उन्होंने समझा उसी के अनुसार नवाब को संतुष्ट करने के लिए उपाय भी किया।

उन्होंने उसके अमीर-उमरावों को अपने हाथ में कर लिया और उसी पुराने हथकंडे अर्थात् रिश्वत और खुशामद के जोर से अपनी इच्छा के अनुसार सन्धि करने की चेष्टा करने लगे, किन्तु वे इस बार सफल न हुए और इसके लिए उन्होंने जितना धन इधर-उधर खर्च किया था, वह सब व्यर्थ हो गया! अधिक से अधिक धन व्यय करने पर भी नतीजा कुछ न निकला। बात यह हुई कि सिराजुद्दौला इन प्रलोभनों से तनिक भी विचलित नहीं हुआ।

जब सब उपाय करके निराश हो गये तब अँगरेज लोग दीवान राजबल्लभ से सलाह लेने बैठे। सिराजुद्दौला के राज्य-कार्य संचालन और नये प्रकार की विचार-धाराओं से राज-

बल्लभ यह भली भाँति समझ गया था कि इस बार साधारण झाड़-फूंक से काम नहीं चल सकता। अतएव उसने यही राय दी कि यदि वाट्स बड़े ही दीन वेश में सिराजुद्दौला के सामने जाकर खड़े होने का साहस करें तो हम भी एक बार कोशिश करेंगे। इस राय को सुन कर वाट्स बड़े असमंजस में पड़ गया। जगत् सेठ आदि प्रतिष्ठित उमरावों की सहायता से भी जब अँगरेज लोग सिराजुद्दौला को राजी न कर सके, तब कलकत्ते के अँगरेजों ने लाचार होकर अपने गुमाश्ता वाट्स को लिख भेजा कि अब देर करने से क्या होगा; जिस तरह सिराजुद्दौला राजी हो, इस समय वही करना चाहिये। इस उपदेश को बड़ी खुशी के साथ मान कर वाट्स राजबल्लभ की राय के अनुसार नवाब के दर्बार में जा कर खड़ा हो गया।

दर्बार में वाट्स के उपस्थित होते ही सिराजुद्दौला ने अँगरेजों के उद्दण्ड व्यवहार के लिये उसे बहुत ही बुरा-भला कहा और बड़ी लानत-मलामत की। वाट्स भयभीत होकर थरथराने लगा। किसी-किसी ने तो ऐसा ख्याल किया कि शायद शीघ्र ही सिराजुद्दौला वाट्स के और कठोर दण्ड का आदेश भी देगा, किन्तु उस समय क्रोधान्ध होकर भी सिराजुद्दौला अपने कर्तव्य को नहीं भूला। उसने वाट्स को स्वतन्त्रता-पूर्वक डेरे में भेज दिया और जाते समय केवल सन्धि-पत्र लिख देने की आज्ञा दी। प्राण-दान पाकर वाट्स ने उसी समय बड़ी जल्दी-जल्दी सन्धि-पत्र लिख दिया, तब जान में जान

आई। वाट्स के दस्तखती सन्धि-पत्र में ये सब बातें लिखी गईं कि :—

१—कलकत्ते का पेरिंग नामक, नया बनवाया हुआ किला, गिरा देना होगा।

२—कुछ विश्वासघातक कर्मचारी जो राजदण्ड से छुटकारा पाने के लिए कलकत्ते को भाग गये हैं, उन्हें बाँधकर ला देना पड़ेगा।

३—बिना महसूल दिये व्यापार करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जो शाही सनद हासिल की है, उसके बहाने से बहुतेरे दूसरे अँग्रेजों ने बिना महसूल दिये व्यापार करके राजकोष को जो आर्थिक हानि पहुँचाई है, उसे भर देना पड़ेगा।

४—कलकत्ते के जमींदार हालवेल के अत्याचारों से हिन्दुस्तानी प्रजा जो कठिन क्लेश भोग रही है, उसे उन सब क्लेशों से मुक्त कर देना पड़ेगा।

इतिहास-लेखकों की मन-गढ़न्त कहानियों और अपना मतलब गाँठने के लिए गढ़े हुए सरस और मधुर बातों की अपेक्षा ऊपर के ये सब कागज बड़े महत्व के हैं। इनसे सिराजुद्दौला की राजनीति का जो परिचय मिलता है उसमें और इतिहास के पृष्ठों में लिखे गये सिराजुद्दौला के वर्णन में बड़ा अन्तर है। शासित सौदागर होते हुए भी अँगरेजों ने नवाब की आज्ञा के

बिना ही जो किला बनवाया था, ऐसा कौन स्वाधीन शासक हो सकता था जो उसे गिरा देने की चेष्टा न करता? इससे तो सिराजुद्दौला के प्रबल प्रताप और शासन की दृढ़ता ही प्रकट होती है।

अँगरेज लोग भागे हुए राज्य के कर्मचारियों को बिना किसी रोक-टोक के कलकत्ते में आश्रय देते थे और कभी भूल कर भी नवाब की शक्ति का सम्मान नहीं करते थे। इसीलिए जरूरत पड़ते ही लोग कलकत्ते को भाग जाते थे। शासन की व्यवस्था को सुचारु रूप से बनाये रखने के लिए इस तरह की कार्रवाइयों को रोकना बड़ा जरूरी था।

कम्पनी के नाम की दुहाई देकर अँगरेज लोग दूसरे लोगों के हाथ बिना महसूल दिये व्यापार करने के परवाने बनाकर बहुत-सा धन अपने पेट में ठूंसते जाते थे, जिसके कारण हिन्दुस्तानियों के स्वाधीन व्यापार का नाश हो रहा था और राजकोष भी व्यापारीय महसूल से कोरा सा रह जाता था। इस तरह के स्वेच्छाचार का निवारण न करके कौन शासक अपने को शासन का अधिकारी कहकर गर्व कर सकता है? सन्धि-पत्र से सिराजुद्दौला की जिस व्यवस्थित शासन-नीति का परिचय मिलता है, बंगाल, बिहार और उड़ीसा के राजसिंहासन पर बैठकर शासन करनेवाले कितने ही स्वाधीन शासकों ने भी वैसे ही व्यवस्थित शासन-नीति का सहारा लिया था। तात्पर्य यह कि एक उत्तम शासन के लिए जिस नीति का सहारा उचित कहा

जा सकता है, वही नीति सिराजुद्दौला की भी रही। परन्तु अँगरेजों के इतिहास में सिराजुद्दौला को इसके लिए भी सौ-सौ धिक्कारें दी गई हैं।

चौथी जून को सन्धि-पत्र लिख जाने पर कासिमबाजार का अँगरेजी किला सिराजुद्दौला अधीन हो गया। उस समय लेफ्टिनेन्ट इलियट ने लज्जा के मारे आत्म-हत्या कर ली। वाट्स और चेम्बर्स सन्धि-पत्र की शर्तों का पालन करने के लिए शर्तबन्दी के तौर पर मुर्शिदाबाद में रहने के लिए बाध्य हुए। कासिमबाजार में शान्ति स्थापित हो गई। जिस सावधानी, नीति और चतुरता की बदौलत रक्तपात और मारकाट के बिना ही ये सब राज्य के कार्य पूरे हो गये उसके रहस्य और मर्म को खोजकर किसी भी इतिहास-लेखक ने सिराजुद्दौला की शासन-प्रतिभा की प्रशंसा नहीं की। कई एक तो कुटिल और अनुचित कटाक्ष करके यह सवाल करने लगे कि किले पर भी नवाब का अधिकार हो गया, सन्धि-पत्र भी लिख गया, अंगरेज लोग दण्डित और अपमानित भी हुए, फिर भी वाट्स और चेम्बर्स को कैदी अभियुक्तों के समान मुर्शिदाबाद में क्यों रखा गया।

सिराजुद्दौला जानता था कि कलकत्ते का अँगरेजी दर्बार ही अंग्रेजों का कर्त्ता-धर्त्ता है। कासिमबाजार की कोठी के अंगरेज तो उसके बहुत ही साधारण हैसियत के कर्मचारी मात्र हैं और हर एक दशा में वे कलकत्ते वालों के इशारों पर ही चलते हैं।

ऐशी दशा में कासिम बाजार के अंगरेजी गुमाश्ता वाट्स ने जो सन्धि-पत्र लिखा है, उसे जब तक कलकत्ते का अंगरेजी दर्बार भी स्वीकार न कर ले तब तक निश्चिन्त होकर बैठ रहना उचित नहीं है।

अतएव कलकत्ते के अंगरेजी दरबार को शासन-चातुरी से बश में करने के लिए ही वाट्स और चेम्बर्स को मुर्शिदाबाद में नजरबन्द रखना पड़ा। परन्तु वाट्स और चेम्बर्स को मुर्शिदाबाद में रहते हुए पन्द्रह दिन बीत गये। इतना अवकाश पाकर भी कलकत्ते के अंगरेजों ने सन्धि-पत्र के सम्बन्ध में अपनी कुछ भी राय प्रकट नहीं की। इस ओर अंगरेजों के गुमाश्ता वाट्स की बीबी नवाब के महल में जाकर वेगमों के पास खुशामद करने लगी। उसके कहने-सुनने का प्रभाव सिराजुद्दौला की माता पर विशेष रूप से पड़ गया। इसीलिए सिराजुद्दौला की दयालु माता ने उन दोनों अंगरेजों को छोड़ देने के लिए सिराजुद्दौला से कहा। सिराजुद्दौला अपनी माता की बात को टाल न सका और बिलकुल इच्छा न रहते हुए भी वह उन दोनों अंगरेज बन्दियों को मुक्ति-दान देने के लिए बाध्य हुआ।

उस समय के अँग्रेज इतिहास-लेखक ने इस सन्धि-पत्र की समालोचना करते हुए लिखा था कि:—

"फ्रान्सीसियों के साथ लड़ाई-झगड़े की आशंका रहते हुए

पहली शर्त का पालन असम्भव है। व्यापार की रक्षा के लिए शरण में आश्रय पानेवाले अंग्रेज बन्धुओं को आश्रय देना अधिक आवश्यक है और ऐसी दशा में दूसरी शर्त को मानकर चलना भी असम्भव है और तीसरी शर्त का पालन करने में निस्सन्देह बहुत सा-धन दण्ड के रूप में देना पड़ेगा, क्योंकि बिना महसूल दिये व्यापार करने में कुछ न कुछ गोलमाल होता ही रहा है।'

इधर थोड़े ही दिनों में सिराजुद्दौला ने सुना कि अंगरेज लोग सन्धि-पत्र की शर्तों को मानकर कार्य करने को तैयार नहीं हैं। अंगरेजों के इस कूट-कौशल का परिचय पाकर वह आग-बबूला हो गया और सोचने लगा कि, "क्या इन्हीं अंगरेजों ने कहा था कि नवाब का अभिप्राय मालूम हो जाने भर की देर है, उसके बाद नवाब जो चाहेंगे, वही हमें मन्जूर होगा। इन्होंने सन्धि-पत्र की शर्तों के पालन करने की प्रतिज्ञा करके बीबी वाट्स के आँसुओं से अंगरेज कैदियों के लिए मुक्ति का पत्र लिखा लिया था!"

सिराजुद्दौला ने बहुत कुछ सहा था, अब और अधिक वह न सह सका। बस, यही उसका प्रधान अपराध हुआ। मारे क्रोध के उसके दोनों नेत्रों से आग की चिनगारियाँ सी निकलने लगीं। नाना अलीवर्दी खाँ का अन्तिम उपदेश उसके सामने ही अग्नि के अक्षरों में जल उठने के समान याद हो आया। वह तुरन्त सावधान हो गया और आलस्य में व्यर्थ समय न खोकर

उसने कलकत्ते को एक दूत भेजा और स्वयं सेना के साथ युद्ध-यात्रा करने का बन्दोबस्त करने लगा।

अँगरेजों द्वारा बार बार अपमानित होकर सिराजुद्दौला जितना दुःखी हो चुका था, उसे याद रखने पर कलकत्ते के आक्रमण के लिए उस पर कोई दोषारोपण नहीं किया जा सकता। परन्तु कलकत्ते पर आक्रमण करना ही उसके अन्त का कारण हुआ। यदि वह अंगरेजों के साथ लड़ाई न ठानता तो उस दशा में उसका इतिहास कैसा रूप धारण करता कोई नहीं कह सकता। चारों ओर से जो अनेक शक्तियाँ सिराजुद्दौला के विरुद्ध मिलकर इकट्ठी हो गई थीं, अंगरेजों की उद्दण्डता और स्वेच्छाचार केवल उन्हीं समस्त उत्तेजनाओं का विषैला फल और उन्हीं के विद्वेषों का बाहिरी निदर्शन था।

इस परिस्थिति में यदि युद्ध के द्वारा अपनी रक्षा करके राज्य की सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए सिराजुद्दौला कोई प्रयत्न भी न करता तो भी उसे शीघ्र ही अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता। युद्ध करना और न करना, इन दोनों का परिणाम सिराजुद्दौला के लिए समान ही था। यदि पिछली घटनाओं पर ध्यान देकर विचार किया जाय तो यह मानना ही पड़ेगा कि सब तरह से निरुपाय होकर ही सिराजुद्दौला ने बल-प्रयोग करने के उपाय को अपनाया था, परन्तु अंगरेज लोग इस बात को स्वीकार करके के लिए तैयार नहीं हुए। आदि से लेकर अन्त

तक की सारी बातों की आलोचना किये बिना ही उन्होंने लिख रखा कि :—

"कासिम बाजार को अपने अधिकार में करके और अंग्रेजों की नरमी और खुशामद की मीठी बातें सुनकर नवाब को यह विश्वास हो गया था कि अंग्रेज लोग उससे बुरी तरह डर गये हैं; अतएव इस समय कलकत्ते पर आक्रमण करने से सहज ही में सब काम सिद्ध हो जायगा। उन्हें युद्ध में हराकर उनकी सारी दौलत लूट लेना बिलकुल आसान हो जायगा। केवल यही सोचकर सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर आक्रमण किया था।"

कलकत्ते पर आक्रमण

कासिम बाजार का मामला निपटा कर सन् १७५६ ईसवी के जून महीने की ५ वीं तारीख को सिराजुद्दौला कलकत्ते की ओर अपने सैनिकों के साथ चल पड़ा। उन दिनों सैनिकों को साथ लेकर यात्रा करना निस्सन्देह कुछ और ही बात थी। उस समय संसार में रेलों का कहीं निशान तक न था। सड़कें भी हर जगह मौजूद न थीं। जिस समय सिराजुद्दौला ने कलकत्ते की ओर कदम बढ़ाया था, उस समय सख्त से सख्त धूप पड़ रही थी, क्योंकि वे दिन ही गरमी के थे। उस पर रमजान के दिन जब कि सेना के अधिकांश मुसलमान अफसर और सिपाही दिन-दिन भर रोजा रखते थे। भारी-भारी तोपें और दूसरा सब सामान, जिसके बिना उन दिनों यात्रा करना भी असम्भव था और जिसे हाथियो और बैलों से खिंचवाकर ले जाना होता था। इन समस्त दशाओं में सिराजुद्दौला की सेना ने ग्यारह दिन के अन्दर एक सौ आठ मील का सफर तै किया।

अँग्रेजों के काफी युद्ध के जहाज कलकत्ते पहुँच चुके थे, और इन लोगों ने अपनी ओर से सिराजुद्दौला के विरुद्ध खुली बगावत शुरू कर दी थी। इस बीच १३ जून को अँग्रेजी सेना ने

कलकत्ते से पाँच मील नीचे हुगली का किला वहाँ के मुट्ठी भर भारतीय संरक्षकों के हाथों से छीन लिया था। सिराजुद्दौला ने कलकत्ते जाने से पहले इस किले को फिर से विजय किया। इस छोटे-से संग्राम में नदी के ऊपर से अँग्रेजों की जहाजी तोपें और किनारे पर से सिराजुद्दौला की तोपें, दोनों में कुछ देर तक खासा मुकाबला रहा। किन्तु आखिरकार अँग्रेजी सेना को हार कर अपने जहाजों सहित पीछे हट जाना पड़ा।

सिरौजुद्दौला उस समय भी वृथा रक्त बहाने के विरुद्ध था। अब भी वह इन अंग्रेज व्यापारियों के साथ अमन से रहने के लिए तैयार था। वह अब भी यह चाहता था कि यदि अँगरेज अपने इस समय तक के अपराधों के बदले में बतौर जुर्माने या हर्जाने के थोड़ा बहुत भी धन पेश करने को तैयार हों और आयन्दा अमन से रहने का वादा करें तो सुलह की जा सकती है और व्यापार सम्बन्धी समस्त अधिकार उन्हें फिर से मिल सकते हैं। कलकत्ते के अँग्रेज अफसरों को भी इसकी सूचना दे दी गई। यदि वे चाहते तो उस समय भी सिराजुद्दौला के साथ सुलह कर सकते थे। किन्तु ये लोग अपने षड़यन्त्रों के बल सिराजुद्दौला का नाश करने पर तुले हुये थे।

ईमानदारी की लड़ाई में अँग्रेज लोग सिराजुद्दौला का किसी तरह मुकाबला न कर सकते थे। फौज और सामान दोनों की उनके पास बेहद कमी थी उनका सब से बड़ा हथियार था— रिशवतें देकर, लालच देकर तथा झूठे वादे करके सिराजुद्दौला

के आदमियों और सैनिकों को अपनी ओर फोड़ लेना। वही वाट्स और उसके अंगरेज साथी जिनकी सिराजुद्दौला ने जाने बख्शी थीं इस समय उसकी सेना के अन्दर इस प्रकार की साजिशों के जाल पूर रहे थे।

सिराजुद्दौला की सेना में और खासकर उसके तोपेखाने में अनेक यूरोपियन तथा अन्य ईसाई नौकर थे। ईसाई पादरियों के दस्तखतों से एक दूसरे के बाद तीन व्यवस्था-पत्र निकाले गये। जिनमें लिखा था कि किसी भी ईसाई-धर्मावलम्बी के लिए मुसलमानों का पक्ष लेकर अपने सहधर्मियों के खिलाफ लड़ना ईसाई धर्म के विरुद्ध और महापाप है। ये व्यवस्था-पत्र गुप्त ढंग से सिराजुद्दौला के ईसाई मुलाजिमों में बाँटे गये। इन्हीं पत्रों द्वारा सिराजुद्दौला के मुलाजिमों को यह भी लालच दिया गया कि यदि तुम नवाब की सेना से भागकर अंग्रेजों की ओर चले आओगे तो तुम्हें फौरन अंग्रेजी सेना में नौकर रख लिया जायगा। इस तरह की चालों द्वारा काफी नमकहराम सिराजुद्दौला की सेना में पैदा कर दिये गये।

कलकत्ते के अंगरेजों का व्यवहार इस अवसर पर अपने हिन्दुस्तानी मददगारों के साथ अत्यन्त खराब था। सिराजुद्दौला के आने की खबर पाते ही इन लोगों ने कलकत्ते के तमाम हिन्दू और मुसलमानों को, जिनमें अधिकतर कम्पनी के देशी मुलाजिम गुमाश्ते, व्यापारी और मजदूर थे, अरक्षित छोड़ दिया। उनसे कह दिया गया कि अंग्रेज तुम्हारी रक्षा न करेंगे।

तमाम यूरोपियनों, हिन्दुस्तानी ईसाइयों मर्द; औरत और बच्चों, यहाँ तक कि उनके ईसाई गुलामों तक को अपनी कोठी के आस-पास मकानों में जमा कर लिया और बाहर चारों ओर के हिन्दुस्तानी मकानों को आग लगा दी, ताकि सिराजुद्दौला से लड़ने के लिए मैदान साफ़ हो जाय।

इतना ही नहीं। मालूम होता है कि ये लोग उस समय किसी भी हिन्दुस्तानी पर विश्वास न कर सकते थे। सुप्रसिद्ध अमीचन्द, उसके साले हजारीमल और दीवान राजबल्लभ के बेटे राजा कृष्ण बल्लभ, इन तीनों को अंग्रेजों ने कैद करके रखना आवश्यक समझा। यह वह अमीचन्द था जिसकी सहायता के बिना अंगरेजी व्यापार अथवा अंगरेजी सत्ता दोनों में से किसी के भी पैर बंगाल के अन्दर हर्गिज न जम सकते थे और राजा कृष्ण बल्लभ अंग्रेजी कम्पनी का वह शरणागत था, जिसे उन्होंने सिराजुद्दौला के हवाले करने तक से इन्कार कर दिया था।

जिस समय अङ्गरेज सिपाही अमीचन्द को पकड़ने के लिए उसके मकान पर पहुँचे अमीचन्द ने फौरन अपने तईं उनके हवाले कर दिया। किन्तु हजारीमल और राजा कृष्ण बल्लभ से यह अपमान न सहा गया। उन दोनों ने अपने आदमियों को अंगरेज सिपाहियों पर गोली चलाने का हुकुम दिया। लड़ाई में हजारीमल वीरता के साथ लड़ा। उसका बायाँ हाथ उड़ गया और अन्त में तीनों गिरफ़ार कर लिये गये। इसके बाद जब अंगरेज

अफसरों ने अपने उन्मत्त गोरे सैनिकों को अमीचन्द के जनानखाने की ओर बढ़ने का हुकुम दिया तब अमीचन्द के एक वफादार हिन्दुस्तानी जमादार का रक्त खौलने लगा। गोरे सिपाहियों की नियत स्पष्ट थी। ऑर्म नामक यूरोपियन इतिहास लेखक इस घटना के विषय में लिखता है :—

"अमीचन्द के जमादार ने, जो एक ऊँची जात का हिन्दुस्तानी था, मकान को आग लगा दी। और फिर कहा जाता है, इसलिए ताकि विदेशी लोग घर की स्त्रियों की बेइज्जती न कर सकें, उसने जनानखाने में घुसकर अपने हाथ से तेरह स्त्रियों का काम तमाम किया और फिर अन्त में अपने भी खंजर घोंप लिया। किन्तु उसका अपना जख्म कारगर न हो सका।"

अनेक अँगरेज इतिहास लेखक शिकायत करते हैं कि बहुत से भारतीय कुलियों, मल्लाहों और नौकरों ने उस समय अंग्रेज व्यापारियों का साथ छोड़ दिया। यदि यह शिकायत सच्ची है तो पूर्वोक्त अत्याचारों में इसके लिए काफी कारण मिल सकते हैं।

सातवीं जून प्रातःकाल के समय कलकत्ते के अँगरेजों को खबर मिली थी कि नवाब ने कासिमबाजार पर कब्जा कर लिया है और सेना के साथ स्वयं सिराजुद्दौला कलकत्ते पर आक्रमण करने के लिए युद्ध की यात्रा कर रहा है। बस, उसी दिन

झटपट ढाका, बालेश्वर, जगदिया आदि विविध स्थानों की अंगरेजी कोठियों के कर्मचारियों को पत्र लिखे गये कि कोठी के जरूरी कागज-पत्र और सारा सामान समेटकर फौरन ही सुरक्षित स्थानों में चले जाओ। राजर ड्रेक नामक अँगरेज उस समय कलकत्ते का गवर्नर था। उसने लड़ाई के द्वारा नगर की रक्षा करने के लिए सेना इकट्ठी करने का बन्दोस्बत किया।

अँगरेज लोग जानते थे कि सिराजुद्दौला के दर्बार में अधिक तर लोग धन के लोभी हैं। अमीर, उमराव और वजीर लोग भी प्रायः खुशामदी टट्टू और राय देने के लिए मानों खरीदे हुए गुलाम से हैं। फिर अभी इस महत्वपूर्ण प्रश्न के हल होने में भी कुछ देर है कि सिंहासन सिराजुद्दौला का है या शौकतजंग का! ऐसी दशा में अँगरेजों ने सोचा कि हम सिराजुद्दौला की बातों से किला क्यों गिरा दें? अनेक शत्रुओं के रहते हुए राज सिंहासन छोड़ वह स्वयं फौज लेकर भला किस तरह कलकत्ते पर आक्रमण करने का साहस करेगा? यह लड़ाई का सामान केवल बाहरी आडम्बर के सिवाय और हो ही क्या सकता है? इसलिए अनेक कष्ट उठाकर नगर की रक्षा का प्रबन्ध करके क्या होगा?

यदि इन गीदड़-भपकियों को बहुत कुछ बढ़ाकर दिखाने के लिए नवाब की फौज वास्तव में कलकत्ते पर धावा कर दे तो भी डरने का क्या कारण है? हम लोग व्यापार की रक्षा

के लिए न जाने कितने धन का खर्च कर डालते हैं। फिर चिन्ता किस बात की है? नवाब के फौजी अफसरों को भी थोड़े से रुपयों का लालच देकर राजी कर लिया जायगा। और यदि स्वयं सिराजुद्दौला ही आ गया तो उससे भी डरने का कोई काम नहीं। उसे भी दस-बीस हजार रुपये दे देने से ही काम बन जायगा क्योंकि इतने से ही धन का लालची वह नवाब चुपचाप मुर्शिदाबाद को लौट जाने में जरा भी संकोच न करेगा!

अँगरेजों का यह विचार करना एकदम असत्य भी नहीं था। कलकत्ते में नवाबी दर्बार की रोज-रोज की जो गुप्त खबरें अँग-रेजों को मिला करती थीं उन पर विचार करके ही उन्होंने अपना वैसा सिद्धान्त जैसा कि ऊपर कहा गया है, निश्चित कर लिया था। सिराजुद्दौला ने जिस समय कलकत्ते पर आक्रमण करने का इरादा अपने अमीर-उमरावों पर प्रकट किया, उस समय अँगरेजों के शुभ-चिंतक घूसखोर राजकर्मचारियों ने फौरन ही उसके इस इरादे का जोरदार शब्दों में विरोध किया। उन सबके विरोध करने का सारांश केवल इतनी ही चन्द बातें थी :—

"अभी मौका नहीं है। राजसिंहासन की हालत आज भी ठीक नहीं है। जिधर दृष्टि जाती है उधर ही रास्ते में काँटे ही काँटे दिखाई पड़ रहे हैं। शौकतजंग का प्रभाव अभी दूर नहीं हुआ है। अँगरेज लोग बेचारे शान्त स्वभाव के बनिये हैं। सच

कहा जाय तो उनके द्वारा ही इस देश का इस समय बड़ा कल्याण हो रहा है," इत्यादि ।

इस मौके पर अँगरेज इतिहास-लेखक अर्मी लिखता है कि :—

"जगत् सेठ के दोनों पुत्रों, महताबराय और रूपचन्द, ने भी जिनके पिता ने अँगरेजों के साथ व्यापार में बहुत लाभ उठाया था, कलकत्ते पर आक्रमण न करने के लिए अंग्रेजों की ओर से सिराजुद्दौला की बहुत कुछ खुशामद बरामद की परन्तु कुछ फल न हुआ ।"

सिराजुद्दौला ने सोचा कि ये सब स्वार्थी मंत्री लोग आप ही आप बीच में पड़कर छिपे-छिपे अँगरेजों की उद्दण्डता और उनके साहस को बढ़ा रहे हैं। इसलिए उसने किसी की बात पर ध्यान न देकर फौज को युद्ध-यात्रा के लिए कूच करने की आज्ञा दी। ख्वाजा वाजिद इस समय हुगली में था। अँगरेजों के अनुरोध से वह भी नवाब को शान्त करने के लिए, समझाने-बुझाने आया था। परन्तु सिराजुद्दौला ने उससे कहा कि :—

"ड्रेक साहब ने मेरा बड़ा अपमान किया है। नवाब मुर्शिदकुली खाँ के जमाने में अँगरेज लोग जिस तरह केवल व्यापार व्यवसाय पर संतोष करते थे, यदि इस समय भी वे उसी तरह से रहना चाहें तो उन्हें आश्रय देना मेरा कर्त्तव्य

है अन्यथा इन लोगों को अन्य किसी कारण से भी इस देश में रहने के लिए स्थान और आश्रय नहीं दिया जा सकता।"

उस समय कलकत्ते में सिर्फ कुछ हजार ही अंगरेज सौदागर रहते थे। वे जिस प्रकार संख्या में बहुत कम थे उसी प्रकार सैनिक शिक्षा में भी बिलकुल अनभिज्ञ थे। उन्हें पराजित करने के लिए अधिक सेना की आवश्यकता न थी। सिराजुद्दौला इसे जानता था, परन्तु बाद में उसकी गैर हाजिरी में मौका पाकर उसका बुरा चाहने वाले षड़यंत्रकारी लोग शौकतजंग को तख्त पर बैठा कर सर्वनाश न कर डालें, इस भय से जिन-जिन प्रधान पुरुषों पर उसे विशेष सन्देह था, उन्हें भी उस समय अपने साथ लेकर उसने युद्ध के लिए कूच किया। सिर्फ थोड़े-से सच्चे और आज्ञाकारी सरदार राजधानी की रक्षा के लिए मुर्शिदाबाद में रहने दिया। राज बल्लभ, जगत् सेठ, मीरजाफर, मानिकचन्द सभी को, इच्छा न रहते हुए भी, फौज लेकर नवाब सिराजुद्दौला के साथ कूच करना पड़ा।

अंगरेजों का यह ख्याल नहीं था कि सिराजुद्दौला इतनी सावधानी और बुद्धिमानी से राजधानी के झगड़ों की आशंका मिटाकर बिलकुल बेखटके बड़ी सेना और बड़े समारोह के साथ कलकत्ते पर आक्रमण करने में सफल-मनोरथ होगा। सातवीं जून की सुबह को इस खबर ने कलकत्ते के अंगरेजी महल में बड़ी हलचल मचा दी। अंगरेजों ने देखा कि सिराजुद्दौला तो

एक प्रकार आ पहुँचा है। बस, अब और अधिक मौका नहीं है। जो कुछ करना है, उसे जल्दी ही करना चाहिए। परन्तु रण-कुशल सेनापतियों के अभाव में किसी भी काम का सिलसिला न बंध सका, फिर जहाँ तक बन पड़ा, अँगरेज लोग प्राण-प्रण से अपनी रक्षा का उपाय करने लगे। बाग बाजार में पेरिंग नामक जो नया किला बनवाया गया था, उसमें ढेर की ढेर तोंपे जुटा दी गई। जल-मार्ग से शहर पर हमला होने की आशंका के कारण बाग बाजार वाली खाल की धार में युद्ध के जहाज सुरक्षित रखे गये। पन्द्रह सौ अस्थायी सिपाही भर्ती करके 'मराठा-खाई', के किनारे तैनात कर दिये गये। चारदीवारी की यथा साध्य मरम्मत कराके उसमें अन्न आदि सामान इकट्ठा किया गया। मद्रास वालों से मदद माँगने के लिए एक पत्र और नगर की रक्षा के लिए डच और फ्राँन्सीसियों के पास सहायता देने की प्रार्थना करने के लिए एक दूत भेजा गया।

डच लोग बड़े शान्त स्वभाव वाले और सच्चाई के साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करने वाले सौदागर थे। वे बैठे-बैठाये लड़ाई मोल लेकर नवाब से युद्ध ठानने के लिए तैयार नहीं हुए। फ्राँन्सीसी लोग हमेशा के चालबाज थे ही, उन्होंने कहला भेजा कि, "यदि अँगरेजी शेर प्राणों के भय से बहुत ही भयभीत हो रहे हैं तो फौरन ही बिना किसी रोक-टोक के हमारे चन्दर नगर वाले किले में भाग कर आश्रय ले सकते हैं। वहाँ चले

आने पर आश्रितों की प्राण रक्षा के लिए फ्राँन्सीसियों के वीर सिपाही अपने प्राण दे देने में तनिक भी संकोच न करेंगे और न अपने मन को उदास होने देंगे।' इस भयानक संकट के समय में अपने बहुत पुराने दुश्मन फ्राँन्सीसी सौदागरों की इन मर्मभेदी तानेदार व्यंग बातों को सुनकर अंगरेल लोग बड़ी बुरी तरह से निरुपाय हो गये और बाहु-बल से आत्म-रक्षा करने के लिए अपने भिन्न-भिन्न दलों को युद्ध की शिक्षा देने लगे।

नगर की रक्षा का पूरा बन्दोबस्त कर चुकने के बाद अंग्रेज लोग युद्ध के लिए व्याकुल होने लगे। इस बात पर विचार करने की चेष्टा किसी ने भी नहीं की कि सिराजुद्दौला का अभिप्राय क्या है? वह कासिम बाजार की तरह मारकाट के बिना ही सारे झगड़ों का फैसला करेगा अथवा हाथ में तलवार लेकर कलकत्ते के आस पास खून की नदियाँ बहायेगा।? सिराजुद्दौला जिस समय आधी ही दूर तक पहुँचा था उसी समय अंगरेज लोग युद्ध में अपने बाहु-बल का परिचय देने के लिए बड़े उत्सुक और आतुर हो उठे थे। उनके दिन कटते ही न थे। किन्तु समय आने पर उलटा ही दृश्य दिखाई पड़ने लगा। कलकत्ते के पास नवाब की बड़ी-बड़ी देशी तोपें जिस समय भयानक रूप से धुआँ उगलती हुई गर्जना करने लगी और इस प्रकार नवाब के आने की घोषणा करने में काफी समय लगा दिया, उस ससय अंगरेजों के छक्के छूट गये और बहुत ही भयभीत होकर नवाब

को प्रसन्न करने के लिये तरह-तरह के माया-जाल फैलाने में उन्होंने कोई कसर न की।

सिराजुद्दौला को शान्त करने और राजधानी की ओर लौट जाने के लिए उन्होंने बहुत-सा धन खर्च करके नजर-भेंट देने और हर तरह से मिन्नतें करने में जरा भी त्रुटि नहीं होने दी। परन्तु सिराजुद्दौला ने किसी तरह भी अपना इरादा नहीं बदला। जब सभी उपाय बेकार साबित हुए तब लाचार होकर अंगरेज सौदागर नगर की रक्षा के लिए अपने-अपने निश्चित स्थानों में आकर जमा होने लगे। बाहर तो नवाव के पड़ाव से तोपों की भयानक आवाजें उठ रही थी और भीतर अंगरेजों की मण्डली में उससे भी अधिक दर्दनाक शोरगुल मचा हुआ था। ऐसी नाजुक हालत में अंगरेजी फौज, उत्कण्ठा, घबड़ाहट और पराजय की चिन्ता में अधिक दुःखी रहकर कोरी आँखों रात बिताने लगी। जो लोग किले की रक्षा के लिए कमर कस चुके थे, हालवेल नामक अंगरेज लिखता है कि—"उनमें यूरोपियन सिपाही और सरदारों की संख्या साठ से अधिक नहीं थी। उँगलियों पर गिने जानेवाले इन थोड़े-से सैनिकों ने भय से काँपकर यदि घोर कोकाहल मचाया तो उसमें आश्चर्य की बात ही क्या है?"

कलकत्ते के पुराने किले का अब निशान भी शेष नहीं रह गया है। यह किला पूरब पच्छिम दो सौ दस गज, दक्खिन की ओर एक सौ तीस गज और उत्तर की ओर केवल एक सौ

गज चौड़ा था। चारों ओर मजबूत चारदीवारी के चारों कोनों पर चार बुर्ज थे। हर एक बुर्ज पर दस तोपें लगी रहती थीं और पूरब में सदर फाटक पर पाँच बहुत बड़ी तोपें फाटक की रक्षा के लिये लगा दी गई थीं।

नवाब इब्राहीम खाँ के कमजोर शासन में मौका पाकर जिस समय सभासिंह और रहीम खाँ वर्धमान में अपना स्वाधीन राज्य संस्थापित करने का उद्योग कर रहे थे, उसी समय चुँचुड़ा निवासी डच और चन्दरनगर वाले फ्रान्सीसियों की तरह सुतानटी के अंग्रेज सौदागरों ने भी कलकत्ते में एक छोटा-सा किला बनवा लिया था। आगे चलकर वही किला फोर्ट विलियम के नाम से प्रसिद्ध होकर अंग्रेजों का मुख्य आश्रय-स्थान बन गया।

नगर की रक्षा का पूरा बन्दोबस्त कर लेने पर अंग्रेजों ने किले की हिफाजत के लिये पूरब, उत्तर और दक्खिन की ओर तोपों के तीन मोर्चे बनवाकर उन पर निशाने को भेदने वाली बड़ी-बड़ी तोपों को सजा रखा था। सब लोग ख्याल करते थे कि किसी तरह नगर में प्रवेश कर लेने पर भी सिराजुद्दौला इन भयानक तोपों के रहते हुए कभी किले के भीतर घुस न सकेगा और शायद इसी भरोसे पर बहुत-से लोगों ने हिम्मत बाँधकर किले के अन्दर आश्रय लिया था।

अनेक वीर पुरुष जो लड़ाई के आरम्भ में ही नगर-रक्षा की

आशा को तिलांजलि दे चुके थे और सैकड़ों प्रकार की कोशिशों से स्वयं अपनी रक्षा करने के लिए, भय से काँपती हुई अंग्रेज महिलाओं के साथ झटपट एक-एक करके किले के भीतर से भाग खड़े हुए थे, उनमें से किसी-किसी ने अपनी कही हुई कायरता-पूर्ण कहानी बड़े ही कौतुक-पूर्ण शब्दों में इस प्रकार लिखा है :—

"किले की चारदीवारी बिलकुल जराजीर्ण हो गई थी, अतएव साहस करके किले के भीतर बने रहने से भी क्या होता। यदि और किसी कारण से नहीं तो एक अन्न के अभाव के कारण ही हमें हार मानना पड़ती। गोला बारूद इतना कम था कि तीन दिन से ज्यादा हम लोग किसी तरह अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे। यह सच है कि तोपों की कमी न थी, परन्तु उनमें से अधिकांश में पहिये नहीं थे, इसलिये वे चल ही न सकतीं थीं और बिलकुल बेकार हालत में चारदीवारी के पास टूटी-फूटी पड़ी हुई थीं। उन्हें काम में लाने का कोई भी उपाय न था।"

किले की हालत यदि वास्तव में इतनी शोचनीय थी तो फिर इसमें उन लोगों का अपराध ही क्या ? परन्तु जिनका किला ऐसा कमजोर था, जिनके पास रसद की इतनी कमी थी, जिनके हथियार ऐसे निकम्मे थे, वे फिर किस बिरते पर सिराजुद्दौला की विशाल सेना के सामने कमर बाँधकर खड़े हो

गये थे। इस बात पर विचार करने की चेष्टा किसी ने भी नहीं की।

कलकत्ते से दक्खिन की ओर 'मराठा खाई' नहीं थी। इस ओर घना जङ्गल था। नवाब की सेना को इस ओर जाने का रास्ता मालूम न था। इसलिए नगर के उत्तर की ओर वराहनगर में पड़ाव डालकर नवाब की सेना ने बागबाजार के रास्ते से नगर में प्रवेश करने का उद्योग आरम्भ किया। १८ जून के प्रातःकाल को नवाब के सिपाहियों ने तोपों में आग लगाई। अंग्रेजी फौज बड़ी दृढ़ता के साथ उनके आक्रमण के वेग को सब तरह से बेकार करने के लिए पेरिंग नामक किले से गोले बरसा रही थी। इसीलिए नवाब की सेना सहज ही बाग-बाजार की ओर क़दम न बढ़ा सकी। बहुत कुछ कष्ट करने पर कुछ सिपाही खाल के किनारे की एक झाड़ी से होकर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे।

अमीचन्द का जख्मी जमादार छुपे-छुपे भागकर नवाब के डेरे में पहुँचा। उसने सिराजुद्दौला को गुजरी हुई घटना का वृतान्त आदि से लेकर अन्त तक कह सुनाया और दक्खिन और पूरब की ओर से आक्रमण करने का गुप्त भेद उसे बता दिया। बस, रात्रि का अन्त होते ही उत्तर की ओर तोपों का गर्जन बिलकुल बन्द हो गया। पूरब और दक्खिन की ओर से सहसा गोले बरसने लगे। अंग्रेजों ने भी शीघ्र ही मोर्चों पर जाकर नगर की रक्षा के लिए तोपों में आग लगाना शुरू किया।

लालबाजार वाले रास्ते के ऊपर पूरब की ओर जो तोप-मंच बनाया गया था, उसके सामने ही कुछ दूर पर जेलखाना था। अंग्रेजों ने उस जेलखाने की उत्तर वाली दीवार में छेद फोड़कर वहाँ कई एक तोपें जुटा रखी थीं और लालबाजार के रास्ते से नवाबी सेना के शहर में घुसते ही जेलखाना और पूरब वाले तोपों से एकदम आग बरसाकर दुश्मन की सेना का सर्वनाश करने की ठानकर बड़े हर्ष के साथ युद्ध-क्षेत्र की ओर कदम बढ़ाना आरम्भ किया परन्तु नवाब की सेना अनजानों की तरह सीधा रास्ता पकड़ कर तोपों के सामने नहीं बढ़ी।

उसने बड़ी होशियारी से काम लेकर सड़क वाला रास्ता ही छोड़ दिया। केवल पहरेदार सिपाहियों को पराजित कर वह उत्तर और दक्खिन की ओर हटने लगी। देखते ही देखते अंग्रेजी तोपों के तीनों मोर्चे तीनों ओर से घिर गये। फिर तो नगर की रक्षा करना असम्भव हो गया। पूरब वाले मोर्चे का अफसर कप्तान क्लेटन और उसका सहायक हालवेल दोनों ही किले के भीतर भाग गये और नवाब की सेना को चारों ओर अधिकार जमाने का मौका मिल गया। सैनिकों ने अंग्रेजी तोपों मोर्चों पर कब्जा करके उन्हीं के तोप-गोलों से किले के भीतर वाले अंग्रेजों पर गोले बरसाना शुरू किया। वीरों के पैरों की धमक से कलकत्ते की जमीन बड़े जोरों के साथ काँपने लगी।

किले के नीचे गङ्गा में कई नावें और एक जहाज लगा हुआ

था। शाम को उसी जहाज पर स्त्रियों को किसी दूसरे स्थान में भेज देने का बन्दोबस्त किया गया। जहाज तक इन महिलाओं को सुरक्षित पहुँचाने के लिए मेनिंहम और फ्राकलेण्ड उनके साथ गये। रात्रि के अन्धकार में किले के भीतर से चुपके-चुपके निकल कर गङ्गा के किनारे जा पहुँचे। स्त्रियाँ जहाज पर सवार हो गई परन्तु मेनिंहम और फ्राकलेण्ड के मुँह में भी पानी आ गया। वे भी जहाज से उतरने को राजी न हुए। ऐसी अनिवार्य दशा में जब किले की रक्षा करना असम्भव हुआ तब अनेक बार बड़े-बड़े रण बाँकुरे बहादुर किला छोड़ देने पर बाध्य हुए। इसमें लज्जित होने की कोई बात नहीं परन्तु मेनिंहम और फ्राकलेण्ड ने जैसी दशा में किले को छोड़ औरतों के साथ जहाज पर भागकर अपनी कायरता का परिचय दिया था, उससे अँगरेज इतिहास-लेखकों को भी मारे शरम के सिर नीचा करना पड़ा है। थरन्टन लिखता है :—

"ऐसी दशा में किले में घिरे हुए लोगों को किला छोड़ने और जहाज पर भाग जाने की युक्ति सोचना एक साधारण बात थी और लोग बिना किसी मान-हानि के डर से भाग सकते थे। परन्तु उनमें पारस्परिक मन-मुटाव और मतभेद तथा कम्पनी के कुछ प्रधान कर्मचारियों की बिना कुछ हानि उठाये ही भाग जाने की दुष्ट इच्छा, यह ऐसे नीच काम थे, जो पराजय के अन्तिम समय में किये गये और शायद अँगरेजों से और कभी नहीं हुए।"

जिन्होंने किले के भीतर आश्रय लिया था, उनके क्लेश की सीमा न रही! सब कोई दूसरों को सिखाने के लिए तैयार थे, परन्तु स्वयं किसी की बात नहीं मानना चाहते थे। बाहर तो नवाब की सेना विजय के उल्लास में बड़ी वीरता के साथ कूद-फाँद कर शोर मचा रही थी। किले के भीतर अँगरेजों की मण्डली में भयानक कोलाहल मचा हुआ था। अँगरेजों की चिल्लाहट, सिपाहियों का आपसी वाद-विवाद और झगड़ा तथा सेनापतियों का मति-भ्रम आदि कारणों से किले के भीतर शासन-शक्ति का पूर्ण रूप से लोप हो गया था, इसीलिए उस समय वहाँ कोई किसी की बात नहीं मानता था।

आधीरात के समय नवाब की सेना किले की चारदीवारी को लाँघने के लिए कटि-बद्ध हुई। यह देखकर किले की रक्षा के लिए आगे बढ़ना तो दूर रहा, सब अपने-अपने प्राणों की चिन्ता में व्याकुल होने लगे। सेनानायक ने लगातार तीन बार नगाड़े की चोट से सैनिकों को आवाज देने की कोशिश की, परन्तु द्वार पर के सिपाहियों को छोड़कर दूसरे किसी सिपाही ने भी उस आवाज पर ध्यान नहीं दिया। नवाब की सेना, यह समझ कर कि किले वाले जाग रहे हैं और अपने-अपने हथियारों से भी लैस हैं, अपने डेरों में वापस चली गई। परन्तु उस रात को अँगरेजी किले में किसी की पलक लगाने तक का मौका न मिला।

रात के दो बजे अँग्रेजों की युद्ध-सभा का अधिवेशन हुआ।

नीचे दर्जे के सिपाहियों को छोड़कर शेष सभी लोग इस सभा में शामिल हुए। दो घण्टे के वाद-विवाद के बाद यह निश्चय हुआ कि इस नाजुक हालत में किले की रक्षा के लिए प्रयत्न करना बेकार है। बही-खाता और जमा-पूंजी समेट कर भाग चलना ही इस समय बुद्धिमानी का काम होगा। परन्तु कब भागना होगा और किस प्रकार भागना होगा, इन सब बातों की कुछ भी विवेचना उस समय नहीं हो सकी।

नदी के किनारे जो नावें बँधी हुई थी, उनमें से अधिकांश रातोंरात चली गईं। प्रातःकाल पुर्तगाल रमणियों और बाल-बच्चों को जहाज पर बैठाने के लिए एक गुप्त दर्वाजा ज्योंही खोला गया त्योंही और बहुत-से लोगों ने भी भागकर और गङ्गा के किनारे जहाज के पास आकर कोलाहल मचा दिया। इस कोलाहल में किसी ने किसी की बात को नहीं सुना। उनमें से हर एक आदमी सबसे पहले जहाज पर बैठकर भागने के लिए जल्दबाजी करने लगा। इस भागने की जल्दबाजी और गोलमाल में जो होना था वही हुआ। नावों के उलट जाने से बहुत-से आदमी डूब गये, कुछ नवाब के तीरंदाजों के शिकार हुए और कुछ लोग जो बहुत-सी तकलीफें उठाकर ज्योंही जहाज पर पहुँचे, उन्होंने झट लंगर खोल दिया। जिन्होंने किसी तरह भागने का मौका न पाया और किले में ही रह गये, वे झटपट किले का फाटक बन्द करके भागे हुए बन्धुओं का नाम ले ले और रो पीट कर अपनी हार्दिक वेदना प्रकट करने लगे।

जो लोग अचानक इस तरह से किला छोड़कर भाग गये थे, उनमें से गवर्नर ड्रेक, सेनापति मिन्चन, कप्तान ग्रान्ट और मिस्टर मैकेटर के नामों ने स्थान प्राप्त किया। आगे चलकर अनेक इतिहास-लेखकों ने अपने तरह-तरह के विचित्र प्रमाणों से इन लोगों का कलङ्क मिटाने की चेष्टा की है। स्टुअर्ट ने लिखा है कि :—

"गवर्नर ड्रेक बड़े साहसी थे। वे किले की चारदीवारी के ऊपर तैनात रहकर उसकी रक्षा करने में तनिक भी भयभीत नहीं हुए। परन्तु जब उन्होंने देखा कि अब किले की रक्षा कर सकना सर्वथा असम्भव है, बारूद भी सब खत्म हो चुका है, जो है वह भी भीग गया है, तब किसी भी प्रकार का सहारा न पाकर और नितान्त लाचार हो कर वे भागने पर बाध्य हुए।"

यह वर्णन कहाँ तक ठीक है, इस पर विचार करना आवश्यक है। किले के भीतर जो लोग बन्द रह गये थे, उन्होंने हालवेल को सेनापति चुन कर उसी भीगे बारूद से दो दिन तक किस साहस के साथ नवाब के सिपाहियों का सामना किया था और दुर्भाग्यवश अन्त में कैद हो गये थे, उसका वर्णन अंग्रेजों के ही इतिहास में मिलता है।

हालवेल भी और क्या करते! बागबाजार के पास एक युद्ध का जहाज ठहरा हुआ था। किले की चारदीवारी पर खड़े

होकर उन्होंने वह जहाज किले के पास लाने के लिए मल्लाहों को इशारा किया। परन्तु मल्लाह लोग ज्यों ही जहाज खोल कर ले चले त्यों ही उनकी लापर्वाही से वह एक चढ़ाई पर अटक गया। नवाब के सैनिकों के गोलियाँ बरसाने पर मल्लाह लोग गंगा में तैरते हुए भाग निकले। अब तक सब लोगों का ख्याल था कि अकस्मात् मति भ्रम हो जाने के कारण बुद्धिमान ड्रेक साहब उस समय की उत्तेजना में आगे-पीछे का कुछ विचार न करके सबसे पहले जहाज पर भाग गये हैं, परन्तु उन्हें शायद अपने ही आप अपनी गलती मालूम हो जायगी और अपने साथी सहायकों को संकट से छुड़ाने के लिए जहाज लेकर वे फिर वापस आयेंगे। लेकिन सब आशाएँ व्यर्थ हो गईं। ड्रेक साहब न लौटे। किलेवालों के संकेत पूर्ण कातर निवेदनों को सुनकर भी उन्होंने लौटने की इच्छा न की। एक इतिहास-लेखक ने लिखा है कि:—

"एक नाव और पन्द्रह वीर पुरुषों की सहायता से ही किले में रहनेवालों की दुर्दशा का अन्त हो सकता था। परन्तु हाय! भागे हुए अंगरेजों में से पन्द्रह वीर भी इस कार्य के लिए आगे बढ़ने का साहस न कर सके।"

यथासाध्य उपाय करने पर भी हालवेल किले की रक्षा के लिए सिराजुद्दौला के बढ़ाव को तनिक भी न रोक सका। नवाब की फौज धीरे-धीरे किले की ओर बढ़ती गई। नबाब के हजारों सिपाही किले के पास आकर जमा होने लगे तो किले के

अंग्रेज बड़ी बुरी तरह भयभीत हो नवाब के सामने जाकर आत्म-समर्पण करने के लिए बार बार अपने सेनापति हालवेल से अनुरोध करने लगे । हालवेल चारों ओर दौड़ धूप कर सैन्य-संग्रह करने में लगा था। ऐसे समय में लाचार होकर किले के भीतर वाली अंग्रेजी सेना ने एकाएक किले का पच्छिम वाला दरवाजा खोल दिया।

रविवार २० जून सन् १७५६ ईसवी को सिराजुद्दौला की विजयी सेना ने कलकत्ते की अंग्रेजी कोठी में प्रवेश किया। कोठी के तमाम अंग्रेज कैद कर लिये गये । सिराजुद्दौला के लिए इस समय कलकत्ते के इन बागी विदेशी व्यापारियों का वहीं एक एक कर काम तमाम कर देना और उनकी कोठी को नेस्त नाबूद कर देना एक अत्यन्त सरल कार्य था, किन्तु उदार सिराजुद्दौला इन लोगों के छलों अभी पूरी तरह परिचित न हुआ था।

सिराजुद्दौला के हूकुम से किले के भीतर एक दर्बार लगा, जिसमें तमाम यूरोपियन कैदी उसके सामने पेश किये गए। कैदियों ने नबाव से क्षमा के लिए प्रार्थना की। उदार भारतीय नवाब ने उन सब की जानें बख्श दीं। जेम्स मिल नामक अंग्रेज इतिहास लेखक लिखता कि:—

"जब मिस्टर हालवेल (कलकत्ते की कोठी का मुखिया) हथकड़ी पहने हुए नवाब के सामने पेश किया गया, तब नबाब

ने फौरन हुकुम दिया कि हथकड़ी खोल दी जाय और स्वयं अपनी सिपहगरी की शपथ खाकर हालवेल को विश्वास दिलाया कि 'तुम्हारे या तुम्हारे किसी साथी के सर का एक बाल भी किसी को छूने न दिया जायगा।'

यही इतिहास-लेखक स्वीकार करता है कि विजयी हिन्दुस्तानी सैनिकों ने "पराजित अंग्रेजों के साथ कोई बुरा बर्ताव नहीं किया।" और उनके साथ के "मुसलमान मुल्ला खुदा की बन्दगी में लगे रहे।" किले और कोठी के अन्दर का गोला-बारूद सब नवाब ने हटवा लिया, किन्तु जितना तिजारती माल कोठी में भरा हुआ था उसे सिराजुद्दौला अथवा उसके सैनिकों ने हाथ तक नहीं लगाया, बल्कि सिराजुद्दौला की आज्ञा के अनुसार उसे हिफाजत के साथ ज्यों का त्यों रहने दिया। यही व्यवहार सिराजुद्दौला ने अँगरेजों की दूसरी कोठियों में भी किया।

कलकत्ते के अनेक अँग्रेज सिराजुद्दौला की सेना के किले में प्रवेश करने से पहले ही पीछे की ओर से अपने जहाजों में बैठकर भाग गये थे। शेष ने अब सिराजुद्दौला से यह प्रार्थना की कि हमारी जान बख्शी जाय और हमें बङ्गाल छोड़कर अपने साथियों के पास चले जाने की इजाजत दी जाय। सिराजुद्दौला ने सहर्ष उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अनेक यूरोपियन इतिहास-लेखक इस बात की गवाही देते हैं कि इस अवसर पर

सिराजुद्दौला की शक्ति को देख अधिकाँश यूरोपियन अत्यन्त चकित और भयभीय हो गये। जाँन कुक लिखता है कि "सिराजुद्दौला की मुसलमानी सेना का नियम था कि वे रात को कभी न लड़ते थे और शाम होते ही गोलाबारी बन्द कर देते थे।" कुक यह भी लिखता है—"कि यदि ऐसा न होता तो २० जून से पहले ही अँगरेजों की बुरी हालत हो गई होती।"

इस प्रकार कम्पनी के अङ्गरेज व्यापारी सन् १७५६ ईसवी में भारत के सब से अधिक उपजाऊ और समृद्ध प्रान्त बङ्गाल से निकाल बाहर किये गये। हालवेल ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम अपनी ३० नवम्बर १७५६ की चिट्ठी में लिखा कि :—

"इतनी घातक और शोकजनक आपत्ति बाबा आदम के जमाने से लेकर आज तक किसी भी कौम अथवा उसके उपनिवेश के इतिहास में न आई होगी।"

सिराजुद्दौला ने 'कलकत्ते' का नाम बदल कर अलीनगर रखा और अपने एक दीवान राजा मानिकचन्द को अलीनगर तथा उसके आस-पास के इलाके का शासक नियुक्त किया।

अँगरेज इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि—"जो अङ्गरेज आत्म-समर्पण करके किले में कैद हुए थे, वे सब के सब बड़े ही भाग्यहीन थे, इसीलिए वे सब स्त्री-पुरुष भीषण गर्मी से तपी हुई उस दिन की डरावनी रात में एक ऐसी काली कोठरी में ठूंस दिये

गये जो कि बहुत ही छोटी और आग से तपाई हुई-सी भयनाक गर्म थी। यही कारण था कि उनमें से अधिकांश को असहनीय यंत्रणा से पीड़ित होकर छटपटाते हुए अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।" मुसलमानों के इतिहास में इसका कोई उल्लेख नहीं है किन्तु अंग्रेजों के इतिहास में इसी का रोमांचकारी नाम "काल कोठरी का हत्याकाण्ड" रक्खा गया है।

काल-कोठरी की कहानी

जितने अंग्रेज इतिहास-लेखक हो चुके हैं, उनमें से प्रायः सभी अपनी कौम की इस हार के साथ एक बड़े ही भयानक हत्या-काण्ड का वर्णन करते हैं। उसका वही वर्णन "ब्लैकहोल" अथवा "काल-कोठरी-हत्या-काण्ड" कहा जाता है। ब्लैक होल कलकत्ते की अङ्गरेजी कोठी के अन्दर एक अन्धेरी कोठरी अथवा काल-कोठरी थी, जो अङ्गरेज व्यापारियों की ही बनाई हुई थी और जिसमें कम्पनी के अफसर अपने हिन्दुस्तानी अपराधियों अथवा कर्जदारों को बन्द कर दिया करते थे।

इन अंगरेज लेखकों का कहना है कि बीस जून की रात को इस लगभग अठारह फुट लम्बी और कुछ कम चौड़ी कोठरी में सिराजुद्दौला के हुकुम से एक सौ छियालीस यूरोपियन कैदी बन्द कर दिये। जून का महीना, जगह की तङ्गी और ताजी हवा न मिल सकने के कारण अनेक कठिन यातनाओं के बाद सुबह तक एक सौ छियालीस में से केवल तेईस जीते बचे और वह भी भयानक अधमरी अवस्था में।

किन्तु उस समय के इतिहास की खोज करने वालों पर अब यह बात अच्छी तरह प्रकट हो चुकी है कि ब्लैक होल की यह

सारी कहानी बिलकुल झूठी है और केवल सिराजुद्दौला के चरित्र को कलंकित करने तथा अँगरेजों के बाद के कुचक्रों को जायज करार देने के लिए मढ़ी गई थी। "सिराजुद्दौला" नामक बङ्गला ग्रन्थ के विद्वान् रचयिता अक्षयकुमार मैत्र ने अपने ग्रन्थ में इस कहानी के विरुद्ध अनेक अकाट्य युक्तियाँ संग्रह की हैं।

मुसलमान इतिहास-लेखकों के इतिहास-ग्रन्थों में काल-कोठरी के हत्या-काण्ड का कहीं नाम-निशान भी नहीं है। उस समय के इतिहास-लेखक सैयद गुलाम हुसेन ने "मुताखरीन" नामक जो इतिहास लिखा है वह उस समय का बहुत माननीय और विस्तार के साथ लिखा गया इतिहास है। उसमें सिराजुद्दौला की बहुत सी कुकीर्तियों का भी उल्लेख है, परन्तु समस्त "मुताखरीन" में इशारे के लिए भी कहीं पर काल-कोठरी के हत्या-काण्ड का ज़िक्र नहीं है।

फ़ारसी के प्रसिद्ध विद्वान हाजी मुस्तफा नामक व्यक्ति ने "मुताखरीन" का जो वृहत् अनुवाद किया है उसके एक नोट में उसने लिखा है कि :—

"समकालीन बंगालियों से बहुत कुछ पता लगाने पर यही ज्ञात हुआ कि और लोगों की बात तो दूर रही, स्वयं कलकत्ते के निवासी तक काल-कोठरी की घटना को नहीं जानते थे।"

जिनकी छाती के ऊपर इस तरह का भयानक हत्या-काण्ड किया गया हो और उन्हीं को उसकी कानोंकान खबर न हो,

क्या यह किसी तरह भी सम्भव है? केवल यही नहीं मरने से बचे हुए जिन अँग्रेजों ने नवाब के हुक्म से मुक्ति-लाभ कर कलकत्ते के घरों में आश्रय लिया था, क्या यह सम्भव था कि वे इस शोक-समाचार को वहाँ की जनता में प्रसिद्ध न करते?

मुसलमानों की बात जाने दीजिए। सम्भव है, उन्होंने अपनी जाति का कलंक मिटाने के लिए अपने लिखे हुए इतिहासों में इस शोचनीय घटना के कथानक को न जोड़ा हो। परन्तु जिन्होंने कठोर यातना से पीड़ित होकर कालकोठरी के कैदखाने में जीवन विसर्जित किया उनके स्वदेशीय, उनके सजातीय और उनके समकालीन अंगरेजों के लिखे कागज-पत्रों में भी काल-कोठरी के हत्या-काण्ड का कहीं नाम-मात्र को उल्लेख नहीं मिलता।

लड़ाई के मैदान से भागे जो रण-योद्धा अंगरेज फलता के बन्दर पर रहकर रोज तरह-तरह की गुप्त मन्त्रणाएँ किया करते थे; उनके विवरणों की पुस्तक में किसी स्थान पर भी काल-कोठरी की हत्या का उल्लेख नहीं है। बहुत दूर समुद्र के किनारे पर रहने वाले मद्रास के अंगरेजों ने कलकत्ते पर फिर से अधिकार करने के लिए सेना भेजने के जिस वाद-विवाद में बहुत सा समय बिताया था, उसमें भी कहीं काल-कोठरी के मामले का जिक्र नहीं है। मद्रास के अंगरेजी दर्बार की

प्रार्थना के अनुसार दक्खिन के निजाम और अर्काट के नवाब बहादुर ने सिराजुद्दौला को जो चिट्ठियाँ लिखकर भेजी थीं, उनमें भी कहीं कालकोठरी की घटना का नाम-निशान नहीं मिलता।

मद्रास-कौंसिल के कर्ता-धर्ता पिगट साहब ने बड़ी डाट-डपट के साथ सिराजुद्दौला के लिए एक पत्र लिखकर कर्नल क्लाइव को सेना के साथ बङ्गाल भेजा था। उस पत्र में भी काल-कोठरी के हत्या काण्ड का उल्लेख नहीं था। क्लाइव और वाट्सन ने बङ्गाल में आकर पलासी युद्ध छिड़ने के पहले तक सिराजुद्दौला से बड़ी तेजी तर्रारी के साथ जो पत्र-व्यवहार किया था, उसमें भी कहीं काल-कोठरी के हत्या-काण्ड का आभास-मात्र नहीं पाया जाता। सिराजुद्दौला और अङ्गरेजों के बीच जो सन्धि हुई थी, उसमें भी इस हत्या-काण्ड का उल्लेख नहीं था, बल्कि इस सन्धि पत्र में काल-कोठरी के हत्या-काण्ड का उल्लेख न होने से अङ्गरेज इतिहास-लेखक "थरंटन" बहुत ही परेशान होकर लिखता है कि :—

"काल-कोठरी के कष्टों का कुछ बदला नहीं मिला और इस बदले का न मिलना सन्धि पर बड़ा भारी कलङ्क है। उस घोर अत्याचार के लिए इस सन्धि-पत्र में कहीं पर उचित क्षमा प्रार्थना भी नहीं पाई जाती। शान्ति अवश्य चाहिए थी, परन्तु ऐसी शान्ति बहुत ही महँगी है, जिसमें जातीय अपमान हो।"

थरंटन के इन वाक्यों से स्पष्ट है कि सन्धि-पत्र में काल-कोठरी की घटना का कहीं पता भी न था। कलकत्ते पर पुनः अधिकार जमाने के लिए एक-एक करके जो अँग्रेज मद्रास से बङ्गाल में आये थे उन सबों ने नवाब सिराजुद्दौला को पत्र लिखे थे। यदि काल-कोठरी की घटना सत्य होती तो इन सभी पत्रों में उसका उल्लेख अवश्य होता। सबसे पहले मेजर किलप्याट्रिक ने एक पत्र बड़ी नम्र भाषा में पन्द्रह अगस्त को नवाब सिराजुद्दौला के पास भेजा था। उसमें उसने उस सख्ती के बर्ताव की शिकायत की थी, जो नवाब की ओर से अँग्रेजों की कम्पनी के साथ किया गया था और साथ ही साथ इस बात का भी विश्वास दिलाया था कि इतना हो जाने पर भी मेरे विचार नवाब की ओर से उतने ही अच्छे हैं, जितने पहले थे।

कर्नल क्लाइव के पहले पत्र और पलासी-युद्ध छिड़ने से ठीक पूर्व के बड़े तर्जन-गर्जन के साथ लिखे गये आखिरी पत्र में भी काल-कोठरी के हत्या-काण्ड का नाम-निशान नहीं मिलता। क्लाइव के पहले पत्र का आशय यह था :—

"एडमिरल वाट्सन जो बादशाह के विजयी जहाजों के कप्तान हैं और मैं स्वयँ एक सिपाही, जिसकी दक्खिन की विजय का समाचार आपके कानों तक पहुँचा होगा, दोनों उस हानि का बदला लेने के लिए आये हैं, जो आपने अँग्रेजी कम्पनी को पहुँचाई है; और यह आपके न्यायोचित विचारों के

अनुकूल होगा कि आप अपने देश को लड़ाई का मैदान न बना कर कम्पनी के नुकसान की भरपाई कर दें।"

इसके बाद सिराजुद्दौला क्यों सिंहासन से उतारा गया, इस विषय में कर्नल क्लाइव ने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को नीचे लिखे हुए आशय की जो चिट्ठी लिखी थी, उसमें भी कहीं कोठरी के हत्याकाण्ड का उल्लेख नहीं है। क्लाइव ने लिखा था:—

"कुछ पत्र जो सिराजुद्दौला ने फ्रान्सीसियों को लिखे थे, वे मेरे हाथ में आ गये। उनमें से एक का अनुवाद मैं आपके पास भेजता हूँ, जिससे यह बात साफ मालूम होती है कि हम लोग सिराजुद्दौला का सर्वनाश करने के लिये मजबूर हो गये थे।"

स्वयं हालवेल ने सन् १७६० ईसवी में चौथी अगस्त की बैठक में सिलेक्ट कमेटी के सामने सन् १७५७ ईसवी के राज्य विप्लव के सम्बन्ध में जिन कागजों को पढ़ा था, उनमें भी स्पष्ट शब्दों में कहीं कालकोठरी की घटना का वर्णन नहीं पाया जाता। केवल इतना ही लिखा है कि सिराजुद्दौला ने बड़ी निर्दयता के साथ अँगेजों का अनिष्ट किया था, जिससे विवश होकर ही अंगरेज लोग उसे सिंहासन से च्युत करने के लिए तरह-तरह के षड़यन्त्र तैयार करने में लग गये। हालवेल के कथन का आशय यह था:—

"निर्दय अत्याचारों से हानि उठाने के कारण उत्पन्न होने वाले उचित क्रोध न रोकी न जा सकने वाली आवश्यकताओं ने हमें सिराजुद्दौला का सर्वनाश करने के लिए बाध्य किया।"

इसमें भी कहीं कालकोठरी की हत्या का बदला लेने और प्रतिहिंसा -साधन के दृढ़ निश्चय के सम्बन्ध में कोई बात नहीं पाई जाती। केवल बाद में लिखे गये इतिहास में ही यह देखा जाता है कि कालकोठरी के हत्याकाण्ड का बदला लेने और प्रतिहिंसा-साधन करने के लिये ही क्लाइव आया और इसी से सिराजुद्दौला का सर्वनाश हुआ। उस समय के कागज-पत्रों में केवल व्यापार की हानि और कम्पनी की दुर्दशा का ही तरह-तरह से बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कालकोठरी के हत्याकाण्ड और नर-संहार का उल्लेख उनमें कहीं नहीं मिलता।

मीर जाफर के साथ अँगरेजों की सन्धि हुई थी, उसमें अँगरेजों ने हर एक तरह की हानि पूरी कराने के लिए पैसे-पैसे का हिसाब लिखा लिया था। परन्तु जिन लोगों ने कालकोठरी की मर्म वेदना से पीड़ित होकर प्राण-त्याग किया था उनके बाल-बच्चों के निर्वाह के लिए सन्धि की शर्तों में एक पैसा भी नहीं लिखा गया, ऐसा क्यों? इन सब बातों पर विचार करने से निष्कर्ष यही निकलता है कि

कालकोठरी के हत्या-काण्ड की कहानी सरासर कपोल-कल्पना है।

सिराजुद्दौला के किला फतह करने के समय एक सौ छियालीस आदमियों का कैद होना ही बड़ी सन्देहजनक बात है। हालवेल ने जिस दिन किले की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया था, उस दिन किले में केवल एक सौ सत्तर आदमी थे। और सब लोग किले के अध्यक्ष ड्रेक साहब के घृणित उदाहरण का अनुसरण कर अपने प्राण लेकर भाग गये थे। इन एक सौ सत्तर आदमियों में से अधिकांश दो दिन के निरन्तर युद्ध में अपने जीवन से हाथ धोकर धराशायी हो चुके थे। जो जिन्दा बचे थे, उनमें घायल और अधमरे लोगों की संख्या भी कम न थी। जो लोग किसी तरह भी नहीं भाग सके, केवल उन्होंने आत्म-समर्पण किया था। उनके अतिरिक्त जिनमें साहस था, बल था और भागने की इच्छा थी, वे किला जीतने के कोलाहल में मौका पाकर प्राण ले रफूचक्कर हो गये थे! जो स्त्री-पुरुष मिर्जा अमीर बेग के हाथों से गिरफ़ार हुए, वे उसी दिन मीर जाफर की कृपा से सकुशल फलता को भेज दिये गये थे। ऐसी दशा में हालवेल कथनानुसार एक सौ छियालीस आदमियों का कारागार में कैद होना सर्वथा सन्देहजनक है।

हालवेल ने अपने लिखे हुए ग्रन्थ में जिन मरे हुए और अधमरे सहयोगियों के नामों का उल्लेख किया है उनकी संख्या भी ६६ से अधिक नहीं है। हालवेल की पुस्तक में लिखा है कि

सिराजुद्दौला के कलकत्ते पर आक्रमण करने से पहले किले में रहने वाले अंग्रेज आदि की जो गणना की गई थी, उसमें सब मिल कर एक सौ नब्बे सैनिक सरदार थे, जिनमें केवल ६० यूरोपियन थे। इनमें गवर्नर ड्रेक, सेनापति मिलचन, कप्तान ग्रान्ट, मिस्टर म्याकेट, मेनिंहम, फाकलैण्ड, रेवरेण्ड कप्तान लेफ्टिनेण्ट मेपलटफट, कप्तान हेनरी बेडवर्न, सम्नार, चार्लस डगलस आदि दस वीर पुरुषों के भाग जाने की बात हालवेल के ही ग्रन्थ में लिखी हुई है। इनके भागने के बाद १८० आदमी किले के भीतर रह गये थे, उनमें से २५ मर चुके थे और ७० घायल और अधमरे हो गये थे। हालवेल की गणना के अनुसार किला फतह हो जाने के समय तक उसमें ५० से अधिक यूरोपियनों के रहने का प्रमाण नहीं मिलता। ५० आदमियों में से १२३ तो कालकोठरी में मर गये और २३ कालकोठरी में बन्द रहकर भी जिन्दा बच रहे। यह कितने बड़े उपहास की बात है।

यह कालकोठरी के हत्याकाण्ड की कहानी कब और किसकी कृपा से सर्व साधारण में प्रसिद्ध हुई, इसका इतिहास भी बड़ा मनोरञ्जक और रहस्य पूर्ण है। सच कहा जाय तो इस झूठी कहानी का प्रधान प्रचारक हालवेल को छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। यह वही हालवेल है जिसकी सिराजुद्दौला ने हथकड़ी खुलवा दी थी। अपने झूठों और जालसाजियों के लिए यह अंग्रेज काफी मशहूर था। उदाहरण के लिये हालवेल के अन्य कारनामों

में से केवल एक को यहाँ वर्णन कर देना काफी होगी। यद्यपि यह घटना कुछ दिनों बाद की है, तथापि इस स्थान पर बेमौके की नहीं होगी।

सिराजुद्दौला के बाद मीर जाफर को बदनाम करना उसके लिये आवश्यक हो गया। इसलिये कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम उसने एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें मीर जाफर को उसने घोर अन्यायी और हत्यारा बयान किया और अनेक ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की एक सूची साथ में दी, जिन्हें वह लिखता है कि मीर जाफर ने निरपराध मरवा डाला।

प्रत्येक पुरुष के पिता का नाम और प्रत्येक स्त्री के पति का नाम सूची में दिया गया था। छोटी से छोटी तफसील तक इन हत्याओं की हालवेल के पत्र में मौजूद है। इसके कई वर्ष बाद क्लाइव और उसके साथियों ने डाइरेक्टरों को एक और पत्र भेजा जिसमें उन्होंने बताया कि :—"मीर जाफर पर जितने इलजाम हालवेल ने लगाये हैं, वे सब सर से पाँव तक झूठे हैं और जिन पुरुष स्त्रियों की सूची हालवेल ने अपने पत्र में दी है, यह कह कर कि मीर जाफर ने इन लोगों को निरपराध मार डाला है, उनमें से दो को छोड़ कर शेष सब अभी जिन्दा हैं।"

वास्तव में सन् १७५७ ईसवी में २८ फर्वरी को हालवेल ने अपने प्रिय बन्धु विलियम डेविस को जो पत्र लिखा था, उसी से कालकोठरी के हत्याकाण्ड का पहला और विस्तार से

परिचय मिलता है। जब सन् १७५७ ईसवी में उसने साइटन नामक जहाज पर चढ़ कर विलायत की यात्रा की तब जहाज पर बैठे-बैठे बेकारी की हालत में उसने इसी दु:ख भरी कहानी की रचना की थी और इसीलिये इसका कोई प्रमाण नहीं पाया जाता कि पलासी-युद्ध से पहले तक सर्वसाधारण को इसका कुछ भी परिचय था। पलासी-युद्ध के बाद जिस समय इङ्गलिस्तान के निवासियों ने भारत में आकर व्यापार करने वाले अंग्रेज सौदागरों की निन्दा और अत्याचारों के विषय में रौरा मचाना शुरू किया तो उसी समय के पत्र जनता के सामने प्रकाशित किये गये। जिन्हें पढ़ कर इङ्गलिस्तान के स्त्री-पुरुष सब सिराजुद्दौला के नाम से काँप उठे। अंग्रेजों के अत्याचारों की कहानियाँ विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गईं और सभ्य संसार में सिराजुद्दौला के कलङ्कों की कहानियाँ गढ़-गढ़ कर कही जाने लगीं।

क्लाइव की कपट-योजना

अपनी बहादुरी, दयालुता और उदारता का परिचय देने के बाद विजयी सिराजुद्दौला २४ जून को कलकत्ते से अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद की ओर लौटा। रास्ते में हुगली के ऊपर उसने एक दर्बार किया। उस अवसर पर फ्रान्सीसी कोठी के वकील ने साढ़े तीन लाख रुपये और डच कोठी के वकील ने साढ़े चार लाख रुपये अपनी राजभक्ति की भावना प्रकट करने के लिए सिराजुद्दौला की नजर किये। उनके इस व्यवहार से खुश होकर सिराजुद्दौला ने उन्हें अपना व्यापार जारी रखने की इजाजत दे दी। सिराजुद्दौला को अभी तक आशा थी कि इस तरह का समझौता अँग्रेजों के साथ भी हो जायगा। इसी-लिए भविष्य के लिए विशेष कोई प्रबन्ध किये बिना ही वह ११ जुलाई सन् १७५६ ईसवी को मुर्शिदाबाद पहुँच गया। उसके मुर्शिदाबाद पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद पुर्निया के नवाब शौकतजङ्ग ने फिर बगावत का झण्डा ऊँचा किया। १६ अक्टू-बर सन् १७५६ ईसवी को राजमहल नामक स्थान पर सिराजु-द्दौला तथा शौकतजङ्ग की सेनाओं में मुकाबला हुआ। उस मुकाबले में शौकतजङ्ग काम आया और सिराजुद्दौला ने विजय प्राप्त की।

शौकतजँग की जगह पर राजा युगलसिंह नामक एक हिन्दू नरेश को पुर्निया की गद्दी पर बैठाकर सिराजुद्दौला बड़ी प्रसन्नता के साथ मुर्शिदाबाद लौट आया। इस बार सिराजुद्दौला की प्रजा ने उसे बड़े हर्ष के साथ बधाइयाँ दीं और दिल्ली के सम्राट् ने एक नये फर्मान के जरिये उसे बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा तीनों प्रान्तों की सूबेदारी की गद्दी पर फिर से पक्का किया। इस स्थल पर यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि आरम्भ से ही सिराजुद्दौला जो कुछ करता था, वह सब दिल्ली-सम्राट् के नाम पर और उसके एक सेवक की हैसियत से ही करता था।

अब हम पाठकों का ध्यान उस स्थान पर ले जाना चाहते हैं जिस स्थान पर अँग्रेज बङ्गाल में फिर से प्रवेश करने की योजनाएँ तैयार कर रहे थे। सिराजुद्दौला से भयभीत होकर कलकत्ते से भागे हुए अँग्रेज कलकत्ते से कुछ नीचे उतर कर बङ्गाल की खाड़ी के ऊपर फल्ता नामक स्थान पर जाकर ठहर गये और लगभग छः महीने वहीं ठहरे रहे।

कम्पनी के कारबार की दृष्टि से उस समय कलकत्ते के मुकाबले में मद्रास अधिक महत्व का स्थान था। फल्ता से इन अँग्रेज़ों ने एक ओर तो मद्रास की कोठी के अँग्रेजों को यह लिखा कि मद्रास से नई सेना जमा करके बङ्गाल भेजी जाय और दूसरी ओर क्योंकि केवल सेना के बल सिराजुद्दौला को जीतने

की दुराशा को वे भली भाँति समझ चुके थे इसलिए—उन्होंने अपने गुप्तचरों के जरिये झूठे-सच्चे लोभ दिखलाकर कलकत्ते के राजा मानिकचन्द को तथा सिराजुद्दौला के अन्य अनेक सेनापतियों, दरबारियों और सामन्तों को अपनी ओर फोड़ने के प्रयत्न शुरू किये। इसमें सन्देह नहीं कि भेद-नीति का यह विस्तृत जाल ही वह मुख्य उपाय था, जिसके द्वारा ये मुट्ठी भर निर्बल, किन्तु चालाक विदेशी बलवान, किन्तु अनुभवशून्य भारतीय नवाब को गिराने की आशा कर रहे थे। स्क्रैफ्टन नामक अंग्रेज लिखा है :—

"यह एक बड़े भारी आश्चर्य की बात मालूम होगी कि सूबेदार (नवाब) ने इतने दिनों इतनी शान्ति से हमें फल्ता में क्यों पड़े रहने दिया। ××× इसका कारण मैं केवल यह बता सकता हूँ कि वह हमें एक बहुत ही तुच्छ चीज समझता था। ××× और उसे इस बात का गुमान भी न था कि हम सैन्य-बल के सहारे फिर बङ्गाल लौटने का साहस करेंगे।"

इसी विषय पर जी लॉ नामक दूसरा अंग्रेज लिखता है :—

"सिराजुद्दौला यूरोप-निवासियों को बहुत ज्यादा हकीर और तुच्छ समझता था। वह कहा करता था कि इन्हें ठिकाने रखने के लिए केवल एक जोड़ी चप्पल की जरूरत है। ××× इसलिये वह यह सोच ही न सकता था कि अंग्रेज सैन्य-बल

द्वारा फिर से बङ्गाल में पैर जमाने का विचार कर सकते हैं। स्वभावतः यदि वह यह अनुमान कर सकता था कि अंग्रेज कोई नई तरकीब सोच रहे होंगे तो केवल एक इस बात का उसे अनुमान हो सकता था कि वे बिनम्र होकर एक हाथ से मेरे सामने नजर पेश करेंगे और दूसरे हाथ से फिर अपना व्यापार आरम्भ करने के लिए खुशी के साथ मेरा फर्मान हासिल करेंगे। निस्सन्देह इस विचार से ही सिराजुद्दौला ने अंग्रेजों को शान्ति से फल्ता में पड़े रहने दिया।"

फल्ता में अंग्रेजों ने नवाब के सरकारी अफसरों से यह कहा कि हम लोग केवल मौसम खराब होने के कारण यहाँ रुके हुए हैं और ज्यों ही मौसम समुद्र-यात्रा के योग्य हुआ त्योंही हम सब मद्रास चले जायँगे। दूसरी ओर उन्होंने "नवाब को धोखा देने के स्पष्ट उद्देश्य से" सिराजुद्दौला के पास अत्यन्त दीन और नम्र शब्दों में इस मजमून की अर्जियाँ भेजनी शुरू कर दीं कि हमें फिर से बङ्गाल में व्यापार करने की इजाजत दी जाय। सिराजुद्दौला ने बजाय किसी प्रकार की ताड़ना के इस समय भी उनके साथ दयालुता का व्यवहार किया।

मिसाल के तौर पर जब उसे यह मालूम हुआ कि अंग्रेजों के फल्ता पहुँचने पर वहाँ के लोगों ने बाजार बन्द कर दिये थे, जिसके कारण अंग्रेजों को रसद की दिक्कत हो रही थी तब

उसने फौरन हुकुम भेज दिया कि बाजार खोल दिये जाँय और "परदेशियों को खाने-पीने के सामान की कोई दिक्कत न होने पाये।" सच कहा जाय तो सिराजुद्दौला दिल से केवल इतना ही चाहता था कि अँग्रेज अपनी शरारतें छोड़कर फिर से बङ्गाल में व्यापार करने लगें। इसीलिए उसने विजय के बाद भी कासिमबाजार, कलकत्ते आदि की कोठियों में उनके तिजारती माल को हाथ तक न लगाया था।

सिराजुद्दौला की नीयत यदि कुछ और होती तो कलकत्ते अथवा फल्ता में कहीं भी इन अँग्रेज व्यापारियों का एक-एक करके खात्मा कर डालना और साथ ही साथ उनके समस्त षड्-यन्त्रों का भी अन्त कर देना उसके लिए एक बड़ा ही साधारण-सा सरल कार्य था। यदि वह ऐसा कर डालता तो कोई निष्पक्ष इतिहास-लेखक उसे दोषी भी ठहरा सकता था। किन्तु उस भोले एशियाई नरेश को इन विदेशियों के चरित्र और उनकी चालों का अभी तक भी पता न था। इस भोलेपन का मूल्य सिराजुद्दौला और उसके देश—दोनों को ही बहुत जबर्दस्त चुकाना पड़ा।

उस समय के अँग्रेज सौदागर, कहने के लिए तो नवाब सिराजुद्दौला की अधीनता स्वीकार कर चुके थे, फिर भी वे जब कभी मौका पाते तब उसकी आज्ञा उल्लङ्घन करने में तनिक भी नहीं चूकते थे और अपनी बेजाँ हरकतों के द्वारा अनुचित लाभ

उठाने में भी जरा भी नहीं हिचकिचाते थे। उन दिनों अँग्रेज-सौदागरों की धन-लोलुपता चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। इसीलिए धन-प्राप्ति की पिपासा को शान्त करने के लिये वे बड़े से बड़ा पाप करने में भी सङ्कोच नहीं करते थे। अपनी कपट भरी चालबाजियों में पूर्ण रूप से सफल होने के लिए वे देश-द्रोहियों को भी अपनी शरण में रखने से बाज नहीं आते थे। धन-लोलुप अँग्रेज सौदागरों की ये बेजाँ हरकतें सिराजुद्दौला के कानों तक पहुँचती रहीं किन्तु वह इतना गम्भीर, सहनशील और उदार था कि वह अपने विचारों में उतावलेपन का समावेश, किसी भी दशा में नहीं होने देना चाहता था। किन्तु अत्याचार सहन करने की एक निश्चित सीमा होती है। इन्हीं समस्त अपने अन्याय और अत्याचार भरे कार्यों के कारण अँग्रेजों को सिराजुद्दौला की क्रोधाग्नि में जलना पड़ा था।

कलकत्ते में रहने वाले अँग्रेजों की दुर्दशा का समाचार १५ अगस्त के पहले मद्रास नहीं पहुँच सका था; किन्तु ज्योंही यह दारुण सम्वाद मद्रास के अँग्रेजों को मालूम हुआ त्योंही उन सब को अपने सारे हौसले मिटते हुए से नजर आये। उन सबों ने तुरन्त क्लाइव को सेन्ट डेबिड किले से मद्रास बुला भेजा। इस समय मद्रास की अँग्रेजी छावनी की सेना का सेनापति लारेन्स बीमार पड़ा हुआ था। इसलिए मद्रास के अँग्रेजों ने कलकत्ते पर अँग्रेजों के उखड़े हुए पैर को फिर से जमाने के लिए क्लाइव को ही सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति समझा। क्योंकि उस

समय तक क्लाइव समस्त अंग्रेजी सेनापतियों और अधिकारियों में छल-कपट और कूट नीति में अधिक प्रसिद्ध हो चुका था। अंग्रेज सौदागर क्लाइव की धूर्तता से काफी परिचित हो चुके थे।

कलकत्ते की कोठी पर फिर से कब्जा करने के लिये मद्रास मे अंग्रेजों ने जो सेना इकट्ठी की, उसका सेनापति क्लाइव बनाया गया। स्थल-सेना का सेनापति क्लाइव और जल-सेना का सेनापति वाट्सन—इन दोनों ने ही कलकत्ते की कोठी पर विजय प्राप्त करने के लिये अपनी तैयारी करनी आरम्भ कर दी। इसी अवसर पर क्लाइव ने इङ्गलिस्तान के अधिकारियों के पास जो पत्र लिखा था, उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है:—

"कलकत्ते पर मुसलमानों की विजय से 'कम्पनी' को भारी धक्का लगा है। इस पराजय से हमारे देश की बहुत बड़ी निन्दा हुई है। यहाँ के अपने प्रत्येक व्यक्ति (अंग्रेज) का हृदय शोक से व्याकुल हो उठा है। इसी बर्बरता का पूरा बदला लेने के लिये मैं सेना-सहित कलकत्ते की ओर रवाना हो रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि इस युद्ध-यात्रा द्वारा कलकत्ते पर विजय प्राप्त कर लेने से ही हमारा काम शेष नहीं हो जायगा, बल्कि इस बार मैं वह काम भी पूरा कर डालूँगा जिससे कि हमेशा के लिये भारतवर्ष में कम्पनी का आधिपत्य स्थापित हो जाय। नवाब की विजय

मेरे दिल में काँटों की तरह चुभ रही है। ××× यह पराजय हमारी कौम के लिये अपमान-जनक और घातक सिद्ध हुई। हमारी इस युद्ध-यात्रा की सफलता के रास्ते में यदि फ्रान्सीसी अधिकारियों की ओर कोई बाधा उपस्थित की गई तो मैं उन्हें भी चन्द्रनगर से खदेड़ कर कलकत्ते को सदा के लिये सुरक्षित कर दूँगा। अपने देश और कम्पनी के प्रति मेरा क्या कर्त्तव्य है, यह मैं भलीभाँति जानता हूँ। मैंने जिस उत्तरदायित्व को अपने कन्धों पर लिया है, उसे पूरा करने में मैं अपनी ओर से कोई भी त्रुटि नहीं आने दूँगा।"

इस पत्र को क्लाइव ने मद्रास से ११ अक्टूबर सन् १७५६ ईसवी को लिखा था। इसी से यह भी स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है कि इसी समय से क्लाइव चन्द्रनगर से फ्रान्सीसी प्रभुत्व को भी खत्म करने के मनसूबे बाँधने लगा था। इसीलिये उसने आरम्भ से ही कूट नीति की चालबाजियों और रण-कुशलता का प्रदर्शन करना भी शुरू कर दिया था। भारत को अंग्रेजों का गुलाम बनाने का जितना बड़ा भी अपराध क्लाइव के मत्थे क्यों न मढ़ा जाय, फिर भी इस बात को तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि वह स्वदेश-भक्त और अनुशासन पसन्द सेनापति था और उसने अपनी जाति के लिये जिस वफादारी की कसम खाई थी, उसे पूरा भी किया।

इस वफादारी को सफलता के साथ पूरी करने में क्लाइव

को रास्ते में जो मुसीबतें उठानी पड़ी, वे भी कम नहीं कही जा सकती। अंग्रेज-कौम के लिये क्लाइव ने कितनी ही बार अपने जीवन को खतरे में डाला। ३१ वर्ष के युवक क्लाइव ने अपने देश के प्रभुत्व को बढ़ाने के लिये अपने सारे व्यक्तिगत स्वार्थ-लोभ और सुख-दुख को तिलांजलि दे अनुपम और अद्वितीय देश भक्ति का परिचय दिया था। क्लाइव की इस अनूठी देश-भक्ति से प्रत्येक देश-प्रेमी को प्रेरणा मिलेगी।

१३ अक्टूबर सन् १७५६ ईसवी को क्लाइव ने लगभग ६०० गोरों और १००० से ऊपर भारतीय सैनिकों को साथ ले कलकत्ते के लिये प्रस्थान किया। मद्रास से कलकत्ते आने के लिये जल-मार्ग की बड़ी भारी दिक्कत थी, इसलिये रास्ते में उसे बड़ी-बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ा। सब से पहले जो मुसीबत आई वह यह थी कि रास्ते में ही उनकी सारी रसद समाप्त हो गई। खाने के सामान में कमी होने के कारण उन सबों को भूखों तड़पना पड़ा था। कितनी ही शाम उन्हें निराहार रहकर अपना समय गुजारना पड़ा था। सेना में जितने भी भारतीय सैनिक थे, अन्न की कमी के कारण उन्हें असमय में ही काल के गाल में जाना पड़ा था, फिर भी उन्होंने अंग्रेजों के म्लेच्छाहार को ग्रहण नहीं किया था।

इन प्रकार घोर संकटों और मुसीबतों का सामना करते हुए इन समस्त सैनिकों को अपने सेनापतियों के साथ आगे बढ़ना

पड़ा था। कुछ भी हो, वे सब किसी न किसी प्रकार फल्ता आ पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने देखा कि सिराजुद्दौला द्वारा कलकत्ते से खदेड़े गये गोरे सैनिक और उनके अफसर बड़ी ही बुरी हालत में मौत के दिन गिन रहे थे किन्तु ज्योंही मद्रास के ये सब सैनिक युद्ध की सामग्रियों से लैस होकर वहाँ पहुँचे त्योंही उनके सहयोग को प्राप्त कर फल्ता के पराजित, भगाये हुए और संकटों में फँसे अंग्रेज-सैनिकों के हृदय में आनन्द और उत्साह की अपूर्व लहर-सी दौड़ गई। इसके साथ ही साथ बुरी तरह से कलकत्ते से भगाये जाने का बदला लेने की कुत्सित, कठोर और अत्याचारी भावना भी उन सब के हृदय में जाग कर अपना कार्य करने लगी। भारतवर्ष को गुलाम बनाने की नीचता पूर्ण अभिलाषा से पागल अंग्रेज फल्ता में बैठे-बैठे हजारों तरह की साजिशें रचने में जुट गये। दिन रात वे केवल साजिशों को सोचने में ही लगे रहते थे।

इधर फल्ता के अंग्रेजों की सहायता करने के लिये सेनापति किलप्याट्रिक पहले ही २२६ सैनिकों के साथ मद्रास से रवाना हो चुका था। यह अंग्रेज सेनापति अपनी लुटेरी चाल के लिये विशेष रूप से मशहूर हो चुका था। इसका मुख्य काम लूट और मार काट द्वारा मरते हुए अंग्रेज सैनिकों के लिये अन्न संग्रह करना था। कलकत्ते पर फिर से अधिकार करने की इसकी हिम्मत नहीं हुई। जिस समय क्लाइव तथा दूसरे सैनिक अफसर फल्ता पहुँचे उस समय किलप्याट्रिक के सैनिकों में केवल ३० ही ऐसे

बच गये थे, जिन्हें लड़ाई के मैदान में उतारा जा सकता था। बाकी अपनी दुर्वृत्तियों और विशेषकर यहाँ का जल-वायु अपने अनूकूल न होने के कारण से अपने स्वास्थ्य को खोकर निर्बल हो चुके थे। क्लाइव तथा दूसरे सैनिकों की अवस्थाएं भी विशेष अच्छी न थी। क्लाइव स्वयं रोगी हो चुका था। दूसरे और सैनिक भी काफी मात्रा में खाने-पीने का सामान न मिलने के कारण अपने स्वास्थ्य को खोकर दुर्बल और साहस-हीन हो चुके थे।

जल-सेनापति वाट्सन और स्थल-सेनापति क्लाइव अपने साथ के इन दम तोड़ते हुए सैनिकों के साथ १५ दिसम्बर सन् १७५६ ईसवी को फल्ता पहुँच गये। क्लाइव अपने थके-माँदे और जीर्ण-शीर्ण-सैनिकों को देखकर हतोत्साहित होने वाला जीव नहीं था। उसने अपने गिरे हुए स्वास्थ्य की भी पर्वाह न की और कलकत्ते पर फिर से कब्जा करने की अपनी चाल-बाजियों, साजिशों और धूर्तताओं में जुट गया, क्योंकि वह जान चुका था कि भोले भाले, घरेलू झगड़े में फंसे किन्तु अपनी देश भक्ति की आन पर जान दे देनेवाले भारतीयों को केवल हथियार के बल पर जीतना कदापि आसान और सम्भव नहीं।

फल्ता पहुँच कर क्लाइव ने सबसे पहले राजा मानिकचन्द के पास नीचे लिखे आशय का पत्र भेजा :—

"मद्रास से यहाँ पहुँच कर सुना कि अंगरेज-कम्पनी के प्रति आपके दिल में विशेष श्रद्धा का स्थान है और आप अंग्रेजों के प्रति बन्धुत्व-पूर्ण भाव रखते हैं। इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। सुना है कि आपने इसके पूर्व ही कम्पनी को सहायता देने की इच्छा प्रकट की थी। वर्तमान अवस्था में हमें आपकी उस सहायता की विशेष आवश्यकता आ पड़ी है। आशा करता हूँ आप अपनी यह भावना बनाये रखेंगे।"

इस पत्र पर पाठक ध्यान दें। एक ३१ वर्ष के युवक ने धनधान्य और मान से पूर्ण एक भारतीय नरेश के नाम कितनी चतुराई और गहरी चालबाजी से भरा पत्र लिखा है और अपनी साम्राज्य-पिपासू माया में फँसाने का प्रयत्न किया है। इस पत्र को पढ़कर मानिकचन्द की बुद्धि और मन पर क्या प्रभाव पड़ा? मानिकचन्द ने सोचा कि ये अंगरेज साधारण जीव नहीं ! मेरे जैसे व्यक्ति के पास जब इन्होंने इस तरह का पत्र लिखा है तब मालूम नहीं कि इनकी जाति कितनी चतुर और बुद्धिमान हो। इस पत्र को पाते ही मानिकचन्द गद्गद् हो उठा और तुरन्त राधाकृष्ण मल्लिक नामक अपने एक विश्वास पात्र व्यक्ति के द्वारा क्लाइव के पास प्रेम-पूर्ण पत्र भेज कर अपनी सहानुभूति प्रगट की।

केवल मानिकचन्द को ही पत्र लिखकर क्लाइव चुप नहीं

बैठा रहा। उसने नवाब सिराजुद्दौला के पास भी नीचे लिखे हुए आशय का पत्र भेजा:—

"मेरे इस प्रदेश में आने का कारण आप नवाब सलावत जंग, अनारुद्दीन खाँ और गवर्नर पिगट के पत्र से पहले ही जान चुके हैं। एक बड़ी सेना के साथ मैं बंगाल की भूमि में आ पहुँचा हूँ, यह बात भी आप निस्सन्देह जान चुके हैं। आपका फर्ज है कि आप अपने और अपने प्रदेश के हित पर विचार करें। आपके राज्य में आपके आदमियों के द्वारा अंग्रेज तंग और तबाह किये गये हैं, सताये और रुलाये गये हैं, कम्पनी के अधिकांश कर्मचारी और अन्यान्य व्यक्ति निष्ठुरता-पूर्वक मार डाले गये हैं। मैं समझता हूँ कि ये सब अत्याचार आपकी गैरजानकारी में हुई हैं। मुझे आशा है आप इस अत्याचार के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को अवश्य सजा देंगे। आपकी ताकत, आपकी शूरता और आपकी हिम्मत विश्व प्रसिद्ध है।"

"दस वर्ष तक अविराम युद्ध कर प्रत्येक युद्ध के मैदान में (ईश्वर की दया से) मैंने चिरस्थायी विजय प्राप्त की है और मेरी कीर्ति संसार के हर एक कोने तक पहुँच चुकी है। मुझे पूर्ण विश्वास है, ईश्वर की कृपा से इस प्रदेश को विजय करने में भी मुझे सफलता प्राप्त होगी और इस विजय का श्रेय मुझे ही प्राप्त होगा। मैं अवश्य विजयी हूँगा। इसके लिए यदि युद्ध ही

किन्तु फिर भी व्यर्थ नर-संहार और खून-खराबी करना नहीं चाहता।

अंग्रेजों की हत्या, कलकत्ते की लूट, कलकत्ते की कोठी से अंग्रेजों को भगाया जाना आदि कार्य सिराजुद्दौला की कैरजानकारी में हुए हैं, जिन्होंने ये सभी काम किये हैं उनकी सजा और कम्पनी की क्षति-पूर्ति कर दी जाय तो सारी बातें समाप्त हो जाँय। इसके बाद सिराजुद्दौला की वीरता और साहस की कहानी का वर्णन कर क्लाइव ने अपनी आत्म प्रशंसा की है और अन्त में अपने को मित्र के रूप में अपनाने का अनुरोध किया है। यह क्लाइव की सबसे बढ़कर सीनाजोरी नहीं तो और क्या हैं ? दूसरी तरफ सेनापति वाट्सन ने नवाब को जो पत्र भेजा था उसमें उसने अपनी गम्भीरता का प्रदर्शन और नवाब के गौरव की रक्षा का ढोंग रचा था।

क्लाइव तथा उसके दूसरे सहयोगी फल्ता पहुँच कर कलकत्ते पर आक्रमण करने की भी तैयारी करने लगे। अपनी सफलता के लिए क्लाइव ने अपनी दो तरफी कपट-योजना का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। क्लाइव को उतना भरोसा अपनी सैनिक शक्ति पर नहीं था जितना भरोसा उसे अपनी कूट नीति और कपट-योजना पर था, क्योंकि वास्तव में सैनिकों की शक्ति तो एक दिखाने की चीज थी। साजिशों

एक मात्र मार्ग हुआ तो हम दोनों में से निश्चय ही दोनों विजयी नहीं होंगे। रण-चण्डी कितनी तेजी के साथ चलती है, आप जरा ठण्डे दिल से इस पर विचार करें। युद्ध की इस विपत्ति से यदि आप बचना चाहते हैं तो कम्पनी एवं उसके नौकरों और उसकी प्रजा की जो हानि हुई है, उसकी पूर्ति करें, उनकी कोठी वापस कर दें और वाणिज्य-व्यापार की उन्हें जितनी भी सुविधाएँ प्राप्त थी, उन्हें पुनः दें। ऐसा कर आप मेरे बन्धुत्व को अवश्य प्राप्त करेंगे और आप भी चिरकाल के लिए यश लाभ करेंगे। ऐसा करने से दोनों पक्ष के सैकड़ों व्यक्तियों के खून से पृथ्वी भी रंजित नहीं होगी। अन्यथा वे बेचारे बिना अपराध के ही युद्ध की बेदी पर बलि हो जायँगे। इस सम्बन्ध में और अधिक क्या लिखूँ? ता० १७ दिसम्बर १७५६।"

पाठक! क्लाइव के इस नरम-गरम भाषा में लिखे गये पत्र को जरा ध्यान देकर पढ़ें और देखे कि इसमें कितनी गहरी चाल बाजी, कूटनीति, राजनीति और दम्भ-पूर्ण उक्ति भरी पड़ी है। अंग्रेजों का दलाल अनारुद्दीन की मृत्यु हो जाने के बाद भी धूर्त क्लाइव उसका नाम लेने में तनिक भी कुण्ठित नहीं हुआ। पत्र के आरम्भ मे ही देश-द्रोही और दलाल सलावत जग और अनारुद्दीन की दोहाई दे, कपटी क्लाइव ने दिखलाया है कि वह कुछ ऐसा आदमी नहीं है। मानों वह धर्म का अवतार हो, अपरिमित बलशाली फौज लेकर आया हो,

का जाल सम्पूर्ण बङ्गाल में भयङ्कर रूप से फैलाया जा चुका था। कलकत्ते का राजा मानिकचन्द भी लालच में फँसकर अपने तथा अपने देश दोनों के साथ विश्वास-घात करने के लिए तैयार हो गया था। इधर तो क्लाइव ने सिराजुद्दौला को लम्बे-लम्बे पत्र लिखे, उधर कलकत्ते पर आक्रमण करने की भी योजना बना ली। पत्र लिखना तो एक बहाना मात्र था।

कलकत्ते पर फिर से कब्जा

कलकत्ते में बुरी तरह हार कर वहाँ से भागे हुए अंग्रेज फल्ता में कुछ दिन दम लेकर फिर कलकत्ते पर अधिकार करने के मनसूबे बाँधने लगे। मद्रास से क्लाइव और वाट्सन के साथ काफी तादाद में फौज आ जाने से उनके साहस और हौसले बढ़ गये। सैकड़ों वर्षों से अंग्रेजों ने कलकत्ते में अपने व्यापार का विस्तार कर और अनेक स्थानों में कोठियाँ खोल कर अनेक प्रतिष्ठित लोगों से काफी मेल-जोल पैदा कर लिया था। ऐसे विश्वासघाती और नमकहरामों की भी संख्या कम नहीं थी, जो भीतर ही भीतर नवाबी राज की जड़ खोदकर सिराजुद्दौला के नाश का प्रयत्न कर रहे थे।

कलकत्ते से भागे हुए अंग्रेजों का पीछा कर यदि सिराजुद्दौला फौज के साथ फल्ता तक चला जाता, तो शायद अंग्रेजों को चोर की तरह भाग जाने का रास्ता न मिलता, पर उदार नवाब ने उनको आगे न खदेड़ कर उनके उद्धत व्यवहार को दबा देना ही उचित समझा, इसीलिए अंग्रेजों को भाग कर फलता में ठहरने और दम लेने का मौका मिल गया, परन्तु

अंग्रेज इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। प्रसिद्ध इतिहास लेखक अर्मी ने लिखा है:—

"अंग्रेजों को देश से बाहर निकाल देना ही सिराजुद्दौला का मुख्य उद्देश्य था। केवल अपने चित्त की कमजोरी के कारण ही वह अंग्रेजों के पीछे धावा न कर सका।"

परन्तु यह बात सरासर झूठ है। सिराजुद्दौला यदि चाहता तो उसे अंग्रेजों को यहाँ से बाहर निकाल देने में जरा सी भी देर न लगती और हेस्टिंग्स तथा डाक्टर फोर्थ इत्यादि अंग्रेज कोठीवाल स्वच्छन्दता-पूर्वक कासिम बाजार में रहने का मौका कदापि न पाते।

फल्ता में अंग्रेजों की दुर्दशा और कष्ट की खबर पाकर कलकत्ते के अनेक हिन्दुस्तानी कोठीवाल, जिनका अंग्रेजों से काफी मेलजोल बढ़ गया था, उनको सहायता पहुँचाने के लिए चोरी से अनेक प्रकार के उपाय करने लगे। रेवरेण्ड लांग ने अपने इतिहास में लिखा है कि:--

"कुछ सामग्री नवकृष्ण ने अपने प्राण हथेली पर रख कर अंग्रेजों को दी थी, क्योंकि नवाब की आज्ञा थी कि जो शख्स अंग्रेजों को कुछ सामान देगा, उसे प्राण-दण्ड दिया जायगा। इस उपकार के कारण वारन् हेस्टिंग्स ने नवकृष्ण को अपना मुन्सी बना लिया और बाद को उसके परिवार की बड़ी उन्नति हुई।"

औरों की बात तो अलग रही। जो अमीचन्द अंग्रेज बन्धुओं के सच्चे प्रेम और मित्रता के कारण अपना सब कुछ खोकर पथ का भिखारी बन चुका था, वह भी अंग्रेजों के बुरे दिनों में उनकी दुर्दशा पर आँसू बहाता हुआ नवाब के दर्बार में उनके उद्धार के लिए बहुत कुछ अनुनय-विनय करने लगा। हेस्टिंग्स और डाक्टर फोर्थ कासिम बाजार में रहते हुए गुप्त रूप से नवाब के वजीरों को अपनाने की चेष्टा करने लगे। जो अरमानी सौदागर व्यापार के लिए समुद्री मार्ग से आते-जाते थे; वे भी राजधानी के गुप्त भेद अंग्रेजों को बताने के लिए सहमत हो गये। इन सब उपायों से भविष्य में अंग्रेजों की दुर्दशा के अन्त का सदुपाय होने लगा। लोगों के दिल में यह बात जम गई कि थोड़े ही समय के भीतर अंग्रेज लोग पुनः नवाब के दर्बार वाणिज्य-व्यापार की सनद प्राप्त कर लेंगे, इसलिए वे दिनोंदिन अंग्रेजों से मेल-जोल बढ़ाने लगे।

आशा पाकर अंग्रेज कोठीवालों ने फल्ता में ही जहाज के ऊपर एक कमेटी का अधिवेशन किया। राजर ड्रेक इस कमेटी का सभापति बनाया गया। वाट्स, हालवेल और मेजर किलप्यात्रिक ने सदस्यों का स्थान ग्रहण किया। सभा समाप्त होने पर सभापति ने यह कह कर सबको आश्वासन दिया कि अब डर की कोई बात नहीं। परन्तु उसी दिन यह खबर मिली कि डच लोग अंग्रेजों का आवेदन पत्र नवाब के दर्बार

पहुँचाने के लिए पूर्ण रूप से तैयार नहीं हैं। अतएव पुनः कमेटी में इस पर विचार होने लगा कि किस प्रकार नवाब के पास आवेदन-पत्र पहुँचाया जा सकता है।

सहसा उसी दिन ख्वाजा पिट्रू और इब्राहीम जेकबस् नामक दो अरमानी सौदागर कलकत्ते से फल्ता में पहुँचे। वे अंग्रेजों के शुभचिन्तक अमीचन्द के पास से एक गुप्त पत्र लाये थे। वह पत्र सभी के सामने पढ़ा गया। उस पत्र में अमीचन्द ने लिखा था, "सदा की भाँति मैं आज भी उसी भाव से आप लोगों के कल्याण-साधन के लिए प्रस्तुत हूँ। यदि आप राजा राजबल्लभ, राजा मानिकचन्द, ख्वाजा वाजिद तथा जगत सेठ के साथ गुप्त रूप से पत्र-व्यवहार करना चाहें, तो मैं आपके पत्रों को भी ठीक ठिकाने पर पहुँचा कर जवाब मँगा दूँगा।" इसीलिए कहना पड़ता है कि जिन हालवेल साहब तथा दूसरे अंगरेज इतिहास-लेखकों ने 'इतिहास लिखते समय अमीचन्द को अत्यन्त कुटिल-हृदय, परम पाखण्डी, लोभी और नर-पिशाच आदि कुवाक्यों से, संसार के सामने परिचित करने के लिए प्रबल आग्रह प्रकट किया है, उन्होंने विपत्ति पड़ने पर भी कभी अमीचन्द में अविश्वास नहीं किया था।

निदान अमीचन्द की सहायता से राजा मानिकचन्द सहज ही हाथ में आ गया। जिस मानिकचन्द ने एक दिन अंग्रेजों

का सर्वनाश करने में अपरिचित उत्साह दिखाया था, उसका वह उत्साह इस समय एक दम से ठण्डा पड़ गया। कुछ दिन पहले की बैठक में स्वयं मानिकचन्द का एक मात्र अंग्रेजी कमेटी के सामने खोला गया। उस पत्र से अंग्रेजों को पुनः साहस हुआ। राजा मानिकचन्द की सहायता और सहानुभूति का परिचय शीघ्र ही मिल गया। उसकी आज्ञा से फल्ता में बाजार लग जाने पर अन्न का कष्ट दूर हो गया। मानिक-चन्द ने अपने पत्र में बहुत शिष्टता - पूर्वक अंग्रेजों को पूरी मदद देने का विश्वास दिलाया और एक नाव इस आज्ञा-पत्र के साथ भेजी कि फलता में बाजार खोल दिया जाय जिससे अंग्रेजों को खाने-पीने का सब सामान मिलने का सुभीता हो।

पुर्निया की बगावत को दबाने में फँसे रहने के कारण सिराजुद्दौला को अंग्रेजों पर देख-रेख रखने का मौका नहीं मिला। अंग्रेजों ने इस बीच में बहुतों से मेल-जोल पैदा कर लिया। अनेक लोगों को कृपा-पात्र बनाकर उन्होंने पुनः कलकत्ते में वापस आने का मार्ग अपने लिए आसान कर लिया। अमीर-उमरावों ने जिस समय सिराजुद्दौला से नम्रता-पूर्वक अंग्रेजों पर दया करने के सम्बन्ध में निवेदन किया, उस समय उसने बिना किसी विचार के ही उसे स्वीकार कर लिया। चारों ओर खबर फैल गई कि शीघ्र ही अंग्रेजों को पुनः कलकत्ते में वापस आने का आज्ञा-पत्र मिल जायगा।

सिराजुद्दौला शक्तिशाली था, बुद्धिमान् था। वह बड़े उत्साह और दृढ़ता से अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करता था। दुष्ट लोगों के छल-कपट-पूर्व व्यवहार से उसके हृदय में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर भी उसके स्वभाव में सादगी और विश्वास में सरलता परले सिरे की थी। धर्म का नाम ले, ईश्वर को साक्षी दे अथवा कुरान की कसम खाकर दुश्मन भी जो कुछ कहता, वह बड़ी सरलता से उस पर विश्वास कर लेता था। यदि वह इतना सरल-विश्वासी न होता, तो सहज ही में कोई कदापि उसे धोखा नहीं दे सकता था। सिराजुद्दौला के चरित्र में जो सद्गुण थे, भलाइयाँ थीं दुश्मन के हाथ में फँसाकर उन सद्गुणों और भलाइयों ने ही उसके सर्वनाश का रास्ता साफ कर दिया। जब सब लोगों ने कहा कि, "अब अंग्रेजों को काफी सजा मिल चुकी, अब वे निरंकुशता का व्यवहार न करेंगे, इसलिए उन्हें पुनः कलकत्ते में वापस आने की आज्ञा दी जाय।" तब सिराजुद्दौला ने कहा, "ऐसा ही हो जायगा।" सरल स्वभाव के कारण वह इस गूढ़ मर्म को न समझ सका कि शौकतजंग की पराजय के बाद अपने-अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए ही ये लोग मिलकर पुनः अंग्रेजों को कलकत्ते में बुलाने के लिए इतनी नम्रता से पेश आ रहे हैं।

इस ओर राजवल्लभ, जगत सेठ, मीरजाफर, मानिकचन्द आदि सभी लोग सिराजुद्दौला की शक्ति और शासन-कुशलता का परिचय पाकर भयभीत हो रहे थे। वे उस समय बड़े ही

विचित्र प्रकार के सङ्कट में पड़ गये थे। काम पड़ने पर उन सबों ने सिराजुद्दौला के रंग ढंगों को भली-भाँति पहिचाना था और सिराजुद्दौला को भी उन सबके पहिचानने का काफी मौका मिला था। अमीर-उमराव इन दो समान पक्षों की उलझन में फँस गये कि सिराजुद्दौला में विश्वास रखकर बेखटके सुख की नींद सोयें, अथवा उसे तख्त से उतारने के लिए प्रकट रूप से बगावत की घोषणा करें।

अन्त में अंग्रेजों के आ जाने की खबर पाकर उन्हें कुछ आशा हुई और जिस प्रकार अंग्रेजों से घनिष्ठता और मेल-जोल बढ़े, उसके लिए तरह-तरह के उपाय करने लगे। जगत सेठ के साथ अंग्रेजों का पत्र-व्यवहार होने लगा। नवम्बर मास के अन्त में मेजर किलप्याट्रिक ने उसको इस आशय का एक पत्र लिखा था, "यह निश्चय जानिये कि अंग्रेजों को एक मात्र आप ही का भरोसा है। इसलिए वे सब तरह से आप ही के ऊपर निर्भर हैं।" सेठ जी को भी अब कोई सन्देह नहीं रहा। वे भी देश के सर्वनाश का कारण बनकर सब तरह से अंग्रेजों के हित-साधन में लग गये।

जो अंग्रेज एक साल पहले तक कलकत्ते में टकसाल कायम करके जगत सेठ की आर्थिक आय का मार्ग संकुचित कर देने के लिए गुप्त रूप से बादशाह के दरबार में नजर-भेंट और घूस रिश्वत के द्वारा रुपये की बौछार कर रहे थे, वे ही अंग्रेज काम

पड़ने पर जब जगत सेठ को मारे खुशामदों के आसमान से भी ऊँचा उठाने लगे तब सेठ जी एकाएक सब कुछ भूल गये। पिछली बातों का पछतावा छोड़कर हतभाग्य अमीचन्द भी तन-मन से अंग्रेजों के हित-साधन में तत्पर हो गया और इस पर उसकी दृष्टि न गई कि भविष्य की भारतीय स्वतंत्रता को किस प्रकार के भीषण संघर्षों ने आच्छादित कर रखा है। इसके बाद ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये त्यों-त्यों अंग्रेजों की आशाएँ वर्षा काल की की लताओं के समान बढ़ती ही गईं।

उस समय के चतुर मनुष्यों में सर्व श्रेष्ठ मानिकचन्द फूँक-फूँक कर कदम रखने लगा। उसका विश्वास था कि पुर्निया के युद्ध ही में सिराजुद्दौला का सर्वनाश हो जायगा। जब ऐसा न हुआ तब वह गुप्त रूप से अंग्रेजों की मदद और प्रकट रूप से कलकत्ते की रक्षा के लिये तरह-तरह के दिखावटी आडम्बर रचने लगा।

वेन्टू नामक एक व्यक्ति चुँचुड़ा का पादरी था। अंग्रेजों के अनुरोध से कई सप्ताह तक कलकत्ते में रहने के बहाने से उसने वहाँ की गुप्त खबरें इकट्ठी करके अंग्रेजों के पास भेज दीं। उसके पत्र से फल्ता के अंग्रेजों को मालूम हुआ कि, "मानिकचन्द ने नदी की ओर बहुत-सी तोपें लगाकर अपना प्रभाव जमा रखा है, परन्तु ये सब उसके दिखावे हैं। जितनी तोपें लगी हैं, वे सब निकम्मी अवस्था में टूटी पड़ी हैं। टाना के किले में केवल

दो सौ सिपाही हैं। हुगली के किले के भीतर पचास आदमी और बाहर पाँच सौ आदमियों से ज्यादा फौज नहीं दिखाई पड़ती।"

अमीचन्द ने लिख भेजा कि "लोग नवाब के डर से कुछ कहने का साहस नहीं करते हैं, परन्तु अंग्रेजों के फिर आ जाने के लिए ख्वाजा वाजिद इत्यादि प्रधान सौदागर बड़े उत्सुक हो रहे हैं।" हालवेल साहब को खबर मिली कि कलकत्ते का किला एक प्रकार से अरक्षित हैं। उसके चारो बुर्ज टूटे-फूटे निकम्मे पड़े हैं। शहर के निवासी बेखटके खुर्राटे की नींद से सो रहे हैं। उनका विश्वास था कि नवाब के दर्बार की ओर से अंग्रेजों को वापस आ जाने का आदेश मिल जाने की आशा देखकर लोग कलकत्ते की रक्षा और देख-रेख में भली-भाँति योग नहीं देते हैं। इन समस्त समाचारों से फल्ता के अंग्रेजों को बड़ी प्रसन्नता हुई।

जिन्होंने क्लाइव और वाट्सन को बगाल भेजा था, उन्होंने किसी न किसी तरह कलकत्ते के वाणिज्य के अधिकार ही को फिर से प्राप्त करने की कोशिश की थी। इसीलिए बिना रक्तपात और मारकाट के ही यह कार्य सिद्ध करने के लिए दक्खिन के निजाम और अरकाट के नवाब से सिफारिशी चिट्ठियाँ लिखा कर उन्होंने सिराजुद्दौला के पास भेज दी थीं। परन्तु मद्रास के अँग्रेजी दर्बार की उस आज्ञा का पालन करने के लिए जो सरदार

(क्लाइव और वाट्सन) सेना के साथ बंगाल आये थे, वे इसी चिन्ता में डूबे रहने लगे कि सेना की सहायता से बंगाल को लूटकर कौन कितना धन प्राप्त करेगा। उनके इन विचारों की बदौलत मीरजाफर के भाग्य का कैसा उलट फेर हुआ, उसका वर्णन इस पुस्तक में आगे मिलेगा।

१७ दिसम्बर सन् १७५६ ईसवी को सेनापति वाट्सन ने फल्ता से सिराजुद्दौला के पास नीचे लिखा पत्र भेजा :—

"मेरे स्वामी इंगलिस्तान के राजा ने जिनका नाम संसार के दूसरे राजाओं में आदरणीय है मुझे इस प्रदेश में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के स्वत्वों और अधिकारों की रक्षा के लिए एक बड़ी जहाजी सेना के साथ भेजा है। जो लाभ मेरे राजा की प्रजा के व्यापार से मुगल राज्य को हुए हैं, उन्हें गिनाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे स्पष्ट ही हैं। ऐसी दशा में यह सुनकर मुझे बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि आपने एक बड़ी-सी फौज लेकर कम्पनी की कोठियों पर आक्रमण किया और नौकरों को जबरदस्ती निकाल दिया। साथ ही साथ उनका माल अस-बाब जो बहुत कीमती था, लूट लिया और मेरे राजा की बहुत-सी प्रजा को मार डाला। मैं कम्पनी के नौकरों को फिर उनकी कोठियों तथा मकानों में बसाने के लिए आया हूँ। आशा करता हूँ कि आप उनको फिर वही पुराने हक और आजादी दे देंगे, जो उन्हें पहले हासिल थे।"

"आपको वे भलाइयाँ याद रखनी चाहिए, जो आपके देश में अंग्रेजों के रहने से हुई हैं। मैं निस्सन्देह आशा करता हूँ कि आप उनके उन घावों को भरने और नुकसानों को पूरा करने के लिए राजी हो जायँगे, जो आपने पहुँचाये हैं और इस प्रकार शान्तिपूर्वक सब क्लेशों का अन्त करके मेरे उस राजा के मित्र बन जायँगे जो शान्ति प्रिय और न्यायपरायण है। इससे अधिक मैं क्या कहूँ।"

क्लाइव और वाट्सन फलता पहुँचते ही वीरता के जोश में कलकत्ते पर फिर से अधिकार करने के लिए आतुर हो उठे थे। परन्तु इस गुप्त रहस्य को फलता के अंग्रेज कुछ न जान सके कि लूट-मार के द्वारा मन-चाहा धन प्राप्त करके और बाँट-चूँट कर हड़प जाने के लिए ही वे इतने व्याकुल हो रहे थे। फलता के अंगरेज युद्ध-कलह के लिये कदापि तैयार नहीं थे। उनका निश्चय था कि जब नवाब ने बिना युद्ध के ही वाणिज्य का अधिकार देना स्वीकार कर लिया है तब फिर बेकार की मार-काट और नर-हत्या में फँसने की क्या जरूरत? परन्तु क्लाइव ने इन बातों पर बिलकुल ध्यान न दिया। कलकत्ते पर हमला करना ही निश्चय हो गया। क्लाइव ने बड़े अभिमान के साथ अनेक कठोर शब्दों का प्रयोग करके सिराजुद्दौला को एक पत्र लिखा और उसके पास पहुँचा देने के लिए वह पत्र मानिकचन्द को दे दिया। परन्तु मानिकचन्द की हिम्मत न पड़ी और वह इस

निरंकुशता-पूर्ण पत्र को नवाब के पास भेजने के लिए तैयार नहीं हुआ।

२१ दिसम्बर को मैदापुर के मैदान के पास जहाज लगाकर क्लाइव ने स्थल-मार्ग से युद्ध-यात्रा करने का प्रबन्ध किया। गङ्गा के किनारे पर बजबज नामक एक छोटा-सा किला था। इस निश्चय के साथ कूच का डंका बजा कि वाट्सन जल-मार्ग से जाकर बजबज के किले पर आक्रमण करेगा और जो लोग किला छोड़कर भागेंगे, स्थल-मार्ग से क्लाइव उनका काम तमाम कर डालेगा। परन्तु लड़ाई की तैयारी में ही पारस्परिक कलह का सूत्रपात हुआ। स्थल-मार्ग से युद्ध-यात्रा करने पर, तोपें ले जाने, बारूद ढोने और रसद पहुँचाने के लिए गाड़ी, घोड़े और भैसों की जरूरत थी। कलकत्ते के भागे हुए अंगरेजों ने जब यह सब सामान हाजिर न किया तब क्लाइव को चुप हो जाना पड़ा। वे अंगरेज किसी प्रकार नवाब के क्रोध को उभार कर क्लाइव का साथ देने के लिए सहमत न हुए। यह देखकर क्लाइव ने उन सबों को भीरु, कायर, गुलाम इत्यादि, शब्दों से धिक्कारते हुए स्वयं आवश्यक सभी सामान को इकट्ठा करने में लग गया। दो तोपें और सिर्फ एक गाड़ी बारूद ही तैयार हुई। बारी-बारी से पैदल सिपाही ही उन गाड़ियों को खींच कर ले चले। इस प्रकार बड़े साहस, निर्भीकता और विजय-लाभ करने की आशा से पूर्ण उत्साह के साथ क्लाइव की सेना कलकत्ते की ओर अग्रसर होने

लगी। वाट्सन जल-मार्ग से चढ़ाव की ओर धीरे-धीरे चल पड़ा।

बजबज्ञ का किला राजा मानिक चन्द के अधीन था। २६ दिसम्बर सन् १७५६ ईसवी को क्लाइव के नायकत्व में थोड़ी-सी गोरी फौज जल-मार्ग से बजबज में पहुँच गई। अंगरेजों और मानिकचन्द के बीच यह पहले से ही तय हो चुका था कि मानिकचन्द केवल दिखाने के लिए एक बार अंग्रेजों का मुकाबला करेगा। अतएव मानिकचन्द दो हजार सैनिकों को लेकर क्लाइव के दो सौ साठ सैनिकों का मुकाबला करने के लिए किले से बाहर निकला। यदि मानिकचन्द चाहता तो एक-एक गोरे सैनिक को उसकी सेना निगल जाती और कलकत्ते पर अंग्रेजी झण्डा फहराने का अंग्रेजों का स्वप्न धूल में मिल गया होता, लेकिन देश-द्रोही मानिकचन्द को यह कहाँ मन्जूर था! वह तो व्यक्तिगत स्वार्थ के लोभ में पड़कर अन्धा और पागल हो रहा था। केवल आधे घण्टे की झूठी फटफटाहट के बाद ही मानिकचन्द ने किले के दर्वाजे अंगरेजों के लिये खोल दिये और बिना किसी रुकावट के २६ दिसम्बर की रात को अंगरेजी सेना बजबज के जबरदस्त किले में प्रवेश कर गई। मानिकचन्द अपनी सेना के साथ पीछे की ओर हटता चला गया।

बजबज किले के भीतर जितने की हिन्दुस्तानी थे, उनमें से

कुछ तो भाग निकले और बाकी का अंगरेजों ने वहीं पर काम तमाम कर डाला। इसके बाद दूसरा स्थान, जहाँ मनिकचन्द अंगरेजों का मुकाबला कर सकता था, कलकत्ता था। किन्तु यहाँ पर उसने और उसके विदेशी मित्रों ने दिखावे की भी जरूरत न समझी। बजबज से भाग कर वह सीधे हुगली पहुँचा। वहाँ से सिराजुद्दौला को कहला भेजा कि, 'अंगरेजों की विशाल सेना के सामने मैं ठहर न सका।'

बजबज की लड़ाई आरम्भ होने के पहले क्लाइव ने सोचा था कि युद्ध करने के पूर्व ही उसे विजय का गौरव मिल जायगा। हिन्दुस्तानियों को पैरों से रौंदने के लिये किसी भारी प्रयास और कोशिश की जरूरत न होगी। किन्तु बजबज की लड़ाई में विजय प्राप्त कर लेने पर भी क्लाइव की वह आशा निराशा में परिणत हो गई। उसने देखा कि हिन्दुस्तानी मरना जानते हैं। युद्ध में प्राणों की आहुति देने से भी बाज नहीं आते। इसमें जरा भी शक नहीं कि अगर मानिकचन्द ने धोखा न दिया होता और ईमानदारी के साथ देश-भक्ति पूर्ण हृदय से सेना का संचालन किया होता, उसके मन में देश-द्रोह और कपट की भावना न होती, तो कदापि क्लाइव अपनी अनेक धूर्तताओं, साजिशों और चालबाजियों के बावजूद भी अपनी योजना में सफल न होता और उसकी फौज के एक-एक सैनिक रणचण्डी की बलि-वेदी पर मौत के घाट उतार दिये गये होते। बजबज पर अंगरेजों के फिर से अधिकार

होने का कलंक भारतीय सैनिकों पर नहीं, अपितु देश-द्रोही मनिकचन्द के ऊपर लगाया जा सकता है। भारतीय सैनिकों की वीरता का बखान करते हुए स्वयं क्लाइव ने लिखा कि, "भाविष्य में नवाब की सेना से प्रत्यक्ष संग्राम करने में कितना सफल होऊँगा, इस पर प्रकाश डालना अभी मेरे लिए असम्भव है।"

क्लाइव ने उसी पत्र में एक जगह पर और लिखा है कि, "नवाब की सेना ने अगर हमला किया होता तो हमारी सेना की मृत्यु संख्या और भी बढ़ गई होती।" कायर मानिकचन्द ने तनिक भी हिम्मत कर लड़ाई की होती तो कदापि अँगरेज अपनी साजिशों और हमलों में सफल न गये होते। अँगरेजों की तोपें शक्तिहीन हो चुकी थीं। थोड़ी देर भी अगर मानिकचन्द रुक गया होता तो गोरे फौजी खत्म कर दिये होते। किन्तु ऐसा न हो सका। भीरु और कायर देश-द्रोही मानिकचन्द की व्यक्तिगत स्वार्थ-पिपासा की वजह से अँगरेज अपना प्रभुत्व, अपनी ताकत फैलाने और अपने को मजबूत बनाने में समर्थ हो सके।

बजबज से मानिकचन्द के हट जाने से अँगरेजों की विजय-यात्रा का मार्ग और भी चौड़ा, निष्कण्टक और सुविधाजनक हो गया। अँगरेजों ने बिना किसी बाधा के बजबज के किले पर कब्जा कर लिया। किन्तु इतनी भारी सेना तो उनके पास थी

नहीं, जो उस पर अधिकार कायम रख पाते। अतएव इस आशंका से कि कहीं फिर नवाब हमला कर इस किले पर कब्जा न कर ले, उन्होंने किले को ही मिटा डाला।

बजबज पर फिर से अधिकार कर लेने के दूसरे ही दिन अँगरेजी सेना जल और स्थल-मार्ग से कलकत्ते की ओर चल पड़ी। रास्ते में अँगरेजी सेना को कहीं भी किसी प्रकार के अवरोध का सामना नहीं करना पड़ा। मानिकचन्द चाहता तो कलकत्ते की ओर अँगरेजी सेना को बढ़ने से रोक सकता था, लेकिन उस देश-द्रोही को अब देश-भक्ति का ढोंग रचने की भी जरूरत न थी और उसकी गैर-हाजिरी में २ जनवरी सन् १७५७ ईसवी को फिर से कलकत्ते पर अँगरेजों का अधिकार हो गया।

किले में प्रवेश करने पर अँगरेजों ने देखा कि कम्पनी के कर्मचारी किले के भीतर जो चीजें जिस दशा में, जहाँ रख गये थे, वे सब ज्यों की त्यों रखी हुई हैं। न किसी ने उन्हें चुराया, न लूटा। किले की चारदीवारी के बाहर जो मकान थे, केवल उन्हीं को सिपाही लोग लूट ले गये।

वाट्सन और क्लाइव ने बंगाल में कदम रखते ही सिराजुद्दौला के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा था। अपनी रजामन्दी प्रकट करते हुए सिराजुद्दौला ने भी उसका उचित उत्तर भेज दिया था। परन्तु अँगरेजों ने उसकी बात पर जरा भी विश्वास

न करके बल-पूर्वक कलकत्ते पर आक्रमण कर अपनी धृष्टता का पूरा परिचय दिया, तथापि सिराजुद्दौला ने इस पर भी एकाएक क्रोधित न होकर पुनः एक पत्र २३ जनवरी सन् १७५७ ईसवी को लिख भेजा, जिसका आशय यह था :—

"तुमने लिखा है कि तुम्हारे स्वामी एवं राजा ने तुम्हें कम्पनी के कारबार और व्यापार की रक्षा के लिये ही भारतवर्ष में भेजा है। मुझे जिस समय यह पत्र मिला था, उस समय पढ़ कर फौरन ही मैंने उसका जवाब भेज दिया था। अब देखता हूँ कि मेरा जवाब तुम्हें नहीं मिला, इसलिये दुबारा यह पत्र लिखता हूँ।

"मैं कह चुका हूँ कि कम्पनी के अध्यक्ष राजर ड्रेक ने, मेरी आज्ञा के विपरीत आचरण करके, शासन-शक्ति का उल्लङ्घन किया था। दरबार को निकासी का पावना रुपया अदा न करके मेरी जो प्रजा राज्य से भागी, उसे उन्होंने आश्रय दिया। मेरे निषेध करने पर भी वे इस तरह के कामों से बाज न आये। केवल इसीलिये मैंने उन्हें दण्ड देने का निश्चय किया और उन्हें अपने राज्य से निकाल दिया था। परन्तु मैं चाहता था कि यदि अंग्रेज लोग किसी और व्यक्ति को अध्यक्ष बनाकर भेजेंगे तो मैं उन्हें पहले के ही समान वाणिज्य के अधिकार प्रदान करूँगा। अतएव राज्य और राज्य के निवासियों के कल्याण के लिये मैं यह पत्र लिखता हूँ।"

"यदि कम्पनी का वाणिज्य ही संस्थापित करने की तुम्हें इच्छा हो तो एक व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त करो। ऐसा करने पर पूर्व प्रचलित नियम के अनुसार ही तुम वाणिज्य के अधिकार को व्यवहार में लाने की आज्ञा पा सकोगे। यदि अंग्रेजों का बर्ताव व्यापारियों का सा रहेगा और वे मेरी आज्ञाओं के अनुसार कार्य करते रहेंगे तो फिर इस सम्बन्ध में वे निश्चिन्त रहें कि मैं उनका पालन करूँगा और वे मेरे कृपा-पात्र रहेंगे।"

इस पत्र से सिराजुद्दौला के जैसे चरित्र का परिचय मिलता है, उसमें इतिहास-वर्णित सिराजुद्दौला के चरित्र में बहुत बड़ा अन्तर है। परन्तु अंग्रेज लोग इन सब बातों को जान-बूझकर भी अपनी शान्ति-प्रियता का परिचय न दे सके। यह पत्र जिस समय अंग्रेजों के हाथ में पहुँचा, उस समय वे कलकत्ते पर फिर से अधिकार कर, हुगली को लूट-पाट कर बड़े अभिमान के साथ अंग्रेजी किले में विश्राम-सुख का उपभोग कर रहे थे। अस्तु, पत्र को पढ़ते ही वाट्सन की शान्ति मूर्ति विलीन हो गई। वह आपे से बाहर हो गया और तुरन्त उस पत्र का यह उत्तर लिख भेजा :—

"आपने अपने पत्र में लिखा है कि इस देश से अंग्रेजों के निकालने का एकमात्र कारण, कम्पनी के गुमाश्ता ड्रेक का उद्दण्ड व्यवहार था। परन्तु इसके साथ ही यह ध्यान देने के

योग्य है कि राज्य के शासक और नवाब जो न आँखों से देखते और न कानों से सुनते हैं—प्रायः असत्य खबरें पाते हैं और दूसरों से डाह करने वाले बुरे आदमी सच्चाई को हमेशा उनसे दूर रखते हैं। न्याय के अनुसार क्या एक शाहज़ादे को यह उचित था कि वह एक आदमी के अपराध से इतने आदमियों को दण्ड देता अथवा ऐसे निर्दोष आदमियों का, जिन्होंने कभी कोई अनुचित कार्रवाई नहीं की, इस प्रकार सर्वनाश करता ? वे लोग शाही फरमान पर भरोसा रख कर उस रक्त-पात और उन अत्याचारों के बजाय—जो दुर्भाग्य से उन्हें सहने पड़े—हमेशा अपने जान-माल के सुरक्षित रहने की आशा रखते थे। क्या यह काम एक शाहज़ादे की प्रतिष्ठा और बड़प्पन के योग्य है ? कोई इसे योग्य नहीं कह सकता। यह केवल उन्हीं बुरे लोगों की वजह से हुआ, जिन्होंने डाह और स्वार्थ के वशीभूत होकर आपके पास मिथ्या खबरें पहुँचाईं। परन्तु बड़े शाहज़ादे हमेशा न्याय के अनुसार काम और दयालुता का बर्ताव करने में प्रसन्न होते हैं।

इसलिए यदि आप एक बड़े शाहज़ादे की तरह न्यायी और यशस्वी बनने की अभिलाषा रखते हों तो कम्पनी के साथ आपने जो व्यवहार किया है, उसके लिए उन बुरे सलाहकारों को—जिनकी राय से आपने ऐसा किया—दण्ड देकर कम्पनी को सन्तुष्ट कीजिए और उन लोगों को, जिनका माल असबाब छीना गया है, राजी कीजिए। साथ ही साथ अपने इन कामों

से हमारी उन तलवारों की धारों को फेरिए, जो शीघ्र ही आपकी प्रजा के मस्तकों पर गिरने के लिए तैयार हैं। यदि आपको गुमाश्ता ड्रेक के विरुद्ध कोई शिकायत है तो उचित है कि आप अपनी शिकायत कम्पनी को लिखें। क्योंकि नौकर को दण्ड देने का अधिकार केवल मालिक को ही है। मैं उन शिकायतों का आपको संतोष-जनक उत्तर दूँगा। यद्यपि मैं भी आपकी निरपराध प्रजा को पीड़ित करके आपको न्याय करने के लिए बाध्य करूँ।"

यह पत्र जिस समय सिराजुद्दौला को मिला, उसके पहले ही वह हुगली की लूट का वृत्तान्त सुन चुका था। वह अँग्रेजों के उद्दण्ड व्यवहार से सदा ही चिढ़ता रहा था, अतएव वाट्सन के पत्र से भी वही हुआ। वाट्सन ने लज्जावश सत्य को छिपा कर यह लिख भेजा कि सिराजुद्दौला ने दूसरों की बातों पर विश्वास करके अँग्रेजों का सर्वनाश किया। नवाब के दूत को अपमानित करके बाहर निकाल देने की बात को कलकत्ते के अँग्रेजों ने भी स्वीकार किया है। कदाचित् वाट्सन अपनी वाक् चातुरी से उन सभी बातों को उड़ा देना चाहता रहा हो। कुछ भी हो, अँग्रेजों के कागज-पत्रों से भी वाट्सन के पक्ष का समर्थन नहीं होता।

वाट्सन का कहना है कि कम्पनी के गुमाश्ता ड्रेक ने जिस उद्दण्ड व्यवहार का परिचय दिया था, उसके प्रति सिराजु-

दौला को उचित था कि वह अंगरेजी कम्पनी की अदालत में अपना दावा पेश करता। सिराजुद्दौला इसका और क्या जवाब देता? वह जिस देश का नवाब था, ड्रेक उसी देश में व्यापार करने वाली कम्पनी का एक साधारण गुमाश्ता था। उसी के देश में रहने वालों के मुँह से उसे यह भी सुनना पड़ा कि कम्पनी के पास नालिश न करके सिराजुद्दौला ने स्वयं ही गुमाश्ता ड्रेक को दण्ड देने की जो व्यवस्था की, यह घोर अन्याय किया। शासन-शक्ति को संस्थापित रखने और अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करने तथा असहाय प्रजा के जान-माल को बचाने के लिए सिराजुद्दौला को पुनः दूसरी बार युद्ध-यात्रा करनी पड़ी। परन्तु क्रोध से अन्धा होकर उसने अपने कर्त्तव्य को नहीं भुलाया। भारतवर्ष के नवाब क्रोधित और परेशान होने पर भी कितने क्षमाशील हो सकते हैं। यह बताने के लिए उसने पुनः वाट्सन को एक पत्र लिख भेजाः—

"तुमने हुगली को लूट लिया और मेरी प्रजा के साथ लड़ाई की। यह काम सौदागरों के योग्य कदापि नहीं था। विवश हो, मुझे मुर्शिदाबाद छोड़कर हुगली आना पड़ा। फौज के साथ नदी पार कर रहा हूँ। सेना का एक भाग तुम्हारे पड़ाव की ओर धावा कर रहा है। तथापि यदि कम्पनी के व्यापार को पूर्व प्रचलित नियमों के अनुकूल संस्थापित रखना हो और व्यापार करने की तुम्हें उत्कट आकाँक्षा हो तो एक विश्वासपात्र व्यक्ति मेरे पास भेजो, जो तुम्हारे सब दावों को समझा कर मेरे साथ

सन्धि संस्थापित कर सके। कम्पनी की कोठी के पुनः प्रचलित और पूर्व नियमों के अनुकूल फिर व्यापार करने की आज्ञा देने में मुझे कोई आपत्ति न होगी। यदि इस प्रदेश में रहने वाले अंगरेज सौदागरों का सा व्यवहार करें, आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार रहें और मुझे असन्तुष्ट न करें तो वे इस विषय में निश्चिन्त रह सकते हैं कि मैं अवश्य ही उनकी हानि के मामले पर विचार करके उन्हें सन्तुष्ट करूँगा।

"लड़ाई के समय फौज के सिपाहियों को लूटमार से रोकना कैसा कठिन काम है, यह तुम्हें अच्छी तरह ज्ञात है। फिर भी यदि तुम मेरी सेना के द्वारा होने वाली लूट के दावे को किसी अंश में छोड़ सको तो भविष्य में तुम्हारे साथ मित्रता और मेल-मिलाप कायम करने की आशा से मैं उसके सम्बन्ध में भी तुम्हें सन्तुष्ट करूँगा।

"तुम क्रिश्चियन हो और इसलिए तुम्हें यह अवश्य ही ज्ञात है कि शान्ति-संस्थापन के लिए सारे विवाद का फैसला कर डालना और समस्त वैर-विद्वेष को तिलाँजलि देना कितना कल्याणकारी है। परन्तु तुमने यदि कम्पनी के अन्यान्य व्यापारियों के वाणिज्य-स्वार्थ का नाश करके लड़ाई लड़ने का दृढ़ निश्चय कर लिया हो तो फिर उसमें मेरा कोई अपराध नहीं। सर्वनाशजनक युद्ध-कलह के अनिवार्य कुपरिणाम को रोकने के लिए ही मैं यह पत्र लिखता हूँ।"

इस पत्र की एक एक पंक्ति से गम्भीरतापूर्ण शान्त स्वाभव

की उदारता झलक रही है। नौजवान होने पर भी सिराजुद्दौला इस तरह के शान्तिमय चरित्र का परिचय देने में समर्थ हुआ था, यह उसके लिये विशेष गौरव की बात है। राजा होकर प्रजा के साथ युद्ध-कलह में लिप्त होना, राजा के लिये सर्वथा अनिष्ट-कारक है, उससे शिल्प और वाणिज्य की हानि होती है। इन बातों को समझ कर ही सिराजुद्दौला ने सन्धि संस्थापित करने के लिये वाट्सन को पत्र लिखा था। अब इसके साथ अंग्रेजी कम्पनी के व्यवहार की तुलना करने से ही साबित हो जायगा कि शान्तिप्रिय कौन था ? भारतीय नवाब सिराजुद्दौला या भारत में व्यापार करने के लिये आने वाले धूर्त अंग्रेज ?

हुगली का पतन

कलकत्ते को अंग्रेजों ने किस प्रकार अपने कब्जे में किया, यह पिछले अध्याय में बतलाया जा चुका है। कलकत्ते पर कब्जा कर लेने के बाद अनेक प्रकार की चिन्ताओं ने अंग्रेज अधिकारियों को सताना शुरू किया। फ्राँसीसियों ने राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कर धीरे-धीरे जिस प्रकार अपने प्रभुत्व को कायम कर लिया था उसी प्रकार अंग्रेजों ने भी बङ्गाल के राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कर अपनी कूटनीतिक चालबाजियों के सहारे सम्पूर्ण बङ्गाल में अपना प्रभुत्व स्थापित करने की साजिशें शुरू कर दीं।

इस अभिप्राय में सफल होने के लिये जल-मार्ग से ढाका पहुँचकर और सरफ़राज खाँ के पुत्रों को बहका कर अंग्रेज लोग एक देश-विरोधी दल का सङ्गठन करने के मनसूबे की भूमिका बाँधने लगे। किन्तु इस योजना में सफलता न मिलने के बाद उन्होंने हुगली पर हमला कर नवाब को संकट में डालने का षड्यंत्र किया। निश्चित योजना के अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया गया। ४ जनवरी सन् १७५७ ईसवी को किलप्याट्रिक ने एक सौ तीस गोरों और तीन सौ हिन्दुस्तानी सिपाहियों को ले हुगली पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया।

किन्तु जल-मार्ग की उचित व्यवस्था न होने और अँग्रेज मल्लाहों की अनभिज्ञता के कारण अंग्रेज आगे बढ़ने में विशेष सफल न हुए और उन्हें कई दिनों तक गङ्गा में अपने जहाज डाल कर मार्ग के पता लगाने की प्रतीक्षा में रुके रहना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि उनके इस षड़यन्त्र का पता वरा नगर के अधिकारियों को चल गया। अँग्रेजों ने वरा नगर से मदद भी माँगी, लेकिन न मिली। तब ज़ोर जबरदस्ती के साथ एक डच नाविक को पकड़ लाये और उसके द्वारा अपने मार्ग-प्रदर्शन का कार्य सम्पादन कराना चाहा। लेकिन फिर भी उनके प्रस्थान में काफी देर हो गई। इसी बीच अँगरेजों की इस साजिस से साव-धान होकर हुगली के फौजदार नन्दकुमार हुगली के किले की रक्षा करने के लिये चेष्टा करने लगे। उन्होंने डचों के पास से तोपें लाकर हुगली के किले में बैठा दिया। जो धनी थे, उन्होंने अपनी सम्पत्ति दूसरी जगह हटा दी।

६ जनवरी सन् १७५७ ईसवी को चन्दर नगर पार कर अंग्रेजी फौज हुगली की ओर बढ़ने लगी। इसी समय मानिक-चन्द की सेना भी हुगली के सैनिकों की मदद के लिये चल पड़ी। मानिकचन्द्र के सैनिकों की प्रगति को रोकने के लिये एक गोरा कितने ही सैनिकों को लेकर जल-मार्ग से रवाना हुआ। अंगरेजी सेना जहाज के ऊपर से किले के ऊपर बम वर्षा करने लगी। किले की फौज ने डट कर इसका मुकाबला किया। लगातार कई दिनों तक भयानक संग्राम

चलता रहा। अंगरेजों के गोला बरसाने से हुगली का किला टूट गया।

जिस ओर से किला टूटा हुआ था उसी ओर से अंगरेजों ने किले पर हमला शुरू किया। नन्दकुमार की सेना भी उधर ही जा डटी और मुकाबला करने लगी किन्तु अंगरेजों की सेना का सामना करने में नन्दकुमार की सेना सफल न हुई और अन्त में उसे अपने कर्त्तव्य से मुँह मोड़ लेना पड़ा। नन्दकुमार की सेना ने हुगली के किले की रक्षा में अपनी वीरता का अपूर्व प्रदर्शन किया जरूर लेकिन चालबाज अंगरेजों के सामने वह टिक न सकी और ११ जनवरी सन् १७५७ ईसवी मंगलवार को हुगली के किले पर अङ्गरेजों ने कब्जा कर लिया।

हुगली के इस संग्राम में नवाब की सेना की कुछ विशेष हानि नहीं हुई थी। अंगरेजों ने भी इसका कहीं जिक्र नहीं किया है, किन्तु अंगरेजी स्थल सेना के छः गोरे मारे गये थे और अट्ठारह घायल हुए। इसके अलावे भी बहुत से सैनिक-सिपाही घायल हुए।

हुगली के किले पर अधिकार कर लेने के बाद अङ्गरेजों ने किले के आस-पास की कितनी ही बस्तियों में आग लगा दी और इस प्रकार अपने जोर-जुल्म और अत्याचार-आतङ्क द्वारा हथियार-हीन परिवारों पर अपना रोब जमा लिया। हुगली और हुगली के आस-पास के गाँवों की इतनी दुर्दशा और दुर्गति

करके ही लुटेरे अंग्रेज चुप नहीं रह सके। उन्होंने बस्तियों में आग भी लगाई और लूटा भी। इसी प्रकार अवैध अत्याचार करने से भी वे बाज नहीं आये। गरीब किसानों की बस्तियों और झोपड़ियों में आग लगा वे आनन्द का अनुभव करते थे। भारतीय लोक-मर्यादा के साथ दुष्टतापूर्ण खिलवाड़ करने में उन्हें तनिक भी लज्जा नहीं आती थी।

नवाब की सेना के साथ अंगरेजों को बहुत मामूली लड़ाई लड़नी पड़ी थी। इस संग्राम के फल स्वरूप एक गोरा खलासी और बहुत-से सिपाही मारे गये थे। बहुत-से आहत भी हुए थे। अंगरेजों ने जब देखा कि फौजदार नन्दकुमार की सेना उनके सामने बढ़ती चली आ रही है तब उन्होंने गङ्गा के दूसरे किनारे के गरीब लोगों की झोपड़ियों में आग लगा दी और अपने दानवी अत्याचारों का पूरा परिचय दिया।

मेजर किलप्यात्रिक ने हुगली के आसपास अपनी निष्ठुरता, दुष्टता और बर्बरता का नग्न रूप प्रदर्शित कर कलकत्ता की ओर प्रस्थान किया। इसी बीच अङ्गरेजों और डचों के बीच मन-मुटाव बढ़ गया। फल्ता के सङ्कट ग्रस्त अंगरेजों की डचों ने काफी मदद की थी। इन्हीं डच-नाविकों की कृपा से अंगरेज कलकत्ते से हुगली में आने में समर्थ हुए थे। किन्तु फिर भी अंगरेजों ने उनके विरुद्ध दोषारोपण किया कि इस देश की सम्पत्ति को डचों ने लूटा है और यहाँ के लोगों को तङ्ग और तबाह किया है। सङ्कट के समय डचों से सहायता पाकर भी

अंगरेजों ने डचों के साथ निर्लज्जता का परिचय दिया और उनको अपमानित किया। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए अंग्रेज जाति नीच से नीच कर्म भी कर सकती है, यह इस बात का सबूत है।

किलप्याट्रिक जिस समय हुगली के इलाके में निरीह और असहाय प्रजा-जनों पर अत्याचार कर उनके मकान आदि जला कर अपनी वीरता का नग्न परिचय दे रहा था, उसी समय हुगली में क्लाइव जगत सेठ के बीच-बिचाव से नवाब की कृपा प्राप्त करने की कोशिश कर रहा था। जगत सेठ ने क्लाइव के पत्र का जो उत्तर दिया था, उसे संक्षेप में यहाँ दिया जाता है। इसे पढ़ने से अंगरेजों की अनेक धूर्तताओं और चालों का पता चलेगा।

"आपका पत्र पाकर खुशी हुई और पत्र में आपने जिस विषय का जिक्र किया है उसकी जानकारी भी मिली। आपने लिखा है कि आप नवाब के पास जिस बात के लिये भी निवेदन करते हैं उसे वे सहानभूति पूर्वक सुनते हैं। मैं व्यवसायी आदमी हूँ सम्भवतः व्यवसाय के बारे में कोई बात करने से मुझे आशा है वे ध्यान देंगे। आप लोगों ने बड़ा ही उलटा काम किया है। ज़ोर जबरदस्ती से कलकत्ता और हुगली पर भी अधिकार कर लिया है तथा वहाँ की प्रजा पर अत्याचार भी किया है। इससे जान पड़ता है कि युद्ध के सिवा आप लोग और कुछ नहीं चाहते। आपका मतलब युद्ध करना है। ऐसी अवस्था में मैं

आप लोगों के निवेदन को किस तरह से नवाब के पास पहुँचाऊँ ।

"संग्राम कर अपने मतलब को पूरा करना आप लोगों के लिये असम्भव बात है। आप लोग इस प्रकार का आचरण बन्द कर दें। आप क्या चाहते हैं यह मुझे बतलाएँ। यह जान लेने के बाद ही आप लोगों के दुःख को दूर करने की कोशिश मैं करूँगा और नवाब को भी प्रभावित करने की कोशिश करूँगा। अगर आप लोग इस देश में शासन के विरुद्ध हथियार उठाने की धृष्टता करेंगे तो नवाब कैसे इसे सहन करेंगे। इस बात पर आप अवश्य विचार करेंगे।"

अपने दुःख की कहानी नवाब के पास तक पहुँचाने की जितनी बड़ी भी इच्छा क्लाइव को क्यों न रही हो सबसे बड़ी बात जो चालाकी से भरी हुई थी, वह यह थी कि वह जगत सेठ के बारे में अधिक जानने की कोशिश कर रहा था। उसका मतलब यह था कि वह जान ले कि जगत सेठ की धारणा अंगरेजों के प्रति कैसी है और कहाँ तक अङ्गरेज उसे अपने फन्दे में फँसा सकते हैं।

अलीनगर की सन्धि

सिराजुद्दौला को मालूम हो गया कि मेरे आदमियों में विश्वासघात के बीज बो कर अंगरेजों ने बजबज, तान्नाह, कलकत्ता और हुगली के जबरदस्त किले मुफ्त ही में ले लिये हैं। एस० सी० हिल नामक इतिहास-लेखक स्पष्ट लिखता है कि :— "मुर्शिदाबाद के मुख्य-मुख्य दरबारियों को अपनी ओर मिलाने के लिये क्लाइव का गुप्त पत्र-व्यवहार उनके साथ बराबर जारी था।" बहुत सम्भव है कि इस पत्र-व्यवहार की भी कुछ भनक सिराजुद्दौला से कानों तक पहुँच गई हो। इसके बाद हुगली की निरपराध प्रजा के ऊपर अंगरेजों के अत्याचारों की खबर सिराजुद्दौला को मिली। सिराजुद्दौला सेना लेकर मुर्शिदाबाद से बढ़ा और हुगली के निकट आकर उसने अंगरेज सेनापति वाट्सन को पत्र लिखा था उसे पाठक पिछले अध्याय में पढ़ चुके होंगे।

निस्सन्देह वह पत्र सिराजुद्दौला की दूर-दर्शिता, उसकी शान्तिप्रियता, उसकी उदारता और उसकी प्रजा-पालकता का पूरा द्योतक था, यह भी हम कह चुके हैं। किन्तु अभी तक उसे इस बात का काफी तजुर्बा न हुआ था कि इन विदेशी व्यापारियों के साथ किसी तरह का भी समझौता कहाँ तक

स्थायी हो सकता है। अंगरेजों ने जब नवाब को सुलह के लिये उत्सुक पाया तो नीचे लिखी शर्तें पेश की:—

१—यह कि अङ्गरेजों का जितना नुकसान हुआ है, उस सब का पूरा-पूरा हर्जाना दिया जाय।

२—यह कि कम्पनी को बङ्गाल में जितनी रिआयतें मिली हुई थीं वे सब पूरी तरह फिर से दे दी जावें।

३—यह कि अङ्गरेजों को अधिकार हो कि जिस तरह वे चाहें अपनी आबादियों की क़िलेबन्दी कर सकें।

४—यह कि कलकत्ते में कम्पनी की अपनी एक टकसाल कायम हो।

चौथी शर्त को स्वीकार करना सिराजुद्दौला के अधिकार से बाहर था। साम्राज्य भर में कहीं भी टकसाल कायम करना या किसी को टकसाल कायम करने की इजाजत देना केवल दिल्ली के सम्राट् के अधिकार में था। पहली तीनों शर्तें सिराजुद्दौला ने मन्जूर कर ली। चौथी के विषय में पत्र-व्यवहार होता रहा। इस पत्र-व्यवहार में अङ्गरेजों ने और नई-नई शर्तें नवाब के सामने पेश करनी शुरू की। उनका असली उद्देश्य सिराजुद्दौला के साथ सुलह करना नहीं था। उनका उद्देश्य सिराजुद्दौला को धोखा देकर बङ्गाल के राज शासन में एक क्रान्ति उत्पन्न करना था। इन लोगों ने सिराजुद्दौला से कलकत्ते चलने की

प्रार्थना की और उसे यह आशा दिलाई कि ,कलकत्ते पहुँच कर सुलह की शर्तें तय हो जायँगी।

अङ्गरेज इस समय सिराजुद्दौला को धोखे से कलकत्ते लाकर अचानक उस पर हमला करना चाहते थे। सुप्रसिद्ध मीर जाफर इस समय सिराजुद्दौला के साथ और उसके मुख्य सेनापतियों में से था।

एस० सी० हिल लिखता है कि:—"सिराजुद्दौला को अपनी इस यात्रा में मालूम हो गया था कि मेरे अनेक सिपाही और कई अफसर तक मेरा साथ देने के लिए तैयार नहीं हैं।"

इतिहास-लेखक स्क्रैफ्टन लिखता है कि:— सिराजुद्दौला को अपने मुख्य-मुख्य अफसरों और खासकर मीर जाफर में जिसका व्यवहार कि इस मामले में अत्यन्त रहस्यपूर्ण मालूम होता था, विद्रोह के लक्षण दिखाई दे गये थे।"

४ फर्वरी सन् १७५७ ईसवी को सिराजुद्दौला कलकत्ते पहुँचा। कलकत्ते में अङ्गरेजों ने उसे बड़े आदर के साथ अमीचन्द के बाग में ठहराया। सुलह की बातचीत बराबर जारी रही। अङ्गरेजों की यह तजवीज थी कि ५ फरवरी को सबेरे सूर्योदय से पहले सिराजुद्दौला पर चुपके से हमला कर दिया जाय। इतिहास-लेखक जीन लॉ लिखता है:—

"जिस दिन अङ्गरेज हमला करने वाले थे उससे एक दिन

पहले सिराजुद्दौला को और अधिक पूरी तरह धोखे में रखने की गरज़ से और उसके खेमे की जगह को अच्छी तरह देख लेने के लिए उन्होंने उसके पास अपने दो वकील भेजे। इन वकीलों को हुकुम था कि वे नवाब से सुलह की तजवीजे करें, किन्तु सुलह की जो शर्तें उन्होंने पेश कीं, उन्हीं से नवाब को जाहिर हो जाना चाहिए था कि यह उसके शत्रुओं की केवल एक चाल थी।"

जो दो अंगरेज वकील क्लाइव ने इस अवसर पर नवाब के पास भेजे थे और जो वास्तव में जासूसों का काम कर रहे थे, उनके नाम वाल्श और स्क्रैफ्टन थे। एक और हिन्दुस्तानी देश द्रोही राजा नवकृष्ण इस समय सिराजुद्दौला के दल में अगरेज के जासूस का काम रहा था और उन्हें पल-पल पर नवाब की समस्त कार्रवाइयों की खबर देता रहता था। नवाब के खेमे के पास ही अंगरेज वकीलों के खेमे डाल दिये गये। पहले से जो हिदायते उन्हें दे दी गई थी उनके अनुसार ४ फर्वरी की रात को ये दोनों दूत सिराजुद्दौला से बातचीत करके अपने खेमों में आ गये। इसके बाद सोने के बहाने उन्होंने खेमों की रोशनी बुझा दी और फिर अँधेरें में वहाँ से निकल कर ये लोग अँगरेजों की ओर भाग आये। इसके बाद की घटना के विषय में ज़ान ला लिखता है:—

अगले दिन ५ फर्वरी को सुबह चार या पाँच बजे गहरे कुहरे में कर्नल क्लाइव ने अपनी सेना सहित नवाब के दल पर

हमला किया और ये लोग ठीक उस खेमे पर आकर गिरे जिसमें पहले दिन शाम को अँगरेज वकील नवाब से मुलाकात कर चुके थे। × × × सौभाग्य से नवाब उस समय उस खेमे में मौजूद न था। उसके एक दीवान को अँगरेजों के वकीलों पर पहले ही कुछ सन्देह हो चुका था और उसने नवाब को सलाह दी थी कि आप जरा दूर एक दूसरे खेमें में रात गुजारे।"

सिराजुद्दौला को ऐसे समय में जब कि सुलह की बातचीत जारी थी इस विश्वासघात की कोई आशा न थी। जो लड़ाई इस समय सिराजुद्दौला और अँगरेजों के बीच हुई उसके विषय में रेनाल्ट अपने ४ सितम्बर के एक पत्र में लिखता है :—

"यद्यपि अँगरेजों ने अपनी सारी स्थल-सेना और उसके साथ अपने जहाज के तमाम सैनिक भेज दिये और वे सोये हुये मुसलमानों पर छल द्वारा अचानक जा पड़े तथापि इस लड़ाई से जितने लाभ की उन्हें आशा थी उतना न हो सका। शुरू में वे शत्रु को थोड़ा-सा पीछे हटा पाये किन्तु फिर ज्योंही सिराजुद्दौला ने अपनी सेना का एक भाग जमा कर लिया त्योंही अँगरेजों को स्वयं पीछे हट जाना पड़ा। अँगरेजी सेना बेतरतीबी के साथ पीछे को भागी और यह उनकी बड़ी खुश किस्मती थी कि वे अपने किले की दीवारों के नीचे तोपों के सुरक्षित साये में

पहुँच सके। इस लड़ाई में अंगरेजों के लगभग दो सौ आदमी काम आये।"

निस्सन्देह इस विश्वासघात का अंगरेजों से बदला लेने के योग्य अब भी नवाब के पास काफी सेना थी किन्तु और आगे चलकर रेनाल्ट लिखता है—

"नवाब के मन्त्रियों ने, जो प्रायः सभी अंग्रेजों के तरफदार थे, और केवल सुलह कर लेना चाहते थे, इस अवसर से लाभ उठाकर नवाब को सुलह के लिए मजूबर किया। दूसरी तरफ अपने सेनापतियों की बगावत से विवश होकर × × × नवाब ने देखा कि सुलह के लिए राजी हो जाने के सिवा उसके पास और कोई चारा न था। उसे अत्यन्त कड़ी शर्तें स्वीकार करनी पड़ी।"

अधिकांश लोग कहने लगे कि सिराजुद्दौला ने का सन्धि प्रस्ताव क्यों उपस्थित किया? अंगरेजों के साथ सन्धि की चेष्टा करनी मानों समुद्र की तरंगों को बालू के बाँध से रोकने के समान है। यदि वास्तव में सन्धि हो भी गई तो वह कितने दिन मानी जायगी। सन्धि-पत्र तो सिर्फ अंगरेजों के मुँह की बात है। उनकी बात का क्या भरोसा? हैं तो वही; जिन्होंने उस दिन सङ्कट पड़ने पर सन्धि का प्रस्ताव उठाया था, परन्तु बात पुरानी भी नहीं होने पाई कि लूट-मार के लोभ से हुगली का सर्वनाश कर डाला और सर्वस्व लूट कर भी पेट न भरा।

कितने ही विशाल भवन गिरा दिये गये, कितने ही भूखे कंगालों की झोपड़ियाँ जल कर खाक हो गईं, हुगली का इतिहास-प्रसिद्ध समृद्धिशाली नगर श्मशान की राख में परिणत हो गया। आज शायद फ्रान्सीसियों के साथ युद्ध छिड़ने की आशंका से चिन्तित और व्याकुल हृदय हो अंगरेज चिल्लाते और कातर विलाप करते हुए नवाब के दरबार की शरणागत हुए हैं, परन्तु अवसर मिलते ही वे फिर खून पीने वाले सिंह का रूप धारण कर लेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

यद्यपि ऊपर कही हुई अनेक बातें उठाकर अधिकांश लोगों ने सन्धि के प्रस्ताव में बाधा डालने की बहुतेरी कोशिश की, तथापि सिराजुद्दौला ने इन बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। किसी-किसी ने कहा कि सिराजुद्दौला अंगरेजों से भयभीत होकर सन्धि के लिए व्याकुल हो रहा था, परन्तु उस समय अंगरेज़ लोग अनेक मुसीबतों में फंसे थे, इसीलिए उनसे डरने का कोई कारण न था। उनके पास फौज बहुत थोड़ी थी। उसका भी कुछ भाग बंगाल की खाड़ी की लहरों में पड़ जाने से किधर बह गया, उसका भी किसी को पता नही था। जो अगरेज बंगाल में आये थे, वे भी सब जिन्दा न थे। जो जिन्दा थे उनको बंगाल की जल-वायु ने थोड़े ही दिन में अधमरा बना डाला था। जब क्लाइव सिराजुद्दौला का बढ़ाव रोकने के लिए गया तो उसे स्वयं ही वहाँ से भागना पड़ा था। इतिहास-लेखक अर्मी ने लिखा है कि—

"कर्नल क्लाइव अपने बहुत-से सिपाही और बन्दूकों को लेकर ज्यों ही आगे बढ़ा कि नवाब के सैनिकों ने उस पर तोपों के गोले बरसाये और क्लाइव के अधिकांश सिपाही भाग गये।"

इसीलिए कहना पड़ता है कि उस समय अंगरेजों से भय-भीत होने का कोई कारण न था। ऐसी दशा में प्रश्न यह उठता है कि फिर क्यों सिराजुद्दौला सन्धि के लिए आतुर हो रहा था ?

सिराजुद्दौला ने सोचा कि आज हुगली बर्बाद हुआ, कल किसी अन्य स्थान का सर्वनाश होगा। अंगरेज लोग मराठों के समान उत्पात आरम्भ कर देंगे। कितने समृद्धिशाली प्रदेश श्मशान की भूमि बन जायँगे, कितने ही निरपराध नागरिक हाहाकार करेंगे। रक्त के कीचड़ से यह भारत की भूमि कलंकित होगी और इतना होने पर भी कभी शान्ति सुख के उपभोग का अवसर हाथ न आयगा। अँगरेजों को अपने अधिकार में करने के केवल दो ही उपाय हैं। या तो शत्रुता ठानना या फिर मित्रता के बन्धन में बाँधना। अलीवर्दी के अन्तिम उपदेश के अनुसार शत्रुता करके देख ली। उससे परिणाम विपरीत ही हुआ। अँगरेजों का दमन न हुआ, बल्कि हमेशा के लिए शत्रुता का सूत्रपात हो गया। अतएव मित्रता के बन्धन से उन्हें वशीभूत करने के लिए सिराजुद्दौला आतुर होने लगा। क्लाइव ने स्पष्ट शब्दों में स्वयं ही स्वीकार किया है कि—

"सन्धि के लिए मुझे विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ी, स्वयं सिराजुद्दौला ही ने सबसे पहिले सन्धि का प्रस्ताव उठाकर सारी आशंकाओं को दूर कर दिया।"

इस हालत में नवाब सिराजुद्दौला ने ६ फर्वरी सन् १७५७ ईसवी को अँगरेजों के साथ वह सन्धि स्वीकार की जो 'अली-नगर की सन्धि' के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि की सात शर्ते ये थीं—

१—जितनी रिआयतें दिल्ली के सम्राट ने अँगरेजों के साथ कर रखी थी, वे सब फिर से मंजूर कर ली जावे।

२—बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा भर में जिस किसी माल के साथ अँगरेजों का दस्तखत हो वह सब बिना महसूल आने जाने दिया जावे।

३—कम्पनी की कोठियाँ उसके नौकरों तथा आसामियों का वह तमाम माल असबाब, जो नवाब ने जब्त कर लिया है वापस दे दिया जावे और नवाब के आदमियों ने जो कुछ माल लूट लिया था, उसके बदले में एक नकद रकम दी जावे।

४—अँगरेज जिस तरह उचित समझे उस तरह कलकत्ते की किलेबन्दी कर ले।

५—अँगरेजों को सिक्के ढालने का अधिकार रहे।

६—नवाब और उसके मुख्य पदाधिकारी तथा मन्त्री इस सन्धि पत्र पर दस्तखत करें।

७—अँगरेज कौम और अँगरेज कम्पनी की ओर से ऐडमिरल वाट्सन और कर्नल क्लाइव दोनों इस बात का वादा करें कि जब तक नवाब की ओर से सन्धि का उल्लंघन न किया जायगा तब तक हम नवाब के राज्य में अमन से रहेंगे।

भारत में अँगरेजों और फ्रान्सीसियों के बीच प्रतिस्पर्धा इस समय ज़ोरों पर थी। इसलिए अँगरेजों ने इस बात पर जोर दिया कि सन्धि-पत्र में एक शर्त यह भी रखी जावे कि सिराजुद्दौला निरपराध फ्रान्सीसियों पर हमला करके उन्हें इस देश से बाहर निकाल दे। किन्तु सिराजुद्दौला ने इस शर्त को मानने से साफ इन्कार कर दिया।

इस सन्धि के साथ साथ अँगरेजों ने नवाब से यह इजाजत ले ली कि मुर्शिदाबाद के दर्बार में अँगरेजों का एक एलची रहा करे। यह भी निश्चय हो गया कि जब कभी युद्ध इत्यादि के समय नवाब को जरूरत हो और नवाब आज्ञा दे उस समय अँगरेज अपनी सेना और धन दोनों से उसकी मदद करें।

सन्धि का परिणाम

सन्धि हो गई, परन्तु कपटी अंग्रेजों का मन साफ न हुआ। सिराजुद्दौला ने मित्रता के बन्धन को दृढ़ करने के लिए वाट्सन और ड्रेक के पास यथोचित उपहार भेजा। औरों ने तो ग्रहण कर लिया, परन्तु वाट्सन ने उसे न ग्रहण कर यह कहला भेजा कि "हम इंगलिस्तान के राजा की प्रजा हैं आपका उपहार ग्रहण करके आपकी अधीनता स्वीकार नहीं कर सकते।"

अलीनगर की सन्धि से अपना अपमान समझ कर सभी अंग्रेज क्लाइव पर बिगड़ उठे। जो अँगरेज अपने प्राण बचाने के लिए सबसे पहले कलकत्ते से भाग गये थे, मौका पाकर वे ही बड़े जोर की आवाजों से क्लाइव को कायर कहने लगे। इसी से वाट्सन ने समझ लिया था कि अलीनगर की सन्धि-पत्र बहुत दिन न माना जायगा और शायद इसीलिए नमकहरामी कर उसने सिराजुद्दौला के उपहार को ग्रहण करना स्वीकार न किया था। बाद में हाउस-आफ़-कामन्स में गवाही देते समय क्लाइव ने कहा था—

"उस समय हमारे पास केवल दो हजार फौज थी। यदि फ्रान्सीसी नवाब के पक्ष में मिल जाते तो सहज ही में अंगरेजों

का सर्वनाश हो जाता । बीरता की उत्तेजना में ज्ञान-शून्य होकर मैं सन्धि के प्रस्ताव पर हर्गिज ध्यान न देता। परन्तु केवल कम्पनी का ख्याल करके ही व्यापार की रक्षा के लिए मुझे ऐसे (अपमान-जनक) सन्धि बन्धन से सहमत होना पड़ा था।'

अब अंग्रेजों ने किसी तरह फ्रान्सीसियों को यहाँ से सदा के लिए निकाल देने का निश्चय किया। इस विषय में नवाब की क्या राय है यह जानने के लिए वे व्याकुल होने लगे। सिराजुद्दौला इस बात को सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ,—क्या यही शान्ति प्रियता का परिचय है? अभी एक सप्ताह भी व्यतीत नहीं हुआ, क्या इसी बीच में फिर लड़ाई? उसने नितान्त उदासीन भाव से अँगरेजों को कहला भेजा कि अंगरेजों की तरह फ्रान्सीसी भी मेरी प्रजा और विदेशी सौदागर हैं। मैं अपने आश्रित के सर्वनाश में कदापि सहायता न दूंगा। अंगरेजों के चुप हो जाने पर सिराजुद्दौला ने निश्चिन्त हृदय हो कलकत्ते से प्रस्थान किया।

अग्रद्वीप में आकर सिराजुद्दौला को खबर मिली कि उसकी अनुपस्थित का मौका पाकर अङ्गरेजों ने फिर उद्दण्ठता की मूर्ति धारण कर ली है और चन्द्रनगर लूटने की चेष्टा कर रहें हैं। वाट्स नामक अगरेज जो नवाब के साथ ही मुर्शिदाबाद को जा रहा था, वह इस बात को सरासर मिथ्या प्रमाणित

करने के लिए अनेक प्रकार से प्रयत्न करने लगा। उसके अनुरोध से अमीचन्द ने आकर ब्राह्मण का पैर छूकर कसम खाई कि, "अंगरेज लोग कभी सन्धि नहीं तोड़ेंगे। उनके समान सत्य प्रेमी जाति भारतवर्ष में दूसरी नहीं है। वे जो कुछ कहते हैं, वही करते हैं।"

इस सन्धि-पत्र की स्याही अभी सूखने भी न पाई थी कि अंगरेजों ने जिनका असली उद्देश्य क्रान्ति था, फ़ौरन उसे तोड़ने के उपाय सोचने लगे। दर्बार में एक अंगरेज एलची को रहने की इजाजत देकर सिराजुद्दौला ने एक नई बला अपने सर ले ली। ६ फरवरी को सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर हुए और १२ फरवरी को क्लाइव और उसके साथियो ने सिलेक्ट कमेटी के नाम आपने एक पत्र में यह स्पष्ट राय प्रकट की—

"और नई रियायतें नवाब से माँगी जा सकती हैं × × × और यदि एक ऐसा मनुष्य नवाब के दरबार में एलची नियुक्त करके भेजा जाय जो देश की भाषा और रिवाजों को समझता हो, तो न केवल उसके जरिये ये नई शर्तें ही मन्जूर कराई जा सकती हैं, बल्कि और बहुत-से प्रकट तथा गुप्त कामों में भी, जो पत्र व्यवहार द्वारा इतनी अच्छी तरह नहीं हो सकते, वह मनुष्य बहुत उपयोगी साबित हो सकता है।"

मुर्शिदाबाद के दरबार में साजिशों का जाल पूरना अंगरेजों के लिए अब और अधिक सरल हो गया और इन कामों के लिए

कासिमबाजार की कोठी का अंगरेज गुमाश्ता वाट्स, जिसकी एक बार सिराजुद्दौला जान बख्श चुका था, एलची नियुक्त करके भेजा गया। १६ फरवरी के एक पत्र में वाट्स को कम्पनी की ओर से यह हिदायत दी गई कि तुम ६ फरवरी के सन्धि-पत्र से बाहर दस और नई शर्तें सिराजुद्दौला के सामने पेश करो। इन नई शर्तों में इस प्रकार की शर्तें भी शामिल थीं, मसलन यह कि—यदि नवाब के महकमे चुङ्गी का कोई मुलाजिम अंगरेजों के किसी दस्तखती माल पर किसी तरह का महसूल माँग बैठे तो बिना नवाब से शिकायत किये या सरकारी अदालतों तक पहुँचे अंगरेजों को स्वयं उसे दण्ड देने का अधिकार हो; कम्पनी के जिम्मे या किसी भी अंग्रेज के जिम्मे यदि किसी भारतवासी का कोई कर्ज निकलता हो तो नवाब उसे अपने पास से अदा कर दें, जो अदालतें अंग्रेज अपनी ओर से कायम करें उन्हें भारतवासियों को मुजरिम करार देने और उन्हें फाँसी देने तक का अधिकार मिल जावे; नवाब से भेंट करने के समय अंगरेजों को रिवाज के अनुसार किसी तरह की नजर पेश न करनी पड़े; कलकत्ते के नीचे नदी से एक मील के अन्दर नवाब कभी किसी तरह की किलेबन्दी न करें, इत्यादि।

अंग्रेज खूब जानते थे कि सिराजुद्दौला इस तरह की नई शर्तें जिनका साफ मतलव उससे शासन का अधिकार छीनना था, स्वीकार नहीं कर सकता था। असली मतलब सिद्ध करने के

के लिए सुप्रसिद्ध अमीचन्द अपनी थैलियों सहित वाट्स का सलाहकार नियुक्त होकर उसके साथ मुर्शिदाबाद भेजा गया। वाट्स अपने "मैयायर्स आफ दि रेवोल्यूशन" में स्वीकार करता है कि अपनी साजिशों को सफल बनाने के लिए उसने मुर्शिदाबाद के दर्बार में रिश्वतों का बाजार खूब गरम कर रखा था।

दूसरी ओर अली नगर के सन्धि के विरुद्ध और उसकी खाक परवाह न करते हुए अंगरेजों ने फौरन सबसे पहले फ्रान्सीसियों की चन्द्रनगर वाली कोठी पर हमला करने की ठानी। सिराजुद्दौला अभी कलकत्ते से लौटकर अपनी राजधानी तक पहुँचा भी न था कि रास्ते ही में उसे अंगरेजों के इस इरादे का समाचार मिला। उसने तुरन्त १६ फरवरी को ऐडमिरल वाट्सन के नाम इस मजमून का एक पत्र लिखा—

"अपने देश तथा अपने राज्य के अन्दर लड़ाइयाँ बन्द करने के उद्देश्य से मैंने अंगरेजों के साथ सन्धि स्वीकार की थी, ताकि तिजारत पहले की तरह जारी रह सके × × × इसी तरह आपने भी दस्तखत से और अपनी मोहर लगाकर इस मजमून का इकरारनामा मेरे पास भेज दिया है कि आप मेरे देश की शान्ति भंग न करेंगे, किन्तु अब मालूम होता है कि आप हुगली के पास की फ्रान्सीसी कोठी का मोहासरा करने और फ्रान्सीसियों से लड़ाई शुरू करने की तजवीज कर रहे हैं। यह बात

हर एक कायदे और रिवाज के खिलाफ है कि आप लोग अपने यहाँ के झगड़ों और दुश्मनियों को मेरे देश में लावें ××× अगर आपने फ्रान्सीसी कोठियों का मोहासरा करने की ठान ही ली है तो मेरी अपनी आन और अपने बादशाह की ओर मेरा फर्ज दोनों मुझे मजबूर करेंगे कि मैं अपनी सेना द्वारा फ्रान्सीसियों की मदद करूँ। मालूम होता है कि अभी हाल ही में जो सन्धि मेरे आपके बीच हुई है, उसे आप तोड़ना चाहते हैं; इससे पहले मराठों ने इस राज्य पर हमला किया था और बरसों इस देश में लड़ाइयाँ जारी रखीं। किन्तु जब एक बार झगड़ा तय हो गया और उनके साथ सन्धि हो गई तब उन्होंने कभी सन्धि की शर्तों का उल्लंघन नहीं किया और न वे कभी आयन्दा उन शर्तों से हटेंगे। जो सन्धियाँ निहायत संजीदगी के साथ की जाती हैं, उनकी कतई पर्वाह न करना और उन्हें तोड़ देना गलत और बुरा तरीका है। निस्सन्देह आपका फर्ज है कि आप अपनी ओर की शर्तों पर ठीक-ठीक कायम रहें और आयन्दा मेरे मातहत सूबों में न कभी किसी तरह के झगड़ों, छेड़छाड़ की अपनी तरफ से कोशिश करें और न अपने कारण कोई झगड़ा खड़े होने का मौका दें। दूसरी ओर से जो कुछ मैंने वादा किया है और मंजूर कर लिया है उसे मैं बिलकुल ठीक ठीक पूरा करूँगा।"

यह पत्र लिख कर ही सिराजुद्दौला निश्चिन्त नहीं हुआ। उसने प्रजा की रक्षा के लिए महाराज नन्दकुमार की अधीनता

में हुगली, अग्रद्वीप और पलासी में सेनाएँ नियुक्त कर दीं और स्वय राजधानी में वापस आया।

मुर्शिदाबाद में आकर खबर मिली कि अँगरेजों ने फौज लेकर चन्दर नगर पर आक्रमण करना ही निश्चित किया है। यह खबर पाते ही क्षणमात्र का भी विलम्ब न करके सिराजुद्दौला ने पुनः वाट्सन को एक पत्र लिखा :—

"मैं अनुमान करता हूँ कि जो पत्र कल मैंने आपको लिखा है वह आपको मिला होगा; उसके बाद फ्रान्सीसी वकील ने मुझे इत्तला दी है कि आपके पाँच या छः नये जगी जहाज हुगली में आ गये हैं और औरों के आने की आशा है। फ्रान्सीसी वकील यह भी कहता है कि बारिश खतम होते ही आप मेरे और मेरी प्रजा के साथ फिर से युद्ध प्रारम्भ करने की तजबीजें कर रहें हैं। यह व्यवहार एक सच्चे सिपाही और एक ऐसे आने वाले मनुष्य के चरित्र को, जिसने कभी अपने बचन को नहीं तोड़ा शोभा नहीं देता। यदि आप उस सन्धि की ओर सच्चे हैं जो आपने मेरे साथ की है तो अपने जंगी जहाज नदी से बाहर भेज दीजिए और अपने अहदनामे पर पूरी तरह कायम रहिए। मैं अपनी ओर से सन्धि का पालन करने में न चूकूँगा। इतनी संजीदगी के साथ सन्धि करने के फौरन ही बाद फिर जग शुरू कर देना क्या उचित या ईमानदारी है? मराठे किसी इलहामी किताब से बँधे हुए नहीं हैं, तो भी वे अपनी सन्धियों

बिलकुल ठीक-ठीक पालन करते हैं। इसलिए यह बड़े आश्चर्य की और विश्वास के अयोग्य बात होगी यदि ईसाई लोग जिन्हें इंजील की रोशनी हासिल है, उस सन्धि पर कायम और पक्के न रहें जिसे उन्होंने खुदा और ईसा मसीह के सामने कबूल किया है।'

इस पत्र में जैसा व्यङ्ग भरा है, वैसा ही यह तीव्र भाषा में लिखा गया था। जान पड़ता है कि इसे पढ़कर अंगरेजों की आँखों में शर्म आ गई और वे नवाब-की आज्ञा के बिना फौज लेकर चन्द्रनगर पर आक्रमण करने लिये तैयार नहीं हुए। तब लाचार हो एक नया बहाना बना कर वाट्सन ने सिराजुद्दौला को यह उत्तर लिखा:—

"आपका १६ फरवरी का पत्र आज २१ फरवरी को मिला। पत्र को पढ़ने से मालूम हुआ कि फ्रांसीसियों के विरूद्ध युद्ध यात्रा करने से आप सहमत नहीं हैं। यदि हम यह जान सकते कि इससे आप इतने असन्तुष्ट होंगे तो हम आपके राज्य की शान्ति को भङ्ग करने की चेष्टा न करते। फ्रान्सीसी लोग यदि हमसे सन्धि कर लें तो हम लड़ाई लड़ना नहीं चाहते। परन्तु केवल सन्धि करके ही हम न रहेंगे, सूबेदार की हैसियत से आपको उनका जामिन होना पड़ेगा। यह आपको अच्छी तरह मालूम होगा कि सारे संसार में हमारे समान सत्य-प्रिय लोग किसी भी देश में नहीं हैं। मैं आपसे सत्य की सौगन्ध खाकर कर कह रहा हूँ

कि हम लोग सत्य का उल्लंघन कदापि न करेंगे। प्रभु यीशु खृष्ठ और परमेश्वर को साक्षी देकर हम पुनः कहते हैं कि यदि आप फ्रान्सीसियों के साथ सन्धि करा दें तो हम अपने सत्य को कदापि न तोड़ेंगे। × × × मैं नहीं जानता कि आप पर उस हैरानी को किस तरह जाहिर करूँ जो मुझे यह देखकर हुई कि महज इस हलकी-सी बिना पर कि किसी कमीने शख्श ने आपसे यह कह देने का साहस किया कि मैं शान्ति भङ्ग करने की तजबीज में हूँ आपने सचमुच मुझ पर यह इलजाम लगा दिया। × × × जनाब आपसे मैं यह उम्मीद करता हूँ कि आप उस कमीने शख्श को जिसने मुझ पर झूठा इलजाम लगाने और आपको धोखा देने का साहस किया, मुनासिब दण्ड देंगे। इस बीच मैंने फ्रान्सीसियों से उनके वकील के व्यवहार की शिकायत की है और उन्होंने मुझसे वादा किया है कि हम खुद नवाब को लिखेंगे कि जो इलजाम हमारे वकील ने आप पर लगाया है, वह हमें मालूम है कि झूठा है। आप विश्वास रखिए कि मैं सदा अपना धर्म समझ कर सुलह पर कायम रहूँगा × × × ।'

निस्सन्देह यह पत्र कपट और झूठ दोनों से भरा हुआ है। सिराजुद्दौला की इस सीधी-सी बात का कि, "पाँच या छः नये जङ्गी जहाज हुगली में पहुँच चुके हैं।" पत्र भर में कहीं उत्तर देने की चेष्टा नहीं की गई। वास्तव में अंगरेज इस समय फ्रान्सीसियों और सिराजुद्दौला दोनों के साथ युद्ध करने का

निश्चय कर चुके थे। चुपचाप तैयारियाँ हो रही थीं और केवल मौके का इन्तजार था। सिराजुद्दौला को वे अन्त समय तक धोखे में रखना चाहते थे।

वाट्सन के इस उत्तर को पाकर सिराजुद्दौला ने तुरन्त यह पत्र लिख भेजा :—

"फ्रान्सीसी-युद्ध-सम्बन्धी पत्र पाकर मर्म ज्ञात हुआ। मैं फ्रान्सीसियों को कलह बढ़ाने में कदापि सहायता नहीं दूँगा, इससे निश्चिन्त रहो। बल्कि यदि ख्वाहमख्वाह को वे ही आप से युद्ध ठानने की चेष्टा करेंगे तो मैं अपनी सेना के साथ उसमें बाधा डालूँगा। आपके चन्दरनगर पर आक्रमण करने के इरादे को सुन कर, जो मुझे उचित जान पड़ा, वही मैंने आपको लिख भेजा था। फ्रान्सीसियों को उत्साहित करने के लिए मैंने सेना नहीं भेजी। आपके कलह-विवाद और लड़ाई-झगड़ा मचाने से मेरी प्रजा का सर्वनाश होगा,—यह सोच कर मैंने प्रजा की रक्षा के लिये ही भिन्न-भिन्न स्थानों पर अपनी सेना नियुक्त कर रखी है। यह खबर पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरा पत्र पा कर आपने चन्दरनगर पर आक्रमण करने का विचार त्याग दिया। आपके साथ सन्धि कर लेने के लिए फ्रान्सीसियों को पत्र लिखता हूँ। सन्धि हो जाने पर एक राज कर्मचारी को भेज दूंगा और आपका सन्धि-पत्र अपने दफ्तर मे रखा लूँगा। मित्रता का भाव बनाये रखने के लिए ही मैंने आपके

साथ सन्धि की हैं, इसके विपरीत कदापि कोई बात न होगी।"

इस पत्र को पाकर वाट्सन ने सोचा कि किसी अनजाने कारण से अत्यन्त भयभीत होकर ही सिराजुद्दौला ने ऐसा पत्र अंगरेजों को लिखा है, अतएव इस समय उसे लाचार होकर चन्दरनगर को लूटने की आज्ञा देनी पड़ेगी। वाट्सन का शायद यह ख्याल था कि सिराजुद्दौला के लिए धर्म-अधर्म कोई चीज नहीं हैं। अपने मतलब के लिए उसे अवश्य ही अंगरेजों को राजी करना पड़ेगा। यही ख्याल करके उसने विविध प्रकार से लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँधकर सिराजुद्दौला को एक पत्र लिख भेजा, जिसका आशय यह था :—

"चन्दरनगर के फ्रान्सीसी किले में बहुत बड़ी सेना मौजूद है। उसके रहते हुए हम दूर देश को युद्ध-यात्रा करने में असमर्थ हैं। यदि आप आज्ञा दें तो हम इन फ्रान्सीसियों का सर्वनाश करके सेना सहित आपके साथ पटने चल सकते हैं।"

सिराजुद्दौला घोर सङ्कट में पड़ गया। इस ओर बादशाही फौज जोरों से राजधानी की ओर बढ़ रही थी, उधर अंगरेज फ्रान्सीसियों के सर्वनाश की चेष्टा कर रहे थे! सिराजुद्दौला किस ओर से रक्षा करे? यदि अपने आश्रित फ्रान्सीसियों का

सर्वनाश करा के अंगरेजों की सहायता को मोल लेने पर तैयार होता तो शायद दोनों ही ओर से उसकी रक्षा हो सकती।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है स्पष्ट रूप से उसे समझाने के लिये कहना पड़ता है कि—कहा जाता है, इसी समय के निकट दिल्ली सम्राट के दरबार और सिराजुद्दौला के बीच कुछ अनबन हो गई थी। खबर मिली थी कि सम्राट की सेना बंगाल की ओर बढ़ी चली आ रही है। सिराजुद्दौला ने उसके मुकाबले के लिए पटने की ओर बढ़ने का निश्चय किया था।

६ फरवरी की सन्धि में यह तय हो गया था कि इस तरह की कोई आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेज धन और सेना दोनों से नवाब की सहायता करेंगे। सिराजुद्दौला ने वाट्सन को सेना भेजने के लिये लिखा और अन्त में यह भी लिख दिया कि जब तक अंग्रेजी सेना मेरे पास रहेगी तब तक मैं एक लाख रुपये मासिक उसके खर्च के लिये अदा करूँगा। सम्भव है, इस प्रकार सेना माँगने में सिराजुद्दौला का एक उद्देश्य यह भी रहा हो कि इस बहाने अंग्रेज कोई और शरारत करने से रुके रहेंगे। इसी बीच सिराजुद्दौला ने फ्रान्सीसियों को भी एक पत्र लिखा कि आप लोग अंग्रेजों के साथ सुलह करके मेरे राज्य में शान्ति और अमन से रहें।

किन्तु अंगरेजों से सेना की सहायता माँगना सिराजुद्दौला के लिये एक घातक भूल साबित हुई। वाट्सन ने सिराजुद्दौला

के पत्र का अत्यन्त गोलमोल जवाब दिया। उधर इस पत्र ने अंग्रेजी सेना को कलकत्ते से बढ़ने का पूरा मौका दे दिया। सेना कलकत्ते से बढ़ी किन्तु सिराजुद्दौला की सहायता के लिये नहीं, वरन् पहले चन्द्रनगर की फ्रान्सीसी कोठी को विजय करने के लिये और फिर सिराजुद्दौला पर हमला करने के गुप्तउद्देश्य से।

चन्द्रनगर पर अंगरेजों का अधिकार

अंगरेजों का सब से पहला उद्देश्य इस समय बंगाल के अन्दर अपने यूरोपियन प्रति स्पर्धी फ्रान्सीसियों के प्रभाव को समाप्त करना था। क्लाइव और वाट्सन दोनों इरादा कर चुके थे कि सिराजुद्दौला के साथ लड़ने से पहले कोई न कोई बहाना निकालकर फ्रान्सीसियों की चन्द्रनगर वाली कोठी पर हमला करके उस पर कब्जा कर लिया जाय। किन्तु ऐसा करना ६ फरवरी वाली सन्धि का उल्लंघन करना होता। सिराजुद्दौला भी इस विषय में उन्हें आगाह कर चुका था।

इसके अतिरिक्त फ्रान्सीसी भी अंगरेजों से लड़ना न चाहते थे। उन्होंने सिराजुद्दौला का पत्र पाते ही सिराजुद्दौला की इच्छा के अनुसार आपसी समझौते के लिए अपने वकील अंगरेजों के पास भेजे। यहाँ तक कि समझौते की शर्तें भी लिखी गई जो दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लीं। नवाब भी समझौते के पालन की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेने के लिए राजी हो गया। केवल समझौते के कागज पर वाट्सन के हस्ताक्षर होना बाकी रह गया था।

किन्तु अंगरेजों का असली मतलब इस तरह के समझौते से

सिद्ध न हो सकता था। क्लाइव और वाट्सन दोनों ने फ्रान्सीसियों पर हमला करने का निश्चय कर लिया था, और ऐन मौके पर वाट्सन ने समझौते के कागज पर दस्तखत करने से इन्कार कर दिया। चन्द्रनगर पर हमाला क्लाइव और वाटसन दोनों करना चाहते थे किन्तु हमले के ढंग के विषय में इन दोनों में एक खास मतभेद हो गया। वाट्सन की राय थी कि बिना सिराजुद्दौला के पूछे अथवा बिना उसे सूचना दिये ही चन्दरनगर पर हमला कर दिया जावे किन्तु क्लाइव इसके विरुद्ध था। क्लाइव चाहता था कि पहले रिश्वतें देकर अथवा जालसाजी करके किसी प्रकार सिराजुद्दौला की ओर से इस आशय का एक पत्र जिससे मालूम हो कि सिराजुद्दौला हमारे चन्दरनगर पर हमला करने में सहमत हैं, अपने पास रख लिया जावे और फिर चन्दरनगर पर हमला किया जावे। इस सम्बन्ध में क्लाइव ने ४ मार्च सन् १७५७ को सिलेक्ट कमेटी के मेम्बरों के नाम जो पत्र लिखा, उससे इस मामले के स्वरूप का खासा पता चल सकता है। क्लाइव ने लिखा—

"महाशय ! जरा सोचिए कि हमारी इन हाल की कार्रवाइयों के विषय में दुनियाँ क्या राय कायम करेगी। चन्द्रर नगर के (फ्रान्सीसी) गवर्नर और उसकी कौंसिल की ओर से हमारे पास इस मजमून का पत्र आया कि हम गङ्गा-प्रान्त में आपके साथ सुलह से रहने के लिए राजी हैं। हमने उसके जवाब में यह इच्छा प्रकट की कि आप अपने वकील भेजें और उन्हें

लिख दिया कि हम खुशी से आपके साथ समझौता करने को तैयार हैं। तो क्या हमने इस उत्तर द्वारा एक प्रकार से सुलह स्वीकार नहीं कर ली। इसके अतिरिक्त क्या फ्रान्सीसी वकीलों के आने के बाद हमने सुलह की इस प्रकार की शर्तें तैयार नहीं की हैं जो दोनों पक्षों के लिये सन्तोषजनक हैं और क्या हम इसे मंजूर नहीं कर चुके हैं कि शर्त पर हम दोनों पक्षों के दस्तखत हों, दोनों की मोहरें लगें और दोनों उसके पालन की प्रतिज्ञा करें ? नवाब क्या सोचेगा ? जब हम अपनी ओर से नवाब से वादे कर चुके हैं और वह इस सन्धि के पालन की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेने की रजामन्दी तक प्रकट कर चुका है तब इसके बाद निस्सन्देह नवाब और सारी दुनिया यह समझेगी कि हम हलकी और ओछी तबियत के आदमी हैं, अथवा यह कि हमारा कोई सिद्धान्त नहीं है।×××"

वास्तव में क्लाइव वाट्सन की अपेक्षा कहीं ज्यादा पक्का धूर्त था। वह चुपचाप वाट्स के द्वारा-जो उस समय मुर्शिदाबाद के दरबार में एलची था, किसी तरह जालसाजी कराकर नवाब की अनुमति का पर्वाना प्राप्त कर लेने की कोशिश में लगा हुआ था।

इस विषय में किसी को सन्देह नहीं था कि सिराजुद्दौला फ्रान्सीसियों के सर्वनाश में अंगरेजों की सहायता कदापि नहीं करेगा। इसलिये सभी समझ गये थे कि फ्रान्सीसियों के साथ

युद्ध-कलह मचाने पर फल यह होगा कि एक प्रकार से सिराजुद्दौला के साथ ही शत्रुता ठन जायगी। यही सोचकर सब ने कहा कि, "सन्धि का तोड़ना घोर पाप है, नवाब के निषेध का उल्लङ्घन करके युद्ध नहीं करना चाहिये।" परन्तु इसी बीच में मद्रास और बम्बई से फौज की कई पलटनों के आने की सूचना पाते ही अङ्गरेजों ने पिछले सभी विचारों को त्याग दिया और सभा का अधिवेशन करके अपने कर्त्तव्य का निश्चय करने लगे।

इस मंत्रणा-सभा में क्लाइव ने प्रधान-मंत्री का आसन ग्रहण किया। गवर्नर ड्रेक, मेजर किलप्याट्रिक और वेचर आदि अङ्गरेज सदस्य हुए। क्वाइव का भाषण समाप्त होने पर सब ने समझ लिया कि अब नवाब से युद्ध की आज्ञा मिलने की आशा नहीं है, बल्कि यही सम्भव है कि वह अपनी सेना से फ्राँसीसियों की सहायता करे। अतएव एकाएक चन्दरनगर पर आक्रमण करने से, नवाब के साथ अलीनगर की जो सन्धि हुई थी वह भङ्ग हो जाती है और नवाब से फिर शत्रुता का सूत्र-पात हो जायगा। इसलिये मेजर किलप्याट्रिक और नेचर ने कहा, "ऐसी दशा में फ्रान्सीसियों से युद्ध ठानना अनुचित है।"

उसी समय क्लाइव ने उनकी बात का विरोध करते हुए कहा, "किसकी सन्धि? यही तो चन्दरनगर पर आक्रमण करने

का अच्छा मौका है।" इस पर सब लोग ड्रेक के मुँह की ओर देखने लगे। ड्रेक ने भी इधर-उधर से बहुत कुछ कहा, परन्तु उस समय के उस प्रश्न का वह भी कुछ निर्णय न कर सका। उसकी राय किसी में गिनी ही न गई। दो आदमी सन्धि से पक्ष में और एक युद्ध के पक्ष में, ऐसी दशा में बहुमत से सन्धि करना ही निश्चित होता; परन्तु इतने ही में मेजर किलप्याट्रिक सहसा क्लाइव से पूछ बैठा—"अच्छा, इस समय हमारी जो सैनिक शक्ति संगठित है, क्या उससे नवाब और फ्रान्सीसियों की फौजों को हरा सकना सम्भव नहीं है?" क्लाइव ने उत्तर दिया, "निश्चय सम्भव है।" इतना सुनते ही किलप्याट्रिक अपनी राय बदल कर कहने लगा, "अच्छा तो हम भी सन्धि नहीं चाहते।" फिर वह अधिवेशन समाप्त कर दिया गया। बाहर आकर क्लाइव ने फ्रान्सीसी वकील से कह दिया कि, "सन्धि नहीं, अब केवल युद्ध ही होगा।"

फ्रान्सीसियों ने इसके सम्बन्ध में किसी तरह की आवाज नहीं उठाई कि एकाएक अँगरेजों की राय में क्यों परिवर्तन हो गया। अँगरेज उनके पुराने मित्र थे। इसलिए वे सहज ही में समझ गये कि नई पलटन के आ जाने से ही अँगरेजों की राय एकाएक बदल गई। चन्द्रनगर को खबर भेज दी गई कि अब "सन्धि की आशा व्यर्थ है, युद्ध ही होगा।"

अंगरेजों की कौंसिल ने युद्ध का निश्चय कर किया, परन्तु

वाट्सन इससे सहमत नहीं हुआ। क्लाइव के होश ठिकाने न रहे। उसने सुना कि वाट्सन नवाब की आज्ञा के बिना कदापि युद्ध की घोषणा न करेगा। जहाज सब वाट्सन के अधिकार में थे और बिना जहाजों के चन्द्रनगर पर आक्रमण करना ही व्यर्थ था। अतएव सब लोग वाट्सन को समझाने लगे। परन्तु वाट्सन का संकल्प अटल था। सभी को निश्चय हो चुका था कि नवाब की आज्ञा मिलनी असम्भव है, तथापि वाट्सन के अनुरोध से नवाब की आज्ञा के लिए ठहरना पड़ा।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि वाट्सन और क्लाइव दोनों ही परले सिरे के धूर्त थे। जब क्लाइव चाहता कि सिराजुद्दौला की आज्ञा के बिना चन्द्रनगर पर आक्रमण नहीं करना चाहिए तब वाट्सन उसका विरोध करता और जब वाट्सन चाहता कि चन्द्रनगर पर आक्रमण करने से पहले सिराजुद्दौला की आज्ञा ले लेनी चाहिए तब क्लाइव उसका विरोधी बन जाता। किन्तु अन्त में वाट्सन के सामने क्लाइव को दबना पड़ता। वाट्सन का ख्याल था कि सिराजुद्दौला दिल्ली के डर से बुरी तरह डरा हुआ है। अतएव इस समय जरा डाट-डपट के साथ पत्र लिखने पर अवश्य: आज्ञा मिल जायगी। इसी उद्देश्य से उसने नवाब के पास नीचे लिखा पत्र भेजा :—

"अब साफ-साफ कहने का समय आ गया है। शान्ति की

रक्षा करना यदि आपको अभीष्ट है, असहाय प्रजा-वर्ग के जान-माल की रक्षा करना यदि आपका राज-धर्म है, तो आज से दस दिन के भीतर हमारा सब पावना रुपया पाई-पाई चुका दीजिये, नहीं तो अनेक प्रकार की दुर्घटनाएँ उपस्थित होंगी। हम केवल सरल व्यवहार करते आ रहे हैं और इस समय भी सरल व्यवहार करने के लिये ही यह कह रहे हैं कि हमारी बाकी सब फौज शीघ्र ही कलकत्ते में पहुँचेगी और जरूरत पड़ने पर और भी जहाज फौज लेकर आयेंगे। इन सेनाओं की सहायता से हम इस देश में ऐसी भयङ्कर आग लगा देंगे कि गङ्गा का सारा जल सुखा कर भी आप उसे न बुझा सकेंगे। बस, इतना ही लिख कर हम बिदा होते हैं, परन्तु इस बात को अच्छी तरह याद रखियेगा कि जिस व्यक्ति ने जीवन में आज तक किसी के साथ भी अपनी बात के विरुद्ध आचरण नहीं किया, उसी ने अपने हाथ से यह पत्र लिखा है।"

सिराजुद्दौला ने इस पत्र के गूढ़ मर्म को समझ कर यह लिख भेजा :—

"आपसे मैंने सेना की जो सहायता माँगी थी, उसके सम्बन्ध में क्या हुआ ? सन्धि-पत्र में स्वीकार किया हुआ रुपया मैं शीघ्र ही भेजे देता हूँ। होली के त्योहार में राज-कर्मचारी-गण उत्सव मना रहे थे, केवल इसी कारण देर हुई।

सन्धि-भङ्ग करने का मुझे अभ्यास नहीं है। जो कुछ मैंने स्वीकार किया है, उसके लिये मैं व्यर्थ की बातें बना कर टालमटोल न करूँगा। यदि आपके ऊपर कोई आक्रमण करे तो उस समय मैं आपकी मदद करूँगा। मैंने अब तक फ्रान्सीसियों को एक कौड़ी की भी सहायता नहीं भेजी है। केवल अपनी प्रजा की रक्षा के लिये ही हुगली के फौजदार नन्दकुमार के पास थोड़ी-सी सेना भेज दी है। इस देश की प्राचीन प्रथा का उल्लङ्घन करके मेरे राज्य में किसी तरह की युद्ध-कलह मत मचाइये, यही मेरा एकमात्र अनुरोध है।"

यह पत्र पाकर सब ने समझ लिया कि सिराजुद्दौला किसी तरह लड़ाई की इजाजत नहीं देगा। जब इस तरह काम न चला तब वाट्सन ने चालाकी से काम निकाल लेने के लिये वाट्स को लिखा। नवाब के मन्त्रियों को रिश्वत देकर वाट्स ने १० मार्च सन् १७५७ को नवाब की ओर से वाट्सन के नाम एक पत्र भिजवाया। उस पत्र का आशय यह था:—

"मेरा पत्र पाकर आपने मुझे जिस प्रकार के उत्तर से धन्य किया है, वह मुझे मिला। आपने लिखा है कि "हमारा सारा सन्देह दूर हो गया है और आपके पत्र को पाकर हमने चन्दर-नगर पर आक्रमण करने का विचार छोड़ दिया है। फ्रान्सीसियों

के साथ लिखा-पढ़ी भी हो गई है। परन्तु सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने के समय फ्रान्सीसी लोगों ने कहा कि हमारे सेना-नायक इस सन्धि की शर्तों का पालन करेंगे या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं। यदि एक फ्रान्सीसी जिसने हस्ताक्षर किये हैं, दूसरा आकर उसका खन्डन करे तो उन पर विश्वास कैसे किया जा सकता है?' अस्तु, यह कुछ भी हो, अपने राज्य में युद्ध-कलह मचवाने के लिए मैं कदापि सहमत नहीं। उसका कारण यह है कि फ्रान्सीसी मेरी प्रजा हैं और आपके भय से मेरे शरणागत हुए हैं। इसीलिए मैंने सन्धि करने के लिए कहा था। मेरा यह अभिप्राय नहीं था कि मैं उन पर विशेष कृपा करूँ या उन्हें युद्ध में सहायता दूं। आप समझदार और उदार हैं, यदि आपका शत्रु सरल हृदय से आपकी शरण में आना चाहे तो आपको उसकी जान बख्श दें, किन्तु आपको उसके इरादों की पवित्रता के विषय में पूरी तसल्ली होनी चाहिए, यदि ऐसा न हो तो जो कुछ आप ठीक समझें करें।"

इस पत्र की अन्तिम बातें सिराजुद्दौला की लिखी हुई हैं या नहीं, इस विषय में मतभेद पाया जाता है। उसी समय के एक अंगरेज ने लिखा है कि—"पत्र के उक्त रूप में लिखे जाने के लिए मुंशीखाने में समय के अनुसार धन व्यय करने में कोई त्रुटि नहीं हुई।"

मूल पत्र फारसी भाषा में लिखा गया था अब कुछ

पता नहीं चलता । वाट्सन ने मुंशीखाने में में जोड़-तोड़ लगाकर जैसा कुछ तर्जुमा था, वही आज कल एक मात्र इतिहास की सामग्री है। इस पत्र में कहीं भी नवाब की अनुमति का नाम निशान नहीं है। परन्तु वाट्सन ने इसी को नवाब का अनुपति-पत्र प्रसिद्ध कर दिया । वाट्सन भी लड़ाई के लिए तैयार ही था, परन्तु बिना नवाब की रजामन्दी के युद्ध ठान देने से भविष्य में डाट-फटकार सहनी पड़ती, शायद इसीलिए वह पहले से सफाई एकत्र कर रखने की कोशिश कर रहा था और वह सफाई हाथ में आ जाते ही वाट्सन का भी सारा सन्देह जाता रहा ।

वाट्सन का साथी स्क्रैफ्टन साफ लिखता है कि—"उपर्युक्त पत्र लिखाने के लिए अगरेजों ने नवाब के मन्त्रियों को रिश्वतें देने में काफी रुपया खर्च किया।" दूसरा इतिहास-लेखक जीन लॉ लिखता है कि:—

"वाट्स ने मुर्शिदाबाद में रिश्वतों और झूठे वादों का बाजार इतना गर्म कर रखा था नवाब की सेना में सब मुख्य-मुख्य अफसर मीर जाफर अली खॉ, खुदादाद खॉ लट्ठी, और कई और××× पुराने दर्बार के सब वजीर××× करीब-करीब सब मन्त्री, दर्बार के मुहर्रिर, यहाँ तक किहरम-सरा के खोजे तक अंगरेजों की ओर थे मिल गये।×××

पूर्वोक्त पत्र के सम्बन्ध में जीन ला को विश्वास है कि वाट्स

ने नवाब के मन्त्री को अवश्य रिश्वत दी। वह यह भी लिखता है कि:—

"नवाब जिन पत्रों को अपने हुकुम से लिखवाता था उन्हें कभी पढ़ता न था; इसके अलावा मुसलमान (शासक) कभी अपने हाथ से दस्तखत नहीं करते । जब लिफाफा बन्द करके अच्छी तरह कस दिया जाता है तब मन्त्री नवाब से उसकी मोहर माँगता है और नवाब के सामने लिफाफे पर मोहर लगाता है। कभी-कभी एक नकली मोहर भी होती है।'

इन सब कार्रवाइयों में मुर्शिदाबाद के दो जैन जगत सेठों का प्रभाव और सुप्रसिद्ध अमीचन्द का धन इन दोनों से अंग्रेजों को खूब मदद मिल रही थी।

७ फरवरी को चन्द्रनगर का सन्धि-पत्र लिखा गया था, और सात ही मार्च को अंग्रेजी सेना ने चन्द्रनगर के सामने आकर डेरा डाला। सिराजुद्दौला के सामने बाइबिल चूमकर ईश्वर और यीशु ख्रीष्ट के पवित्र नाम से वाट्सन और क्लाइव ने जिस सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे, उसकी अल्प आयु इस प्रकार कुछ घड़ियों में ही विलीन हो गई।

३ मार्च को क्लाइव ने सिराजुद्दौला को सहायता पहुँचाने के बहाने अपनी सेना की बाग सम्हाली। ७ मार्च को उसने सिराजुद्दौला को लिख भेजा कि मैं सहायता के लिए आता हूँ

अंगरेजों की तैयारी पूरी थी। इसी बीच बम्बई से कुछ सेना क्लाइव की सहायता के लिए पहुँच चुकी थी। क्लाइव चन्दर नगर की ओर बढ़ा। उसे इस प्रकार सेना सहित अपनी ओर बढ़ते हुए देखकर फ्रान्सीसियों ने इसका कारण पूछा। कपटी क्लाइव ने ६ मार्च को फ्रान्सीसियों को पत्र द्वारा विश्वास दिलाया कि—"आपकी कौम से लड़ाई करने का मेरा इस समय बिलकुल इरादा नहीं है। १० मार्च को सिराजुद्दौला का वह जाली पत्र मुर्शिदाबाद से चला, जिसमें कहा जाता है कि नवाब ने अंगरेजों को चन्दरनगर का मोहासरा करने की इजाजत देदी। ११ मार्च को एक दूसरे पत्र द्वारा क्लाइव ने फ्रान्सीसियों पर यह एक नया इलजाम लगाया कि आप लोगों ने अंगरेजी सेना से भागे हुए बागियों को अपने यहाँ छिपा रखा है। युद्ध के लिए बस यही बहाना काफी था। १२ मार्च को चन्द्रनगर से दो मील की दूरी पर क्लाइव की सेना आ पहुँची। इसी समय वाट्सन भी अपनी सेना सहित पहुँच गया।

परन्तु चन्दरनगर के सामने आते ही उसका बाहु-बल एका-एक ढीला पड़ गया। फ्रान्सीसियों ने वीरता पूर्वक किले की रक्षा करने का संकल्प किया। पास ही नन्दकुमार की सेना चाक-चौबन्द खड़ी थी। अतएव क्लाइव भयभीय हुआ परन्तु विपत्ति पड़ने पर उसी समय उपाय सोच लेने में वह पूरा प्रवीण था। उसने साम, दाम, दण्ड और भेद इन सभी नीतियों का यथोचित

प्रयोग करने में कोई कसर न की। उसने सोचा कि नन्दकुमार को पराजित करने में देर ही कितनी लगेगी, परन्तु पराजित करने की अपेक्षा क्या कोई सरल उपाय नहीं है? उसी सरल उपाय का पता लगाने के लिये क्लाइव ने अमीचन्द को नन्दकुमार के डेरे में भेजा। काम बन गया। अमीचन्द सहज ही में सफल हो गया। नन्दकुमार अपनी सेना लेकर डङ्का बजाते हुए वहाँ से दूर चला गया। जिन प्रतिभाशाली इतिहास-लेखकों ने क्लाइव की गौरव-गरिमा को बढ़ाने के लिये ही लेखनी उठाई, वे भी स्पष्ट शब्दों में लिखे गये हैं कि, "इस युद्ध में केवल रिश्वत के ही जोर से नन्दकुमार परास्त हुआ था।" थरंटन लिखता है :—

"हुगली के फौजदार नन्दकुमार की अधीनता में नवाब के कुछ सिपाही चन्द्रनगर की सहायता के लिये पहले ही से वहाँ ठहरे हुए थे। परन्तु अमीचन्द ने नन्दकुमार को अङ्गरेजों के अनुकूल बने रहने के लिये कुछ रुपये दे दिये और जब वे पहुँचे तब सिराजुद्दौला के सिपाही चन्द्रनगर से हटा लिये गये।"

फ्रान्सीसी सिपाही अङ्गरेजों के प्रचन्ड विक्रम के सामने बहुत देर तक न ठहर सके। प्राणपण से किले की रक्षा करते-करते दल के दल धराशयी हो गये। जब उनका साहस बिलकुल टूटने लगा तब उन्होंने धीरे-धीरे किला छोड़ दिया।

अंगरेजी फौज ने २३ मार्च को तीसरे पहर के समय बड़े हर्ष के साथ फ्रान्सीसी किले के ऊपर अपना झण्डा फहराया। इतिहास में इसी का नाम है—"चन्द्रनगर का अलौकिक महायुद्ध।"

चन्द्रनगर की इस सरल विजय में भी युद्ध कौशल अथवा वीरता ने अँग्रेजों का उतना साथ नहीं दिया जितना उनकी कूट-नीति ने। दो बड़े विश्वासघातकों के नाम इस मोहासरे के इतिहास में मिलते हैं। पहला एक फ्रान्सीसी अफसर लेफ्टेनेण्ट दी तेरानो, जिसने रुपये लेकर नदी की ओर का रास्ता अंग्रेजों के लिए खोल दिया, और दूसरा हुगली का हिन्दुस्तानी फौजदार दीवान महाराजा नन्दकुमार, जिसे सिराजुद्दौला ने समाचार पाते ही एक बहुत बड़ी सेना सहित फ्रान्सीसियों की सहायता तथा चन्द्रनगर की भारतीय प्रजा की रक्षा के लिए पहले से चन्द्र-नगर भेज रखा था, किन्तु जिसे ऐन मौके पर अमीचन्द के धन ने अँगरेजों की ओर खींच लिया। फ्रान्सीसी विश्वास-घातक के विषय में व्लैकमैन नामक एक यूरोपियन लेखक लिखता है—

"तेरानो को, जो कि इस विश्वासघातक के कारण बदनाम और 'रू-स्याह' हो गया था; अपनी कृतघ्नता के बदले में अँग्रेजों से बहुत बड़ी रकम प्राप्त हुई। उसने इस धन का एक भाग अपने बूढ़े बलहीन पिता के पास भेजा, किन्तु पिता ने जब

अपने पुत्र के इस लज्जाजनक व्यवहार का हाल सुना तब उसने धन वापस कर दिया। इस पर तेरानो को बड़ी गैरत आई। शर्म ने 'उसका पल्ला पकड़ लिया' उसने अपने तईं मकान के अन्दर बन्द कर लिया; थोड़े ही दिनों के बाद उसका शरीर मकान के दरवाजे पर एक तौलिये से लटका हुआ मिला। जाहिर था कि उसने आत्महत्या कर ली।"

दूसरे अर्थात् भारतीय विश्वासघातक के विषय में स्क्रैफ्टन और थरनटन दोनों ने अपने ग्रंथों में साफ लिखा है कि:— अङ्गरेजों ने अमीचन्द के मार्फत नन्दकुमार को रिश्वत दी और अङ्गरेजी सेना के पहुँचने पर फ्रान्सीसी तथा भारतीय प्रजा दोनों को असहाय अवस्था में छोड़ कर नन्दकुमार अपनी तमाम सेना सहित चन्दरनगर से हट गया।"

क्लाइव ने किस प्रकार चन्दरनगर को विजय कर लिया था इसके सम्बन्ध में स्वयं उसने १० अप्रैल सन् १७५७ को कुछ चुने हुए सदस्यों की सभा में कहा था:—

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हम सब कर्मचारियों को उस बुद्धिमान और समृद्धिशाली सौदागर अमीचन्द का चिरकृतज्ञ रहना चाहिये, जिसकी बदौलत हमें दीवान नन्दकुमार की सहायता और सहानुभूति प्राप्त हुई। जिस समय हम लोगों ने चन्दरनगर पर आक्रमण किया था, उस समय नवाब की वह सेना जो हुगली के तोपखाने से सम्बन्ध रखती थी,

नन्दकुमार की अधीनता में चन्द्रनगर के पास ही डेरा डाले पड़ी थी। यदि यह फौज वहाँ से न हट जाती तो हम लोगों का चन्द्रनगर पर विजय पाना सर्वथा असम्भव था।"

अतएव खबर पाने पर भी सिराजुद्दौला फ्रान्सीसियों की रक्षा न कर सका यही उसके सर्वनाश का कारण हुआ। एक अङ्गरेज ने कहा है कि—

"दिल्ली सम्राट अहमदशाह अबदाली के भय से भयभीत होने के कारण उसे इधर को निगाह फेरने का मौका ही नहीं मिला और हमारे सहायक मित्र मीर जाफर, जगत सेठ और रायदुर्लभ इत्यादि अमीर-उमरावों ने अनेक प्रकार की चतुराइयों से सिराजुद्दौला के हृदय में अहमदशाह अबदाली के आक्रमण का भय बनाये रखते हुए उसे कर्त्तव्य-भ्रष्ट करने में कोई कोशिश उठा न रखी।"

यह ठीक है कि कुछ दुष्ट लोगों ने मिलकर सिराजुद्दौला को तरह-तरह के भय-प्रदर्शन से अत्यन्त सशङ्कित कर डाला था, तथा सशङ्कित होने पर भी वह अपता कर्त्तव्य नहीं भूला और फ्रान्सीसियों की रक्षा के लिये उसने पहले ही से हुगली में सेना जुटा दी थी। वह जानता था कि जहाँ तक बने, प्रबल प्रयत्न करके फ्रान्सीसियों की रक्षा करना ही मेरे लिये हितकर है और यह जानकर ही उसने अङ्गरेजों के निश्चय में

बाधा डालने के लिये भरसक चेष्टा की थी। परन्तु कौन जानता था कि नमकख्वार होकर भी महराज नन्दकुमार सिराजुद्दौला की आज्ञा का उल्लंघन करेगा ?

चन्द्र नगर की विजय अंगरेजों के लिए अत्यन्त उपयोगी साबित हुई। इससे बंगाल के अन्दर फ्रान्सीसियों का बल टूट गया और नवाब से अन्तिम निबटारा करने के लिये अंगरेजों के सामने का मार्ग अधिक साफ हो गया।

फ्रान्सीसियों की दुर्दशा

फ्रान्सीसियों की दुर्दशा ॰र सीमा तक पहुँच गई। वे अंग्रेजों के सामने आत्म-समर्पण कर भिखारियों की तरह नदी के किनारे आकर खड़े हुए किन्तु वहाँ भी वे न ठहर सके। अंग्रेज लोग किले पर अधिकार जमाकर ही सन्तुष्ट नहीं हुए बल्कि सम्पत्ति और परिवार के सहित सब तरह से फ्रान्सीसियों का सर्वनाश करने के लिए उन्होंने भागने वालों का पीछा किया। गंगा में बड़ी तेजी के साथ अंगरेजों की नौकाएँ छूटने लगी। फ्रान्सीसी लोग असहाय होकर घने जगलों को पार करते हुए प्राण लेकर मुर्शिदाबाद पहुँचे। दुश्मन की सेना का पता न पाकर अंगरेजों ने निरपराध किसानों के हरे-भरे खेतों को रौंदते, गाँवों और नगरों का सर्वनाश करते-करते वर्धमान और नदिया के लम्बे-चौड़े भू-भाग को तहस-नहस कर डाला।

घोर संकट में पड़े हुए फ्रान्सीसियों के उतरे हुए चेहरों की ओर देखकर मुर्शिदाबाद के निवासियों से न रहा गया। सिराजुद्दौला देश का शासक था, अतएव फ्रान्सीसी लोग उसी

की शरण में जा पहुँचे। सिराजुद्दौला भी उनके कातर विलापों की उपेक्षा न कर सका। खाने-पीने और कपड़े लत्ते की उचित व्यवस्था करके वह उन्हें कासिम बाजार में स्थान देने के लिए वाध्य हुआ।

विजय के उल्लास में उन्मत्त अंग्रेज सौदागर सिराजुद्दौला के इस न्यायोचित कर्तव्य-पालन पर बहुत बिगड़े और गरज कर कहने लगे कि यह स्पर्द्धा! इतना दुस्साहस! हमने सम्पत्ति और परिवार के साथ जिनका सर्वनाश करने के लिये चन्द्रनगर पर अधिकार जमाया क्या सिराजुद्दौला ने उन्हीं फ्रान्सीसियों को स्नेह की गोद में आश्रय प्रदान किया? सिराजुद्दौला इस देश का राजा है, शरण में आये हुए असहाय लोगों की रक्षा करना उसका परम पवित्र राजधर्म है, इस बात पर तनिक भी विचार न करके सभी अंग्रेज सिराजुद्दौला के विरुद्ध हथियार उठाने को तुरन्त तैयार हो गये।

अंगरेजों का ख्याल था कि यद्यपि चन्द्रनगर की अल्प-संख्यक फ्रान्सीसी सेना का समूल सर्वनाश कर डालना बिलकुल मामूली-सी बात है, तथापि प्रतिहिंसा-परायण फ्रान्सीसी जाति जिस समय बदला लेने के लिए आगे कदम बढ़ायेगी उस समय उसका सामना करना इतना सहज न होगा। इसलिए वे सिराजुद्दौला की सहायता से फ्रान्सीसियों को निर्मूल कर देने के लिए उतावले हो रहे थे। यदि सिराजुद्दौला सहायता देता,

तो अंगरेजों और हिन्दुस्तानियों की सम्मिलित शक्ति के सामने फ्रान्सीसियों को अवश्य नीचा देखना पड़ता। परन्तु जब सिराजुद्दौला ने फ्रान्सीसियों को आश्रय प्रदान किया तब अंगरेजों की आशा पर पानी फिर गया। ऐसी दशा में अंगरेज लोग तरह-तरह के उपायों से सिराजुद्दौला के विचार-परिवर्तन की चेष्टाएँ करने लगे।

अंगरेज और फ्रान्सीसी परस्पर सदा के बैरी थे और दोनों ही भारत में एकाधिपत्य व्यापार का विस्तार करने के लिए लालायित थे। सिराजुद्दौला जानता था कि अगरेजों को फ्रान्सी-सियों के सर्वनाश का मौका देना मानों इनके हाथ अपने को बेच देना है। इसीलिए वह प्रबल उत्साह के साथ फ्रान्सीसियों की रक्षा करता था। अँगरेज भी इसे जानते थे और इसीलिए उनकी व्याकुलता बढ़ने लगी।

चन्द्रनगर को तहस-नहस करने के बाद सेनापति वाट्सन ने सिराजुद्दौला को अपने पक्ष में करने के लिए एक पत्र लिखा:—

"मैं जिस गुरुतर कार्य के लिए यहाँ (चन्द्रनगर) आया हूँ, उसी में व्यस्त रहने के कारण आपके कई पत्र पाकर भी यथा समय उत्तर न दे सका। इसीलिये इसमें मेरा कोई दोष न समझिए। अपने सौभाग्य के बल और आपके सौहार्द की सहायता एवं भगवान की मङ्गलमयी इच्छा से केवल दो ही

घण्टे की लड़ाई में मार्च की २३ तारीख को चन्द्रनगर पर अधिकार कर लिया है। अधिकांश फ्रान्सीसी कैद हो गये हैं, कुछ जो भागे हैं, उनको पकड़ लाने के लिए भी हथियारबन्द सिपाही नियुक्त कर दिये गये हैं। अब वे कहीं किसी तरह का उपद्रव न करेंगे, अतएव आप इसके लिए असन्तुष्ट न हों। यह बात हमने आपसे बार-बार निवेदन की है कि हम सन्धि का पालन करने में कदापि किञ्चित् त्रुटि न करेंगे। आपका शत्रु जब हमारा शत्रु है तब हमारा शत्रु भी आपके शत्रुओं में अवश्य ही गिना जायगा। निदान यदि फ्रान्सीसी लोग आपके पास उपस्थित हों तो आप अवश्य उन्हें बाँध कर भेज दें। आपने लिखा है कि ड्रेक साहब ने महाराजा मानिकचन्द से असम्मान सूचक बातें कही थी। मैंने इस बात के सुनते ही ड्रेक साहब को एक यथोचित पत्र लिखा था और उन्होंने भी मानिकचन्द के निकट उचित क्षमा-प्रार्थना की है। मुझे विश्वास है कि आप सन्तुष्ट हुए होंगे। हम लोग क्या आपको असन्तुष्ट कर सकते हैं? हमारी ओर से आप कभी ऐसा व्यवहार न पायेंगे।"

वाट्सन ने जिस उद्देश्य से यह पत्र लिखा था, वह सफल नहीं हुआ। शरण आये हुए फ्रान्सीसियों को बाँधकर भेजने के लिए सिराजुद्दौला तैयार न हुआ। वाट्सन ने नितान्त निरुपाय हो भय दिखा कर कार्य सिद्ध करने के लिए पुनः इस आशय का निम्नलिखित पत्र भेजा:—

"हमने चन्द्रनगर पर अधिकार करके अधिकाँश फ्रान्सीसियों को कैद कर लिया है और भागनेवालों को पकड़ने के लिए फौज भेजी है, यह हम आपको पहले ही लिख चुके हैं। आक्षेप के योग्य बात है कि आज फिर उसी विषय में लिखना पड़ता है। परमेश्वर और मोहम्मद के पवित्र नाम से आपने जो धर्म-प्रतिज्ञा की है, उसका यथोचित परिपालन आपकी ओर से न होने के कारण ही हमें बार बार पत्र लिखना पड़ता है। कम्पनी की जो तोपें आपके कब्जे में हैं, वे सब वाट्स साहब के हवाले कर दीजिए। बन्धुभाव स्थिर रखने के लिये ही सन्धि संस्थापित की गई है, इस बात को न भूलिएगा। भागे हुए फ्रान्सीसियों को बाँध कर भिजवा दीजिए। यदि कोई व्यक्ति इसके विपरीत आचरण करने की राय दे, तो निश्चय जानिए कि वह आपका शुभ-चिन्तक कदापि नही है। ऐसी सीख से देश में युद्ध की आग भभक उठेगी। परन्तु यदि आप सत्य का उल्लंघन न करें, तो हम कदापि युद्ध की घोषणा न करेंगे। हमें सिर्फ यह सूचना मिली है कि फ्रान्सीसी लोग भाग कर आपके पास पहुँचे हैं और उन्होंने आपके सिपाहियों में भर्ती होने की प्रार्थना की है। यदि आप इसे अस्वीकार करेंगे, तो फिर हमारे साथ आपका मित्र-सम्बन्ध स्थिर न रह सकेगा। आपने उस दिन भी हमसे कुछ फौज की मदद माँगी थी, परन्तु उसके बाद लिखा कि अब नहीं चाहिये। इससे जान पड़ता है कि फ्रान्सीसियों

के साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थिर करना ही आपको अभीष्ट है।"

सिराजुद्दौला के स्वप्न में भी यह अनुमान नहीं किया था कि अलीनगर की सन्धि का ऐसा चिन्ताजनक परिणाम होगा। अंगरेजों की गूढ़ नीति के आशय को समझ कर उसके होश उड़ने लगे। उसने वाट्सन के पत्र का कोई जवाब नहीं दिया। केवल चुपचाप रहकर सावधान दृष्टि से अँग्रेजों के इरादों का पता लगाने लगा।

इस ओर अँग्रेजी दर्बार मे बड़ी घबड़ाहट मची। वाट्सन ने सम्मानपूर्वक विनीत वचनों में सिराजुद्दौला को जो पत्र लिखा, उसका कुछ जवाब नहीं आया। दूसरी बार आवाज को तेज करके डाट-डपट के साथ जो पत्र लिखा, उसका भी कोई उत्तर नहीं आया। तब अँग्रेजों ने समझ लिया कि फ्रान्सीसियों को आश्रय-दान देना ही इसका एकमात्र उद्देश्य है। इससे अंगरेज लोग घबड़ा गये। वाट्सन ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि फ्रान्सीसियों को बाहर निकाले बिना अँगरेजों का कल्याण कदापि न होगा। अतएव उस समय अगरेज लोग विविध उपायों से नवाब और फ्रान्सीसियों का मित्रता-सम्बन्ध छिन्न-भिन्न कर देने का प्रयत्न करने लगे। वाट्सन ने पुनः अनुनय-विनय के साथ नवाव को लिख भेजा :—

"चन्दरनगर के पास हमारे कई जंगी जहाज ठहरे हुए हैं और हुगली के पास गोरों की कई पलटनों की छावनी पड़ी हुई है, शायद इसीलिये आप विशेष असन्तुष्ट हुए हैं। यह सुयोग पाकर हमारे किन्हीं शत्रुओं ने आपसे कह दिया है कि हम सेना लेकर मुर्शिदाबाद पर आक्रमण करने के लिये ही ये सब प्रबन्ध कर रहे हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि किसी ने ऐसी मिथ्या बात कह कर आपको धोखा देने का साहस किया है और उससे भी अधिक अचम्भे की बात यह है कि आपने ऐसी असत्य बात को सत्य समझ कर विश्वास कर लिया ! आप भी तो एक वीर पुरुष हैं, क्या आप नहीं जानते कि आपके राज्य में शत्रु-सेना का एक आदमी भी जब तक छिपा रहे, तब तक उसका पीछा न करना हमारे लिये कितनी बड़ी भूल की बात है ? खैर जो हो, आप यदि फ्रान्सीसियों को बाँध कर भेज दें, तो सारे बखेड़ों का अन्त हो सकता है और हम भी अपनी फौज लेकर लौट जा सकते हैं। जब तक आप ऐसा नहीं करते हैं तब तक हम कैसे कहें कि आप अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करेंगे।"

वाट्सन केवल रण-कुशल ही नहीं था, बल्कि उस समय के अंग्रेजों में उसके बराबर चालाक, राजनीतिज्ञ और लेखक भी विरले ही थे। वह जिस समय बड़े सरल भाव से सिराजुद्दौला को लिख रहा था कि मुर्शिदाबाद पर आक्रमण करने का 'प्रस्ताव सरास मिथ्या है, ठीक उसी समय की बातों का उल्लेख करते

हुए क्लाइव ने हाउस-आफ-कामन्स के सामने मुक्त-कण्ठ से यह गवाही दी है :—

„चन्द्रनगर पर अधिकार होते ही मैंने सब को समझा दिया था कि बस इतना ही करके बैठ रहने से काम न चलेगा। जब नवाब की इच्छा के प्रतिकूल चन्द्रनगर पर अधिकार किया गया, तो और भी कुछ दूर आगे बढ़ कर सिराजुद्दौला को सिंहासन से उतारना पड़ेगा।"

क्लाइव ने कहा है कि मेरे इस संकल्प से सभी लोग सहमत हो गये थे ! निदान इसमें सन्देह नहीं कि सिराजुद्दौला आरम्भ ही में अंगरेजों के गुप्त अभिप्राय को समझ गया था। परन्तु लोगों ने मिलकर उसे धोखा देने के लिए तरह-तरह की चेष्टाएँ की और उसे समझाया कि सारे झगड़ों की जड़ फ्रान्सीसी हैं, उन्हें राजधानी में आश्रय देने के कारण अँग्रेजों के साथ की हुई सन्धि के भंग हो जाने का उपक्रम हो रहा है।

सिराजुद्दौला ने किस लिए सन्धि की थी और अँग्रेज लोग किस तरह से उसका प्रतिपालन कर रहे थे यह सब उसके लिखे हुए २२ मार्च के सामरिक पत्र से प्रकट होता है। वह पत्र यह है :—

"मैंने धर्म-प्रतिज्ञा-पूर्वक जिन शर्तों पर हस्ताक्षर किये हैं, उनका अक्षरशः प्रतिपालन होगा। किसी विषय में तनिक भी

त्रुटि न होगी। वाट्सन साहब ने जो-जो दावे किये, मैंने उन सभी का रुपया चुका दिया। कुछ थोड़ा-सा बाकी है, वह भी वर्तमान इस्लामी महीने के पहले ही पक्ष के अन्त तक चुका दिया जायगा। शायद वाट्स साहब ने ये सब बातें लिख भेजी हैं। मेरा जो कर्त्तव्य है, मैं उसे पालन कर रहा हूँ। परन्तु आपका रंग-ढंग देख कर जान पड़ता है कि प्रतिज्ञा-पालन करना तो दूर रहा, उसे मेटना ही आपको अभीष्ट है। आपकी फौज के उपद्रवों से हुगली, इंजिली, वर्धमान और नदिया आदि प्रदेशों का नाश हो रहा है। ये उपद्रव क्यों? बामदेव के पुत्र के द्वारा गोविन्दराम मित्र ने नन्दकुमार को लिख भेजा है कि कालीघाट कलकत्ते की जमींदारी के अन्तर्गत है, अतएव आपको उस पर दखल पाने का दावा है। इस बात का क्या अर्थ है? मैं ऐसा विश्वास करने के लिए तैयार नहीं कि यह सब कुछ आपकी जानकारी में हो रहा है। आपने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये है और केवल आपके ही विश्वास पर मैंने सन्धि करना स्वीकार किया था। यदि सन्धि न होती तो दोनों ओर की सेनाओं के प्रचण्ड युद्ध से देश का सर्वनाश होता, प्रजा पद्-दलित होती, राज्य-कर प्राप्त न होता, सब तरह से राज्य का अमंगल ही होता। इन्हीं बातों को रोकने के लिए सन्धि की गई थी। यदि आपका यह निश्चय हो कि मेरे और आपके दर्मियान मित्रता का जो अंकुर जमा है, उसे सुदृढ़ करना ही मुख्य कर्त्तव्य है,

इन समस्त झगड़ों को दूर करके 'मित्र' महाशय से कह

दीजिये कि वे भविष्य में कभी ऐसी मिथ्या प्रवंचना का प्रस्ताव न उठाएँ। पुनश्च। सुना है कि फ्रान्सीसी लोगों ने आपके साथ युद्ध करने के लिये दक्खिन से फौज भेजी है। यदि वे मेरे राज्य में लड़ाई-फसाद मचाना चाहें तो मैं आपके लिखते ही अपनी फौज भेजकर उन्हें नीचा दिखाने में तनिक भी कसर न करूँगा। सूचना पाते ही मेरी फौज रवाना होगी।"

वाट्सन के पत्रों के साथ सिराजुद्दौला के पत्रों की तुलना और समालोचना करनी आवश्यक है। एक ओर चालाक, कपटी और महाधूर्त अँग्रेजी सेनापति वाट्सन और दूसरी ओर भारतवर्ष का सत्य प्रेमी नौजवान स्वाधीन नवाब! एक व्यक्ति इतिहास में परम प्रतिष्ठित और गौरवान्वित तथा दूसरा स्वदेश और विदेश सभी के निकट धिक्कार प्राप्त और अपमानित! परन्तु दोनों की बातों और कार्यों पर जरा विचार कर देखिए, कौन कितने सम्मान का पात्र है? सिराजुद्दौला कलंकों से ग्रस्त है, अवश्य परन्तु केवल राजधर्म का यथोचित प्रतिपालन करने के कारण ही क्या वह अंग्रेजों के रोष का पात्र नहीं हुआ? वाट्सन उसको जिन पाप-कार्यों में लिप्त होने के लिए बारबार बड़े अनुरोध के साथ पत्र लिख रहा था, क्या उन्हें स्वीकार कर लेने से सिराजुद्दौला कलंक से मुक्त अथवा दोष से रहित हो सकता था?

सिराजुद्दौला ने सन्धि-संस्थापन के लिये अँगरेजों के सारे

नुकसानों की भरपाई करके भी अलीनगर के सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। उसके अमीर-वजीर सब उसके ऐब निकालने वाले घर के शत्रु थे ही, अतएव उसे फिर अंग्रेजों के साथ शांति-भंग करने की हिम्मत नहीं पड़ी। वह शान्ति के लिये ही व्याकुल होने लगा।

नवाबी दर्बार के अमीर-उमरावों ने देखा कि यही अच्छा मौका है। वे नवाब से कहने लगे कि फ्रान्सीसियों को कासिम-बाजार में आश्रय प्रदान करने के कारण ही शान्ति-भंग की सम्भावना जान पड़ती है, इसलिए उन्हें पटना-प्रदेश में भेज देना उचित है। इस निःस्वार्थ हित-वार्ता में सिराजुद्दौला को किसी कूट अभिसन्धि का पता न लगा। उसने फ्रान्सीसियों के सेनापति लास साहब को तदनुसार पटना चले जाने की आज्ञा दी। लास ने कुछ दिन राजधानी में रहकर राज-दर्बार की अवस्था को अच्छी तरह देखा-भाला था। उसने सिराजुद्दौला से कहा, "आपके वजीर और अधिकांश फौजी सरदार अँग्रेजों के साथ मिलकर आपको सिंहासन से उतारने की कोशिश कर रहे हैं। केवल फ्रान्सीसियों के भय से वे प्रकट रूप में शत्रुता करने का साहस नहीं करते। ऐसे समय में फ्रान्सी-सियों को राजधानी से हटाते ही युद्ध की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठेगी।"

सिराजुद्दौला इस बात को सहसा अस्वीकार न कर सका,

परन्तु वह शान्ति-संस्थापित करने के लिए व्याकुल हो रहा था। अतएव उसने कहा, "आप लोग भागलपुर के पास रहें। बगावत की सूचना पाते ही मैं खबर भेजूँगा।"

फ्रान्सीसी सेनापति लास फिर अपनी बात को न दोहरा सका। केवल बिदा माँगते समय आँखों में आँसू भर केवल इतना ही कहा—"यही अन्तिम दर्शन है। अब हमारा आपका सम्मिलन न होगा।"

सिराजुद्दौला के खिलाफ साजिशें

अलीनगर की सन्धि-संस्थापित होने के समय सिराजुद्दौला ने वाट्सन को लिखा था:—"आप जानते हैं, जंग में सिपाहियों को लूटने से रोकना कितना मुश्किल काम है। इसलिए यदि मेरी सेना की लूट के द्वारा आप लोगों का कुछ नुकसान हुआ है और उसमें से कुछ यदि आप लोग अपनी ओर से छोड़ देंगे तो आपकी दोस्ती लाभ करने के लिये और भविष्य में आपकी कौम के साथ अच्छा सम्बन्ध कायम करने के लिये मैं इस खास इस विषय में भी आप लोगों की तसल्ली कर देने की कोशिश करूँगा।"

अपने इस बचन को पूरा करने के लिए सिराजुद्दौला को पर्याप्त रुपये की हानि उठानी पड़ी थी। जब सारे झगड़े फसाद मिट गये तब सिराजुद्दौला अपने सेना-नायकों की कारगुजारी विचार करने में लग गया। इस विचार में मानिकचन्द की सारी करतूतें क्रमशः प्रकट हो गई और इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानिकचन्द ही कलकत्ते का रक्षक होकर भक्षक बन गया था। सिराजुद्दौला ने अपराधी मानिकचन्द को समुचित दंड दिया। वह कैद हो गया और बहुत कुछ अनुनय विनय करने के

बाद दस लाख रुपये दंड देने पर मानिकचन्द जेलखाने से मुक्त हुआ। परन्तु इसी से विद्रोह की सुलगती हुई आग में लपट उठनी शुरू हुई। राय दुर्लभ, राजवल्लभ, जगत सेठ और मीर जाफर आदि लोगों ने सोचा कि मानिकचन्द तो केवल एक बहाना मात्र था अब एक-एक करके सभी को इसी तरह सताकर सिराजुद्दौला मनमाना रुपया वसूल करेगा। इसलिये अपने-अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए जगत सेठ का मन्त्रणा भवन फिर से इन सब लोगों के रात्रि सम्मेलन का संकेत स्थान बन गया।

जो लोग इन गुप्त साजिशों में सम्मिलित होने लगे वे देश के अथवा सर्व साधारण के लिए कोई चिंता नहीं करते थे। जगत सेठ, मीर जाफर, राजवल्लभ, राय दुर्लभ, अमीचंद और मानिक-चंद इनमें किसी के साथ किसी का न तो कोई पारिवारिक संबंध था और न किसी पर किसी का प्रेम हो। केवल अपने अपने मत-लब के लिये दलबंदी करके एक दूसरे के साथी और सहायक बन गये। इतना ही नहीं अंग्रेजों की सहायता से मीरजाफर को गद्दी पर बैठाने के लिये षड़यंत्र जाल भी फैलाने लगे थे। मीरजाफर सिराजुद्दौला के नाना अलीवर्दी खाँ का बहनोई था उस समय उसका प्रभाव अधिक था इसलिए अंग्रेज उसे नवाब बनाना चाहते थे। २६ अप्रैल तक वाट्स ने मीरजाफर को राजी करके क्लाइव को पत्र लिखा कि:—
"मीरजाफर और उसके साथी नवाब को गद्दी से उतारनें में

अंग्रेजों को मदद देने के लिये तैयार हैं" और यह भी लिखा कि :—

"यदि आप इस तरकीब को पसन्द करें जो उस दूसरी तरकीब की निसबत जो मैं पहले लिख चुका हूँ ज्यादा आसान है तो मीर जाफर चाहता है कि आप अपनी तजबीजें लिख भेजें। कि आप कितना धन और कितनी जमीन चाहते हैं और सन्धि की क्या शर्तें होंगी ?"

क्लाइव ने इस समय फिर दोरूखी चाल चली। एक ओर उसने सिराजुद्दौला को धोखे में रखने के लिये उसे एक अत्यन्त प्रेम पूर्ण पत्र लिखा और दूसरी ओर मीरजाफर के लिये वाट्स को असली बात का जबाब दिया। प्रसिद्ध इतिहास लेखक मैकाले लिखता है :—

"क्लाइव ने सिराजुद्दौला को इतने प्रेम पूर्ण शब्दों में पत्र लिखा कि उन शब्दों के धोखे में आकर कुछ समय के लिये वह निर्बल नरेश अपने को पूरी तरह निःशंक समझने लगा। क्लाइव अपने इस पत्र को सान्त्वना देने वाला पत्र कहता है। जो हरकारा इस पत्र को लेकर आया था वही एक दूसरा पत्र वाट्स के नाम का भी लेकर गया था जिसमें लिखा था कि मीरजाफर से कह दो कि किसी बात से न डरे, मैं पाँच हजार ऐसे सिपाही लेकर जिन्होंने लड़ाई में कभी पीठ नहीं दिखाई उससे जा मिलूंगा। उसे विश्वास दिला दो कि मैं दिन दिन भर और रात-रात भर

चल कर उसकी मदद के लिये पहुँचूगा और जब तक मेरे पास एक आदमी भी बचेगा तब तक उसका साथ न छोड़ूंगा।"

तथापि चन्दरनगर अंग्रेजों के अधिकार में चले जाने के समय से सिराजुद्दौला का हृदय बहुत कुछ सशंक हो गया था। चन्दरनगर की विजय के बाद अंगरेजों और फ्रान्सीसियों के दर्मियान जो सन्धि हुई उसके साफ विरुद्ध अंगरेजों ने सिराजु-द्दौला के सामने अब यह एक और नई माँग पेश की कि कासिम बाजार, ढाका, पटना, जूदा और बालेश्वर आदि स्थानों में फ्रान्सीसियों की जितनी कोठियाँ हैं और जितने फ्रान्सीसी आपके राज्य में हैं उन सब को आप हमारे सुपुर्द कर दें। फ्रान्सीसियों को बंगाल के अन्दर कोठियाँ बनाने और व्यापार करने की इजाजत ठीक उसी प्रकार दिल्ली सम्राट से मिली हुई थी जिस प्रकार अंगरेजों को। अभी तक फ्रान्सीसियों ने न कभी सम्राट अथवा उसके सूबेदार की किसी आज्ञा को भंग किया था और न उन्हें किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाया था। इसलिए अंगरेजों की इस अनुचित माँग के उत्तर में सिराजुद्दौला ने १४ अप्रैल को वाट्सन को साफ-साफ शब्दों में लिख दिया :—

"मैं पहले भी लिख चुका हूँ और फिर लिखता हूँ कि यदि अंगरेज कम्पनी अपना व्यापार कायम रखना चाहती है तो मुझे कोई ऐसी बात न लिखिए जो हमारी सन्धि के अनुकूल न हो, × × × अगर आप मुझसे लड़ाई करना नहीं चाहते तो

मेरी मोहर लगी हुई और मेरी दस्तखती सन्धि आपके पास है, जब कभी पत्र लिखना हो तब उसे देखकर उसके अनुसार लिखिए××× यदि आप शान्ति कायम रखना चाहते हैं तो सन्धि-पत्र के विरुद्ध कोई बात न लिखिये।"

इतने पर भी फ्रान्सीसियों को बल-पूर्वक मिटा देने के लिए अंगरेज लोग पलटन भेजने का प्रबन्ध करने लगे। सिराजुद्दौला के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने तुरन्त ही अंगरेज वकील को दर्बार से बाहर निकाल कर वाट्स को कहला भेजा :—

"या तो इसी वक्त मुचलकानामा लिखकर फ्रान्सीसियों का पीछा करने की आकांक्षा त्याग दो अथवा इसी क्षण राजधानी से निकल जाओ।"

यह खबर पाकर क्लाइव ने झटपट व्यापारीय नौकाएँ सजानी शुरू की। भीतर गोला-बारूद ऊपर धान के बोरे और उनके ऊपर चालीस सुशिक्षित सैनिक सिपाही, इस प्रकार छल पूर्वक सात नावों के बेड़े में अँगरेज सौदागरों का व्यापारीय सामान लेकर क्लाइव मुर्शिदाबाद की ओर अग्रसर हुआ। कासिमबाजार के खजाने को शीघ्र ही कलकत्ते भेज देने के लिये गुप्त रूप से वाट्स को एक पत्र भी लिख दिया गया।

इसी के बाद सेनापति वाट्सन ने सिराजुद्दौला को जो पत्र लिखा, वही उसका अंतिम पत्र था। उस पत्र में यह स्पष्ट अक्षरों में लिखा गया कि:—

"एक फ्रान्सीसी के जिन्दा रहते भी अंग्रेज लोग चैन नहीं लेंगे। हम शीघ्र ही कासिम बाजार को फौज-भेजते हैं। कासिम बाजार के सुरक्षित हो जाने पर फ्रान्सीसियों को बाँध लाने के लिए पटना-प्रदेश में और भी दो हजार सिपाही भेजे जायँगे,—इन सब कामों में आपको अंग्रेजों की सहायता करनी पड़ेगी।"

इस पत्र में अपने चरित्र की गुरुता बढ़ाने के लिए वाट्सन ने यह भी लिखा था कि:—

"हम तो केवल शान्ति ही चाहते हैं, धन की आकांक्षा हमारे हृदय में स्थान नहीं पा सकती। हम उससे सच्चे अन्तः-करण से घृणा करते हैं।"

सिराजुद्दौला ने समझ लिया कि फिर युद्ध ठनेगा अतएव वह भी भरसक अपनी रक्षा के उपाय करने लगा।

यदि सिराजुद्दौला फ्रान्सीसियों का सर्वनाश कराने के लिए अंग्रेजों को सहायता देता तो उसे इस प्रकार के संकटों का सामना न करना पड़ता। वह निश्चिन्त होकर अपने जीवन को सुखी बना सकता था परन्तु उसने पदाश्रित और शरण में आये हुए असहाय फ्रान्सीसियों का सर्वनाश कराना किसी भी दशा में उचित नहीं समझा। एक सौ फ्रान्सीसी सिपाहियों की जान बचाने के लिए हजारों आदमियों के सुख दुःख की बात भूलकर और राज्यसिंहासन तथा अपने जीवन की भी कुछ पर्वाह न कर

उसने अंग्रेज सेनापति की उपेक्षा की। इसी के लिए उसकी स्वाधीनता गई, प्राण गये और यहाँ तक कि अन्त में उसकी याद भी कलंकित होकर शेष रह गई।

पलासी-युद्ध के अन्त में क्लाइव ने इंगलिस्तान के अधिकारियों के निकट अपने कार्य का समर्थन करने के लिए फ्रान्सीसियों के पास भेजी हुई सिराजुद्दौला की चिट्ठियों का हवाला लिख भेजा था। ये चिट्ठियाँ अलीनगर की सन्धि के बाद की तारीखों की हैं और इनसे अंग्रेजों को यह कहने का मौका मिल गया कि सिराजुद्दौला प्रकाश्य-रूप से अंग्रेजों के साथ सन्धि करके गुप्त रूप से फ्रान्सीसियों की सहायता करता था।

इन्हीं पत्रों के बहाने अंग्रेजों ने सिराजुद्दौला को "विश्वासघातक" कहकर उसकी बड़ी निन्दा की है और जी भर धिक्कारा है। इतना ही नहीं, किसी-किसी ने तो यह भी कह डाला है कि गुप्तचरों की सहायता से सिराजुद्दौला के मूल पत्र ही अंग्रेजों के हाथ लग गये थे। परन्तु क्लाइव ने लिखा है कि मुझे वाट्स साहब के द्वारा इन सब पत्रों की नकलें प्राप्त हुई। स्क्रैफ्टन ने कहा है कि:—"जिस समय सिराजुद्दौला को सिंहासन से उतारने का षड्यन्त्र चल रहा था, उसी समय मैंने इन पत्रों का पता पाया था।" कुछ हो पहले तो यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये पत्र विद्रोही षड़यन्त्र-कारियों के मन गढ़न्त नहीं

हैं। फिर, इसको भी अस्वीकार करने का कोई उपाय नहीं कि अंग्रेजों को अपने पक्ष में कर लेने के लिए ही इन सब पत्रों की रचना नहीं हुई। सिराजुद्दौला के मीरमुन्शी ने इन सब पत्रों की नकलें बाहर कर दी थीं और इसे सिद्ध करने के लिए प्रमाणों का अभाव नहीं कि इसी मीरमुंशी ने उस समय मिलनेवाली घूस के लोभ से अंगरेजों के पक्ष का समर्थन करके वाट्स की भरपूर सहायता की थी। स्वयं स्क्रैफ्टन ने अपने इतिहास में सिराजुद्दौला के एक पत्र को उद्धृत करते हुए लिखा है कि "यह पत्र नवाब के मीरमुंशी के लिये रुपयों की एक गहरी नजर प्राप्त करके वाट्स साहब ने वाट्सन को दिया था।"

यारलतीफ खाँ, जो कुछ दिन पहले जगत सेठ के यहाँ रोटियों पर नौकरी करता था, सिराजुद्दौला का सिपहसालार था और दो हजार घुड़सवार उसके अधीन थे। उसने २३ अप्रैल को वाट्स से एकान्त में गुप्त रूप से मिलने की प्रार्थना की। वाट्स की हिम्मत न पड़ी। उसने यारलतीफ के पास अमीचन्द को भेज दिया। अमीचन्द आकर उससे मिला। उसके और यारलतीफ के द्वारा अंगरेजों के निकट विद्रोहियों की बगावत का पहला प्रस्ताव पहुँचा। स्वार्थ-सिद्धि के प्रलोभन में फंसकर सभी देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को भूल गये।

यारलतीफ ने मीरजाफर का नाम न लेकर कहा—"सिराजुद्दौला शीघ्र ही पटना-प्रदेश की ओर युद्ध यात्रा करेगा, सिर्फ इसी

लिए वह अभी अंगरेजों से कुछ नहीं कह रहा है, परन्तु उसके राजधानी में लौटने पर अंग्रेजों की रक्षा न हो सकेगी। देश के सभी प्रतिष्ठित और गण्यमान्य पुरुष सिराजुद्दौला से घृणा करते हैं। उसके पटना चले जाने पर यदि अँग्रेज लोग उसके पीछे मुर्शिदाबाद पर अधिकार जमा सकें तो सहज ही में सारा काम बन जायगा। विजय के उपरान्त मुझे नवाब बना देने पर अँग्रेज लोग जो कुछ चाहें, वह मैं सहर्ष देने के लिए तैयार हूँ।"

दूसरे दिन वाट्स से मिलकर एक अर्मानी सौदागर ख्वाजा पिद्र ने कहा—"सिराजुद्दौला मीर जाफर को गुप्त रूप से मरवा डालने का मौका खोज रहा है। अतएव लाचार होकर अपनी रक्षा के लिए मीर जाफर बागियों को सहायता देने पर बाध्य हो गया है। रायदुर्लभ, जगत सेठ और बाकी सब लोग भी इस गुप्त षड़यँत्र में शामिल हैं। आपके सहायता करने पर वे भी मदद करेंगे। इस समय एक को दूसरे की सहायता करनी ही चाहिये अतएव आप शीघ्र ही आगे बढ़िये। सिराजुद्दौला को अभी निश्चिन्त रखना आवश्यक है, इसलिए कर्नल क्लाइव को सेना के सहित कलकत्ते लौट जाना होगा।"

क्लाइव ने शीघ्र ही कलकत्ते को कूच किया और पहली मई को वह अँग्रेजी दरबार में पहुँचा। उसके और वाट्स के ऊपर सारा भार डाला गया। उन्होंने शीघ्र ही आधी फौज तो

कलकत्ते में और आधी चन्द्रनगर में गुप्त रूप से रखकर सिराजुद्दौला को शान्त रखने के लिए यह पत्र लिख भेजा :—"हम तो अपनी फौज वापस ले आये, फिर आपने अब पलासी में अपनी छावनी क्यों डाल रखी है ?" जिस पत्र-वाहक के हाथ क्लाइव ने यह पत्र सिराजुद्दौला के पास भेजा, उसी को वाट्स के लिए वह पत्र दिया जिसके विषय में हम पहले ही कह चुके हैं। मीरजाफर किसी भी प्रकार भयभीत न हो आदि उस पत्र के आशय थे। सिराजुद्दौला को धोखे में रखना और मीरजाफर को साहस के साथ आगे बढ़ाना ही क्लाइव की दोरुखी चाल थी। जिसके मन में जितना पाप था, वह प्रकट रूप से उतनी ही सरलता दिखाने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु आवश्यक कार्य से सिराजुद्दौला को पटने जाना ही पड़ा। उसने अँगरेजों की जाली नौकाएँ रोक लीं और पलासी में ज्यों की त्यों छावनी डाले रहा तथा गुप्तचरों की सहायता से अगरेजों के इरादों का पता लगाने लगा।

मतिराम एक प्रसिद्ध जासूस था। उसने अपने कार्य पर कलकत्ते में रह कर गुप्त रूप से खबर भेजी कि, "सिर्फ आधी फौज कलकत्ते में है और आधी, जान पड़ता है, किसी गुप्त रास्ते से कासिमबाजार को चली गई है।" सिराजुद्दौला ने यह खबर पाते ही उसी क्षण कासिमबाजार का कोना कोना ढूँढ़ डाला, परन्तु फौज का कहीं पता न मिला। तथापि उसका सन्देह दूर नहीं हुआ। उसने फ्रान्सीसियों से भागलपुर में

ठहरने के लिए कहा और भागीरथी की धारा में शाल के लट्ठे गाड़ कर पन्द्रह हज़ार सेना के साथ मीरजाफर को पलासी जाने की आज्ञा दी। मीरजाफर के पलासी में रहने पर राजधानी के गुप्त षड़यन्त्रों में विघ्न पड़ेगा, यह सोचकर अंग्रेज और देश-द्रोही हिन्दुस्तानी सभी चिन्तित होने लगे, परन्तु सिराजुद्दौला का संदेह मिटाने के लिए मीरजाफर को बिना किसी तर्क और एतराज के पलासी को जाना पड़ा।

लूट के लोभी मराठों के सेनापति ने बहुत दिनों से चौथ का रुपया नहीं पाया था इसीलिये उसने एक पत्र लिखकर गोविन्द राम नामक दूत के द्वारा अँगरेज गवर्नर ड्रेक के पास भेजा। उस पत्र का आशय यह था:—

"आपकी दुर्दशाओं के समाचार मुझे जनूजी के पुत्र रघूजी के द्वारा विदित हुए। अतएव अब आप मेरे मित्र बनकर निश्चिन्त हों। अपने सर्वोत्तम प्रस्तावों को मेरे पास भेज दीजिए। ईश्वर की कृपा से शमशेर खाँ बहादुर और बाजी राव का पुत्र रघुनाथ एक लाख बीस हजार सवारों के साथ बँगाल में आ दाखिल होंगे।"

यह पत्र लेकर जब मराठों का दूत कलकत्ते में पहुँचा तब क्लाइव बड़े असमन्जस में पड़ गया। वह इसका निश्चय न कर सका कि गोविन्दराम किसका दूत है। अतएव उस पत्र को सिराजुद्दौला के पास भेज देना ही निश्चित हुआ। इससे अंग्रेजों

की सरलता का सच्चा प्रमाण पाकर सिराजुद्दौला अवश्य ही धोखे में आ जायगा, इसी भरोसे पर स्क्रैफ्टन ने मुर्शिदाबाद को कूच किया। रास्ते में मीरजाफर से पलासी में सलाह-मशवरा करना उसका मुख्य उद्देश्य था। परन्तु नवाब के गुप्त-चरों ने यह उद्देश्य सिद्ध न होने दिया, उन्होंने स्क्रैफ्टन को सीधा मुर्शिदाबाद पहुँचा दिया। क्लाइव की चालकी कामयाब हो गई। जब स्क्रैफ्टन के द्वारा मराठों का पत्र मिला तब सिराजुद्दौला अँग्रेजों से बहुत ही संतुष्ट हुआ। जो कुछ सन्देह उसके मन में बाकी था, स्क्रैफ्टन ने वह सब दूर कर दिया। मीरजाफर को सेना के सहित पलासी से चले आने की आज्ञा मिल गई। मीरजाफर के मुर्शिदाबाद पहुँचते ही उसके और अंग्रेजों के बीच एक गुप्त सन्धि पत्र लिखा गया।

मई की '७ तारीख को कलकत्ते की अँग्रेजी कौंसल में इस गुप्त सन्धि-पत्र की आलोचना हुई। इस मसौदे में मीरजाफर से एक करोड़ रुपया कम्पनी को, दस लाख रुपया कलकत्ते के निवासी अंग्रेजों और अमानियों को और तीस लाख रुपया अमीचन्द को मिलने की बात लिखी गई थी। इसके अति-रिक्त बगावत के प्रधान सहाय्यकों और राह बताने वालों के लिए इनाम की रकमें एक अलग चिट्ठे में दर्ज की गई थी। सिराजु-द्दौला के राजकोष में अवश्य ही इतना रुपया नहीं था, परन्तु रुपया है या नहीं, इस बात पर किसी ने विचार नहीं किया। चारों ओर गदर मच गया। अंग्रेजों ने मीरजाफर को नवाब

बनाने की आशा को पूर्ण करने का बचन दिया। इसलिए उन अँग्रेजों ने जो कुछ चाहा, मीरजाफर को बिना किसी तर्क या सोच-विचार के वही मन्जूर करना पड़ा।

मसौदा भेजते समय वाट्सन ने लिखा था कि:—"अमीचन्द जो कुछ चाहता है, उसे मन्जूर करने में आनाकानी करने से सारा खेल बिगड़ जायगा। वह मामूली आदमी नहीं है, नवाब के निकट फौरन ही सारे षड़यन्त्र को प्रकट कर देंगा।" इस समाचार से अंग्रेज लोग अमीचन्द को मार डालने के लिए तैयार हो गये। जो लोग मीरजाफर को कामधेनु की तरह दुहने के लिए लालायित थे वे ही अमीचन्द को स्वार्थी और लालची कहकर धोखा देने के लिए तैयार हुए, परन्तु वे इस बात का निर्णय न कर सके कि किस उपाय से अमीचन्द को धोखा दिया जा सके। अन्त में एक दिन रात में बैठक हुई। बड़ी देर तक आलोचना और प्रत्यालोचना होती रही। बाद में क्लाइव ने एक उपाय सोच निकाला। उसी के अनुसार कार्य किया जाने लगा। उसने दो सन्धि-पत्र लिखाये। एक सादे कागज पर वही असली था। और एक लाल कागज पर वह जाली था। इस जाली सन्धि-पत्र में अमीचन्द को तीस लाख रुपया मिलने का उल्लेख किया गया। वाटसन ने इस जाली सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। क्लाइव बड़ी मुसीबत में पड़ गया परन्तु क्लाइव की आज्ञा से लसिंटन नामक एक अंग्रेज ने वाटसन के जाली दस्तखत बनाकर सारी

मुसीबत को दूर कर दिया। किसी किसी ने क्लाइव को इस कलंक से मुक्त करने के लिए लिखा है कि, "वाटसन की राय लेकर ही उसके जाली दस्तखत बनाये गये थे।" परन्तु इस बात में कोई विशेष महत्व दिखाई नहीं देता। क्लाइव ने स्वयं ही कहा था कि, "वाट्सन के सहमत न होने पर भी मैं उसके जाली दस्तखत बनाये जाने की आज्ञा देता।"

इस जाली सन्धि-पत्र की आलोचना करते समय इतिहास-लेखक भौचक्के रह गये। परन्तु क्लाइव ने हाउस आफ-कामन्स के सामने गवाही देते समय स्वयं बड़ी प्रसन्नता के साथ मुक्त-कण्ठ से कहा था कि, मैंने कभी इस बात को छिपाने की चेष्टा नहीं की। मेरा मत है कि ऐसी दशा में साधारण रूप से इस तरह के दगा-फरेबों से काम निकाला जा सकता है। एक ही बार क्यों, जरूरत पड़ने पर ऐसी दशा में मैं और भी सौ बार ऐसे काम करने के लिए तैयार हूँ।"

इस बात को स्मरण करके अंग्रेज इतिहास-लेखकों ने भी लज्जा से सिर नीचे झुकाया है कि, जो व्यक्ति भारतवर्ष में अँगरेजी शासन की जड़ जमाने वाला आदि पुरुष हुआ उसकी धर्म-बुद्धि ने ऐसे नीच कार्य का समर्थन किया। इतिहास लेखक मालसन ने तो यहाँ तक लिखा है कि—"रुपये का लोभ और धन की बढ़ती हुई तृष्णा जिसके कारण एक साथी अपने नियत भाग से वञ्चित रहें यह कार्य एक ईमानदार आदमी के हृदय को सदा ही जलायेगा।"

राजद्रोह महापाप है, अंग्रेज लोग जान-बूझकर भी इस महापाप में लिप्त हुए थे। यही पर्याप्त है। इसके मुकाबले में जालसाजी, दगाबाजी, चोरी और धोखेबाजी ये कौन बड़े अपराध हैं! फिर भला क्लाइव जैसे आदमी के लिए यह दोष किस गिनती में? वह जिस श्रेणी का अंग्रेज था जिस सहवास में उसने शिक्षा पाई थी, जिस उद्देश्य से वह भारतवर्ष में आया था उन सब बातों पर लक्ष रखते हुए उससे एक आदर्श अंग्रेज के समान अच्छे चरित्र की आशा करनी ही भूल थी। मेकाले ने लिखा है:—

"क्लाइव के घर वालों को उसके स्वभाव से कुछ भी आशा न थी। अतएव यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उन्होंने १८ वर्ष की अवस्था में क्लाइव को प्रसन्नता-पूर्वक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की मुहर्रिरी से कुछ रुपया पैदा करने अथवा मद्रास में बुखार से मर जाने के लिए भारतवर्ष में भेज दिया।"

जिस समय जो जरूरत पड़ी जाल से फरेब से जैसे बना क्लाइव ने बेखटके उसे पूरा किया और ऐसे व्यवहारों से कभी उसका रोम तक नहीं हिला। मिल ने लिखा है कि:—

"धोखे से काम निकालने में क्लाइव को कभी जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती थी और न वह इसमें जरा भी कष्ट का अनुभव करता था।"

अतएव जिस दुर्दान्त अंग्रेज युवक ने बाल्यकाल से सहस्रों निरंकुश कार्यों में जीवन बिताकर अन्त में अशान्त हृदय से आत्म हत्या कर इस लोक से प्रस्थान किया, उसकी विशाल जाति ने अपने गौरव की कहानियों से सभ्य संसार को प्रति-ध्वनित कर इंगलिस्तान के राजमार्गों के आसपास ब्रिटिश वीरकेसरी नेलसन और विलिंगडन आदि के ज स्तम्भ स्थापित कर उनके गौरव और कीर्ति को बढ़ाया है किन्तु उसने आज तक क्लाइव को अपने जातीय कीर्ति मन्दिर में स्थान नहीं दिया। क्योंकि जिन लोगों ने व्यापार के बहाने हिन्दुस्तानियों के साथ गुप्त षड्यन्त्रों में शामिल हो राज्य-विप्लव की बदौलत इस देश का राज्यसिंहासन पड़ा पाया था, उनका मूत्र मन्त्र रुपया ही था।

अमीचन्द को धोखा देकर ही अंग्रेज लोग निश्चिन्त न हो सके, बल्कि वे उसे शीघ्र ही कलकत्ते में लाकर अपनी मुट्ठी में रखने के लिए व्याकुल होने लगे। स्क्रैफ्टन के ऊपर इस कार्य का भार डाला गया कि वह किसी भी प्रकार की चालकी से "धूर्त अमीचन्द" को परास्त करे अन्यथा कार्य की सिद्धि असम्भव हो जायगी। स्क्रैफ्टन ने अमीचन्द से एकान्त में कहा:—

"बातचीत तो एक प्रकार से समाप्त हो चुकी। अब दो ही चार दिन के बीच में लड़ाई छिड़ जायगी। इस समय चटपट

सब लोगों को घोड़ों पर चढ़कर भाग जाना पड़ेगा। हम तो कोई न कोई उपाय करेंगे ही, परन्तु तुम तो मोटे डील-डौल के आदमी हो उस पर भी बूढ़े हो चुके हो। क्या तुम घोड़े पर सवार होकर तुरन्त भाग सकोगे?"

स्क्रैफ्टन का उद्देश्य सफल हो गया। उसकी बातों को सुनते ही अमीचन्द एकाएक सिर पर हाथ रख कर बैठ गया। उसने और तो बहुत सी बातें सोच रखी थी, परन्तु भागने वाली बात एक बार भी उसके दिमाग में न आई थी। जब वह कुछ भी निश्चय न कर सका तब लाचार होकर उसने स्क्रैफ्टन के हाथों अपने को सौंप दिया और उस समय चालाकी से सिराजुद्दौला की अनुमति लेकर दोनों ही मुर्शिदाबाद को चल दिये।

जो पाप-पूर्ण संकल्पों में लिप्त होते हैं वे किसी पर जी खोल कर विश्वास करना नहीं चाहते। अंग्रेजों ने निश्चय किया कि मीर जाफर जिस समय सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करे, उस समय अंग्रेजों के गुमाश्ता वाटस का मौजूद होना आवश्यक है। परन्तु मीरजाफर से बगावत का सन्देह होने के कारण सिराजुद्दौला उसे पदच्युत कर चुका था। जासूस लोग बड़ी सतर्क-दृष्टि से उसके कामों पर जाँच रखते थे। ऐसी दशा में सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर होना कठिन हो गया।

अन्त में एक दिन वाट्स हिम्मत बाँध कर पर्दों से ढकी

हुई पालकी पर सवार हो घूंघटवाली स्त्रियों की तरह भय और संकोच के साथ मीर जाफर के महल के द्वार पर पहुँचा। प्रतिष्ठित मुसलमान-घरानों की रीति के अनुसार पालकी सीधी जनानखाने में पहुँचाई गई। उसके भीतर से निकल कर वाट्स बेगमों के महल में पहुँच कर मीरजाफर के पास पहुँचा। उसके सामने मुसलमानों के परम पवित्र धर्म-ग्रन्थ को सिर से लगा, एक हाथ अपने प्राणप्रिय पुत्र मीरन के सिर पर पर रख और एक हाथ में कलम ले सँधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये। ईश्वर और पैगम्बर की दुहाई देकर कसम खाई कि:—
"मरते दम तक मैं इस सन्धि-पत्र की शर्तों को पालन करने के लिए बाध्य हूँ।"

इस सन्धि-पत्र की तेरह शर्तों का सार इस प्रकार है:—

"जितने अधिकार सिराजुद्दौला ने अंग्रेज़ों को दे रखे थे, मीरजाफर सूबेदार बनने पर उन सब को कायम रखे। अंग्रेज और मीरजाफर दोनों में से जब कभी तीसरे के साथ लड़ाई हो तो एक दूसरा उसकी मदद करे। तमाम फ्रान्सीसी और उनकी कोठियाँ अंग्रेजों के हवाले कर दी जाय और फ्रान्सीसियों को बङ्गाल में न रहने दिया जाय। कलकत्ते की तबाही के हर-जाने में और युद्ध के लिए मीरजाफर कम्पनी को एक करोड़ रुपये दे। इसके अलावा व्यक्तिगत नुकसानी के लिए कलकत्ते के अंग्रेज बाशिन्दों को ५० लाख, हिन्दू बाशिन्दों को २० लाख

और अर्मीनियन बाशिन्दों को ७ लाख रुपये दिये जाँय। कलकत्ते की खन्दक के अन्दर और बाहर चारों ओर ६०० गज तक की जमीन अंग्रेजों को दे दी जाय। कलकत्ते के दक्षिण में हुगली नदी और नमक की झीलों के बीच कालपी (बंगाल) तक तमाम इलाके की जमींदारी अंग्रेजों को दे दी जाय। जब कभी अपनी रक्षा के लिए नवाब को अंग्रेजी सेना की जरूरत हो, नवाब उसका खर्चा अदा करें। हुगली के नीचे दरिया के ऊपर नवाब किसी तरह की किलेबन्दी न करे। गद्दी पर बैठने के तीस दिन के अन्दर मीरजाफर इन शर्तों का पूरा कर दे और जब तक वह इस सन्धि के अनुसार चलता रहेगा, कम्पनी उसे उसके शत्रुओं को दमन करने में मदद देती रहेगी।'

यह गुप्त सन्धि-पत्र लेकर मीरजाफर का विश्वासपात्र नौकर उमरवेग २१ जून को कलकत्ते में पहुँचा उस समय चारों ओर इस गुप्त षड़यंत्र की बात का शोर मच गया। क्लाइव फौरन युद्ध-यात्रा करने के लिए कटिबद्ध हो बड़े गर्व के साथ सिराजुद्दौला को पत्र लिखने बैठा। जब सिराजुद्दौला को गुप्त-षड़यन्त्र और गुप्त सन्धि-पत्र का पता चला तब वह मीरजाफर को कैद करने का बन्दोबस्त करने लगा। मीरजाफर के महल में गोला-बारूद की कमी न थी। इसलिए उसको कैद करना कठिन था। वाट्स और कई अंग्रेज अभीतक मुर्शिदाबाद में मौजूद थे। लड़ाई का खुला ऐलान करने से पहले उन्हें वहाँ से हटा लेना जरूरी था।

१२ जून की शाम को 'बागों में हवाखोरी करने' के लिये वाट्स और उसके अंग्रेज साथियों ने नवाब से इजाजत ली और इसी बहाने रात ही में घोड़े पर सवार हो भाग गये। अगले दिन जब सिराजुदौला को इस छल का पता चला तब उसने क्लाइव और वाट्सन को इस घटना की सूचना देते हुए दुःख के साथ लिखा:—

"मैंने जो सन्धि संस्थापित की थी, उसकी शर्तों का पालन करने के लिए वाट्स साहब को प्रायः सब हिसाब चुका दिया। सम्भव है, कुछ थोड़ा शेष रह गया हो। मानिकचन्द वाले मामले का भी एक तरह से निपटारा कर दिया। परन्तु यह सब करने पर भी फल कुछ न हुआ। वाट्स और कासिम-बाजार के अन्य कोठीवाल अंग्रेज हवाखोरी का बहाना करके रात मे भाग गये। यह धोखा देने का स्पष्ट लक्षण सन्धि भँग करने की पूर्व सूचना है। मुझे यह अच्छी तरह विदित हो गया है कि आपके अनजान में अथवा बिना आपके सिखाये यह कार्य नहीं किया गया है। मैं पहले ही ऐसा होने की आशंका करता था, और यह जानकर ही कि आप विश्वासघात करेंगे मैं पलासी से छावनी उठा लाने के लिए राजी न होता था। जो हो, इसके लिए परमात्मा को धन्यवाद है कि मेरे द्वारा सन्धि भंग नहीं हुई। मैंने जो धर्म-प्रतिज्ञा की थी, ईश्वर और पैगम्बर उसका साक्षी हैं। जो पहले प्रतिज्ञा भँग करेंगे, वे ही उस घोर पाप-दण्ड के भागी होंगे।"

निस्सन्देह सिराजुद्दौला और उसके विपक्षियों के चरित्र में आकाश-पाताल का अन्तर था। सरल स्वभाव वाले सिराजुद्दौला ने क्लाइव के "प्रेम-पूर्ण पत्रों" पर विश्वास करके हाल ही में अपनी आधी सेना तक बर्खास्त कर दी थी।

युद्ध-यात्रा

युद्ध-यात्रा की आवश्यक तैयारियाँ हो चुकी। १२ जून को कलकत्ते की फौज चन्दरनगर की सेना के साथ मिल गई और चन्दरनगर के किले की रक्षा के लिए सिर्फ १५० जहाजी गोरे तैनात करके १ जून को समस्त अंग्रेजी सेना ने जिसमें ६५० यूरोपियन, १५० पैदल गोलन्दाज, ५० नाविक, हिन्दुस्तानी सिपाही और थोड़े से पुर्तगीज सब मिलाकर कुल ३०००० आदमी थे युद्ध के लिए कूच किया। गोला बारूद इत्यादि समान लेकर २०० नौकाओं पर गोरा लोग सवार हुये और हिन्दुस्तानी सिपाही गङ्गा के किनारे शाही सड़क से पैदल आगे की ओर बढ़ने लगे।

कलकत्ते से मुर्शिदाबाद का रास्ता बहुत लम्बा था। रास्ते में हुगली और कटोया के किले तथा अग्रदीप और पलासी की छावनियों में नवाब की सेना पड़ी हुई थी। यदि ये फौजें अपने वीरोचित कर्तव्य का पालन करतीं तो शायद हुगली ही के पास समस्त अंग्रेजों का काम तमाम हो गया होता और एक भी अंग्रेज जिन्दा नहीं बच सकता था। परन्तु अंग्रेजों को आगे

बढ़ने से रोकना तो दूर रहा किसी सरदार ने एकबार भी वीरों के समान उनके सामने आने तक का साहस नहीं किया। इतिहास में केवल यही उल्लेख पाया जाता है कि हुगली का फौजदार अंग्रेज के फौजी जहाज देखकर और क्लाइव की डाँट फटकार सुनकर नितान्त भयभीत हो गया था और इसी लिये लिए बिना किसी प्रकार की चीं-चपड़ के उसने अंग्रेजों को रास्ता दे दिया।

अंग्रेजों ने जिस समय चन्दरनगर पर आक्रमण किया था उस समय महराज नन्दकुमार हुगली का फौजदार था। उसने पहले बिना किसी रोक टोक के अंग्रेजों को रास्ता दे दिया था। नवाब उस बात को सुन चुका था और इसलिये अब की बार उसने एक दूसरा फौजदार हुगली में भेज दिया था। नवाब के हिन्दुस्तानी फौजदार और उनके सिपाही हथियारों के चलाने की विद्या में कैसे निपुण और शूर वीर थे, यह अंग्रेजों को अच्छी तरह मालूम था। परन्तु इस पर भी वे किस बूते पर सिर्फ १५० जहाजी गोरे किले में छोड़ शेष सारी फौज के साथ युद्ध यात्रा के लिये आगे बढ़े हुये थे। क्या वे यह न जानते थे कि यदि हुगली का फौजदार पीछे से आक्रमण करता तो अंग्रेजों का कैसा सर्वनाश हो सकता था। अंग्रेजों की निडर और निश्चिन्त रण-यात्रा, फौजदार का गहरा मौनावलम्बन और चन्दरनगर में सिर्फ १५० गोरों की तैनाती, इन सब बातों पर एक साथ विचार करने से जान पड़ता है कि मुर्शिदाबाद के

गुप्त षड़यन्त्र ने शायद हुगली के फौजदार को भी कर्त्तव्य-भ्रष्ट कर दिया था।

इस ओर विद्रोह का पता पाकर मीरजाफर को कैद करने का बिचार छोड़ कर सिराजुद्दौला उसे अपने पक्ष में मिलाने का उद्योग करने लगा। बहुतेरों ने इसे सिराजुद्दौला की कायरता का एक स्पष्ट उदाहरण बताया है। परन्तु उस समय मीरजाफर के साथ युद्ध ठान देने से मुर्शिदाबाद में ही पलासी के युद्ध का अभिनय समाप्त होता! सिराजुद्दौला स्वाधीनता की रक्षा के लिये व्याकुल था। किसी-किसी ने उसे मीर जाफर को कैद करने के लिये विशेष रूप से उत्तेजित भी किया परन्तु उसने उनकी बातों पर तनिक भी ध्यान न दिया। सारे अपराधों को क्षमाकर उसने मीरजाफर को राज महल में बुला भेजा। सिराजुद्दौला ने सोचा कि देश, समाज, धर्म और अलीवर्दी के नाम से स्वाधीनता की रक्षा के लिए मीरजाफर को सारी बातें समझाने बुझाने पर उसका भ्रम कदाचित अब भी दूर हो जायगा। बागी लोग सिराजुद्दौला से बहुत डरते थे। उन्होंने देखा की सारी बातें नवाब को मालूम हो गई हैं इसलिए अब मेल कर लेना ही अच्छा है और उन्होंने भरसक मीरजाफर को यही सलाह दिया। परन्तु मीरजाफर की हिम्मत नहीं पड़ी। इसीलिए वह सिराजुद्दौला के बुलाने पर भी राजमहल में नहीं गया।

अन्त में स्वाभिमान की अवहेलना कर पालकी पर सवार

हो स्वय सिराजुद्दौला मीरजाफर के मकान पर पहुँचा । इस बार मीरजाफर को बाहर निकलना पड़ा । उसकी आँखों में शर्म आ गई और सिर नीचे डालकर अबकी बार उसे अपने स्नेह भाजन सुहृद के मुख से करुणा जनक धिक्कार सुननी पड़ी । इसके बाद मीरजाफर को क्षमा प्रदान करते हुए जिस समय सिराजुद्दौला ने देश की पवित्रता, समाज की उच्चता और स्वाधीनता की रक्षा के प्रश्न को लेकर ईश्वर मोहम्मद इस्लामी गौरव और अलवर्दी की वंश मर्यादा की दुहाई दी और अंग्रेजों से स्नेह-सम्बन्ध तोड़ देने के लिये उत्तेजित किया उस समय मीरजाफर को सभी बातें स्वीकार करनी पड़ी । कुरान आया और मुसलमानों के इस परम पवित्र धर्म ग्रंथ को मस्तक से लगाकर नवाब सिराजुद्दौला के सामने सेनापति मीरजाफर ने बड़े अदब से झुककर कसम खाई कि ईश्वर और पैगम्बर के नाम से धर्म की शपथ खाकर मैं यह स्वीकार करता हूँ कि:—"अपने मरते दम तक नवाब के राज्य सिंहासन की रक्षा करूंगा ॥ जीते जी कभी विधर्मी अंग्रेजों की सहायता न करूँगा ।" ईश्वर के पवित्र नाम से शपथ खाने पर सिराजुद्दौला का सारा सन्देह दूर हो गया । एक मुसलमान ब्यक्ति कुरान को मस्तक से लगाकर भी झूठ बोलने का साहस करेगा इस पर भी बिश्वास न करके सिराजुद्दौला ने अब की बार धोखा खाया ।

किसी प्रकार घरेलू लड़ाई का निपटारा करके सिराजुद्दौला ने पलासी के मैदान में सेना जुटाने का उद्योग आरंम्भ किया ॥

आशा हुई कि जब मीरजाफर ने अंगरेजों की सहायता न करने का बचन दिया है तब अबकी बार अंगरेजों की रक्षा नहीं। इसी साहस से उसने युद्ध की तैयारी के लिये सैनिकों को बुलाकर इकट्ठा किया। परन्तु बागियों के बहकाने से वेतन न पाने वाले सिपाही युद्ध-यात्रा के लिये राजी न हुये। अतएव उनका पिछला वेतन चुकाकर सिराजुद्दौला ने दम लेने का मौका पाया। रायदुर्लभ, यारलतीफ, मीरजाफर, मीरमदन, मोहनलाल और फ्रान्सीसी सेना नायक सिनफ्रे आदि सेनाध्यक्ष का भार ग्रहण कर सिराजुद्दौला के साथ चलने को तैयार हो गये।

गुप्तचरों के गुप्त अनुसन्धानों के भय से मीरजाफर को हर समय अँगरेजों के पास समाचार भेजना बहुत कठिन हो गया। अतएव उससे उत्तर पाने की आशा से क्लाइव ने उसको एक पत्र लिखा। परन्तु १३ जून से १६ जून तक चार दिन के भीतर कोई भी जवाब न पाया। १४ जून को वाट्स ने अंग्रेजी पड़ाव में आकर शीघ्र ही मीरजाफर के पास एक विश्वासपात्र हरकारा भेज दिया। दुर्भाग्य से वह हरकारा भी नहीं लौटा। अन्त में कुछ भी निश्चय न कर सकने के कारण क्लाइव ने फौज के सहित पाटुलि में छावनी डाल दी।

मीरजाफर ने १६ जून को क्लाइव को पहला पत्र लिखा। वह पत्र शुक्रवार को पाटुलि की छावनी में क्लाइव को मिला। मीरजाफर सिराजुद्दौला के साथ जो मौखिक मित्रता संस्थापित

करने के लिए बाध्य हुआ था, उसका भी उल्लेख उसने स्वयँ ही अपने पत्र में कर दिया। परन्तु इसके साथ ही साथ उसने यह भी लिखा कि इसके कारण मैं अंग्रेजों की सहायता करके अपने बचनों को पूरा करने में तनिक भी कसर नहीं करूँगा। परन्तु यह पत्र पाकर भी क्लाइव को आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ। सामने काटोया का किला था। यह निश्चय हो चुका था कि इस किले का सेनाध्यक्ष सिर्फ दिखावे के लिए बनावटी युद्ध करके अंग्रेजों के निकट पराजय स्वीकार करेगा। यह बात कहाँ तक सत्य है, इसे जानने और जाँचने के लिए शनिवार को प्रातःकाल के समय मेजर कूट २०० गोरे और ३०० हिन्दुस्तानी सिपाही लेकर काटोया की ओर बढ़ा। क्लाइव सेना के सहित पाटुलि ही में ठहरा रहा। अजय और भागीरथी के संगम पर काटोया का किला था। मराठों के आक्रमणों के समय यहाँ बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ होने के कारण यह किला वीरों की लीला-भूमि प्रसिद्ध हो गया था। परन्तु इसबार किले के फाटक पर युद्ध नहीं हुआ। कुछ देर तक लड़ाई का नाटकसा खेलकर नवाब की फौज अपने ही हाथों से जगह जगह छप्परों में आग लगाकर किले से भाग गई। इस सामरिक नाटक में नवाब की सेना ने जो थोड़ी-सी वीरता दिखाई थी, कप्तान कूट ने उसी से यह ख्याल किया था कि शायद किले का सेनाध्यक्ष अपने पूर्व निश्चय को परित्याग कर युद्ध करने के लिए ही कटिबद्ध हुआ है। जो हो, जब काटोया सुनसान हो गया

तब क्लाइव ने धीरे-धीरे सेना के सहित उस पर अधिकार कर लिया। प्राणों के भय से नगर-निवासियों के भाग जाने के कारण इतना चावल अंगरेजों के हाथ लगा कि जिससे दस हजार सिपाही साल भर तक अच्छी तरह अपना पेट भर सकते थे। अब तो क्लाइव ने सेना के सहित काटोया में डेरे डाल दिये।

मीरजाफर के पहले ही पत्र से क्लाइव के मन में खलबली मच गई थी। वाट्स के पहले भेजे हुए दूत ने लौटकर और भी सन्देह बढ़ा दिया। कुछ और समाचार आने की प्रतीक्षा में क्लाइव दो दिन तक तृष्णा युक्त आँखों से रास्ता ताकता रहा। कभी विश्वास और कभी अविश्वास के विचारों में चक्कर लगाते हुये वह स्वभावत: यही विचार करने लगा कि गुप्त संधि पत्र शायद सिराजुद्दौला ही का केवल कूट-कौशल है। मीरजाफर ने उससे मित्रता संस्थापित करके शायद पुरानी बातों को भुला दिया है। सामने भागीरथी अपनी तरल तरङ्गों से समुद्र की ओर प्रवाहित हो रही थी। क्लाइव ने सोचा कि अभी बरसात के दिन नहीं हैं, अतएव इस समय भी नदी के पार उतर जाने की पूरी सम्भावना है। फिर सोचा पार उतर जाना जितना आसान है, उधर से लौटना भी क्या उतना ही आसन है? क्लाइव के होश हवास जाते रहे। उसका इतिहास-प्रसिद्ध बाहु-बल और रण-कौशल मानो एकाएक शिथिल पड़ गया। सोचने लगा कि शायद अशुभ मूहूर्त में फौज का कूच हुआ अथवा

बुरी घड़ी में बागियों के भरोसे सिराजुद्दौला के विरूद्ध तलवार उठाई। आगे चलकर हाउस आफ कामन्स के सामने गवाही देते समय भी इसी दिन की बात को याद करके क्लाइव ने स्वीकार किया है:—

"मैं बड़ा ही भयभीत हुआ कि यदि कहीं हार गया तो हार का समाचार ले जाने के लिए भी एक आदमी को जिन्दा वापस जाने का मौका न मिलेगा।"

सोमवार को तीसरे पहर के समय मीरजाफर के पास से एक ही साथ दो पत्र आये। एक क्लाइव के नाम दूसरा उमर बेग के नाम। इन दोनों पत्रों से सन्देह दूर हो गया। परन्तु अंग्रेजों के पास घुड़सवार सेना न होने के कारण क्लाइव की आशंका बहुत बढ़ने लगी। उसने सुना था कि महराजा वर्धमान के साथ सिराजुद्दौला की अनबन है अतएव लाचार होकर क्लाइव ने महराज वर्धमान को लिख भेजा कि:—

"आपकी घुड़सवार सेना चाहे एक हजार से भी अधिक न हो, तथापि उसी को लेकर आप हमारे साथ आ मिलिए।"

यह पत्र लिखकर भी क्लाइव की चिन्ता दूर न हुई। उसकी आज्ञा के अनुसार २१ जून मंगलवार को युद्ध सभा की बैठक हुई।

दु:ख और चिन्ता से जर्जरित बीस अँग्रेज सरदार कटोया

के किले की युद्ध सभा में सम्मिलित हुए। इस सभा में क्लाइव ने किस आसय का प्रश्न उपस्थित किया था, इस विषय में इतिहास में बड़ा मतभेद पाया जाता है।

हाउस आफ कामन्स में गवाही देते समय क्लाइव ने स्वयं कहा है कि:—"मैंने उस सभा में यह प्रश्न किया था कि इसी समय नदी पार करके सिराजुद्दौला पर आक्रमण करना उचित है अथवा और समाचार आने के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिये ?"

क्लाइव चरित्र-लेखक सर जान मालकम लिखते हैं कि क्लाइव के जो कागज-पत्र मेरे हाथ आ गये थे, उनमें उक्त सभा की कार्यवाही का विवरण-पत्र भी था। उसमें यह प्रश्न इस रूप में लिखा था:—"वर्तमान अवस्था में दूसरों की सहायता न लेकर अपने ही बाहु-बल से नवाब के पड़ाव पर आक्रमण किया जाय अथवा देशी शक्तियों की सहायता न पाने तक रुके रहा जाय ?"

इस सम्बन्ध में हाउस आफ कामन्स में गवाही देते समय युद्ध-सभा के दूसरे सदस्य मेजर कूट ने कहा है कि उक्त प्रश्न इस प्रकार था:—"ऐसी दशा में फौरन ही नवाब के साथ युद्ध ठान देना उचित है अथवा वर्षा ऋतु बीतने तक काटोया में आत्मरक्षा करके अपनी सहायता के लिए मराठों की सेना को बुलाना युक्ति-संगत है ?" उसी समय के इतिहास-लेखक अर्मी

ने भी इसी अशय का उल्लेख किया है। वह उक्त प्रश्न को इस तरह से लिखता है:—"क्या फौज शीघ्र ही कासिम बाजार के द्वीप तक पहुँच कर चाहें जो कुछ भी क्यों न हो नवाब पर आक्रमण करे, अथवा काटोया में जो बहुत से चावल मिले हैं, उन्हें बरसात भर बैठे-बैठे खाँयँ और उसके बाद मराठों को बुलाकर उनसे मिल जाँय ?"

क्लाइव के कागज-पत्रों में "देशी-शक्तियों" से सहायता लेने की बात पाई जाती है। और अर्मी के इतिहास तथा मेजर कूट के इजहारों में "मराठा-शक्ति" का उल्लेख मिलता है। परन्तु क्लाइव के इजहारों में किसी देश की शक्ति की सहायता का कहीं नाम मात्र को भी जिक्र नहीं आया है। उनमें सिर्फ यही कहा गया है कि और समाचार आ जाने के लिए कुछ समय तक ठहरना उचित है या नहीं ! न मालूम इजहार देते समय क्लाइव से यह मोटी भूल कैसे

क्लाइव ने जिस समय हाउस आफ कामन्स में गवाही दी थी उस समय वह लेफ्टिनेन्ट कर्नल क्लाइव नहीं था। पलासी विजेता लार्ड क्लाइव था और इंगलिस्तान की जनता में नवाब क्लाइव के नाम से प्रसिद्ध था। क्या उस वह समय पिछलीबातें भूल गया था ? कुछ लोग कह सकते हैं कि बहुत दिनों तक इतनी बातें याद रखनी असम्भव है; परन्तु दुख की बात तो यह है कि जिस स्थान पर आत्म गौरव को बढ़ाना और अपने

को निर्दोष सिद्ध करना अभीष्ट था, ठीक उसी जगह आकर क्लाइव की स्मरण शक्ति शिथिल पड़ गई। यही उसके इजहारों में एक प्रधान दोष था !

जिस व्यक्ति ने एक बार अपने स्वार्थ-साधन के लिए जान बूझकर जाल-साजी की थी और वैसी दशा मे और भी सौ बार वैसे ही काम करने के लिए तैयार था, उस व्यक्ति ने कुछ दिन बाद आत्म-गौरव को बढ़ाने और अपराधों की सफाई देने के लिए हाउस आफ कामन्स जैसे धर्माधिकारी न्यायालय के सामने जान-बूझकर दो एक नितान्त आवश्यक बातें गोल मोल करके इजहार दिया था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

अलीनगर की सन्धि के बाद क्लाइव ने जिस समय यह खबर पाई थी कि सिराजुद्दौला की तोपें अभी तक नहीं आई हैं, उस समय वह रात्रि में शत्रु का संहार कर डालने के लिए सबसे पहले तैयार हुआ था। चन्द्रनगर पर आक्रमण करने के पहले जिस समय यह समाचार मिला कि मद्रास से फौज आ रही है और सिराजुद्दौला पठानों के भय से भयभीत हैं, तो उस समय सदस्यों के पूर्णरूप से सहमत न होने पर भी क्लाइव ने बड़े अभिमान के साथ कहा था कि, "अभी बात की बात में चन्द्रनगर का सर्वनाश करूँगा।"

उमर बेग ने जिस समय सन्धि-पत्र लाकर दिया था, उस समय भी क्लाइव बड़े जोर शोर के साथ फौज लेकर पलासी की

ओर अग्रसर हुआ था। परन्तु काटोया में आ करके उसका जोशीला हृदय वैसा उत्साह प्रकट न कर सका और इस आशंका से कि पीछे से कहीं सैनिक गण एकमत हो युद्ध-यात्रा की राय देकर उसे भयानक विपत्ति में न डाल दें वह पहले ही अपना मत प्रकट करके कहने लगा, "मेरी राय है कि जहाँ तक आ गये हैं, वहीं ठहरें। आप लोगों की क्या सम्मति है।" इस प्रस्ताव को बारह सरदारों ने स्वीकार कर लिया। परन्तु सब से छोटे अफसर मेजर कूट ने इसका विरोध करते हुए कहा:—

'आप लोग बड़ी भारी भूलकर रहे हैं! फौज को अब भी विश्वास है कि वह निश्चय ही विजय प्राप्त करेगी। शत्रु के सामने आकर साहस छोड़ बैठने से सेना भी हतोत्साह हो जायगी और फिर उसे किसी तरह भी उत्तेजित न किया जा सकेगा। फ्रान्सीसी सेनापति लास खबर पाते ही नवाब की फौज के साथ मिल जायगा। उस समय नवाब की शक्ति भी बढ़ जायगी। उनके सैनि क हम लोगों को घेर कर कलकत्ते की ओर भागने का रास्ता भी रोक देंगे और अनेक नई आपदाओं में फँस कर शायद बिना युद्ध के ही हम लोग पराजित हो जायँगे। आओ शीघ्र आगे बढ़ो नहीं तो यहाँ से तुरन्त भाग चलो। इस जगह ठहरना उचित नहीं हैं।"

छः सेनापतियों ने मेजर कूट के इस मत का समर्थन किया।

परन्तु उन सब की बात को मान कर कार्य का रूप नहीं दिया गया। क्लाइव ही की राय प्रबल रही इसलिए काटोया से होने वाली वह युद्ध-यात्रा रुक गई।

हाउस आफ कामन्स में गवाही देते समय क्लाइव ने कहा है कि :—

"मेजर कूट और कमान ग्रान्ट के अतिरिक्त और सभी ने युद्ध के विरोध में राय दी थी। उन दोनों की राय पर ध्यान देने से कम्पनी का सर्वनाश होता, इसीलिए मैंने उनके कथन की अवहेलना की थी।"

क्लाइव ने स्वयं ही सबसे पहले युद्ध के विरुद्ध अपनी राय प्रकट करके अन्यान्य सेना-नायकों को अपने ही अनुकूल मत प्रकट करने का सहारा दे दिया था, परन्तु उसके इजहारों में इस बात का उल्लेख नहीं है। बल्कि इजहारों को पढ़ने से यही समझ में आता है कि, "अधिकांश लोग युद्ध का विरोध कर रहे थे। कम्पनी के कल्याण के लिए केवल वही अकेला युद्ध के पक्ष में खड़ा हुआ था!" यहां पर भी क्या क्लाइव की स्मरण-शक्ति सहसा शिथिल पड़ गई थी ? मेकाले ने कहा है:—

"अफीम के पीनक में डूबा हुआ क्लाइव बीच-बीच में चौंक पड़ता था।"

परन्तु उससे ये सब मोटी-मोटी भूलें अफीम के नशे में हुई थी अथवा स्मरण-शक्ति में शिथिलता आ जाने से ? इसके निर्णय का अब कोई उपाय नहीं है।

युद्ध-सभा के सदस्यों की राय के प्रति उपेक्षा प्रकट करके सहसा क्लाइव के शरीर में फिर शूरता और वीरता का संचार किस लिए हुआ था, इसके सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद पाया जाता है। अर्मी ने लिखा है कि:—

"सभा विसर्जित होते ही पासवाले घने जङ्गल के भीतर प्रवेश कर एक घन्टे तक गम्भीर ध्यान में निमग्न रह कर क्लाइव स्वयं ही समझ गया था कि आगे न बढ़ना ही मूर्खता है। इसीलिए उसने डेरे पर वापस आते ही फौज को आज्ञा दी कि सबेरे तड़के ही गङ्गा को पार करना होगा।"

परन्तु क्लाइव के विश्वासपात्र साथी स्क्रैफ्टन ने लिखा है कि:—

"२२ जून को मीरजाफर का पत्र पाते ही क्लाइव का इरादा बदल गया था और उसकी आज्ञा से २२ जून को सायंकाल के ५ बजे अंग्रेजी फौज गङ्गा के पार हुई थी।"

किसकी बात सत्य है ? कौन दिन, किस समय और किस

लिए क्लाइव की राय में परिवर्तन हो गया था स्वयं उसी का यह कथन है कि:—

"किसी के सिखाने से मेरा मत नहीं बदला। विशेष विवेचना करने के बाद मैंने स्वयं ही अपना निश्चय बदल दिया था।"

परन्तु उसके विश्वासपात्र साथी ने इस बात को अस्वीकार किया है। फिर, किसकी बात विश्वास के योग्य है!

स्टुअर्ट, मालकम और मेकाले ने अर्मी के लिखे प्राचीन इतिहास से प्रमाण लिया है। अर्मी ने लिखा है कि:—

"२२ जून को तीसरे पहर चार बजे के समय मीरजाफर के पास के आया हुआ वास्तविक पत्र पाकर क्लाइव ने उसका उत्तर दिया।"

मीरजाफर का पत्र यह था:—

"नवाब मनकरा गाँव में, जो कासिम बाजार से दक्खिन छः मील की दूरी पर है, ठहरा है और वहीं पर खाईं खोदकर, सेना के सहित प्रतीक्षा कर रहा है, जहाँ पर मैंने आपको द्वीप के स्थल-भाग से फौजकशी करते हुए एकाएक उस पर आक्रमण करने की राय दी है।"

क्लाइव ने इस पत्र का यह उत्तर दिया:—

"मैं शीघ्र ही बिना विलम्ब के पलासी तक बढ़ जाऊँगा और दूसरे दिन सबेरे छः मील आगे दाऊदपुर गाँव में चला जाऊँगा परन्तु यदि आप मुझे वहाँ न मिले, तो मैं नवाब से सन्धि कर लूंगा।"

इन सब अकाट्य प्रमाणों के विरुद्ध २२ जून के प्रातःकाल को गङ्गा पार होने की बात का उल्लेख कर अर्मी ने स्क्रैफ्टन के कथन का खंडन किया है और यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि ध्यान-योग से क्लाइव के मन में परिवर्तन हुआ था। अर्मी की तरह एक और समकालीन इतिहास-लेखक भी २१ जून को मत-परिवर्तन होने की बात लिखता । परन्तु उसने भी साफ लिख दिया है कि:—

"इसी दिन शाम को मीरजाफर का एक पत्र आया था, जिसमें लिखा था कि, 'सन्धि में जो बातें तै हुई हैं उनका यथोचित पालन होगा। परन्तु मैं जासूसों से ऐसा घिरा हूँ कि मुझे बड़ी सावधानी से काम करना पड़ेगा।' इस पत्र को पाकर क्लाइव ने दूसरे दिन प्रातःकाल ही गंगा के पार होकर आगे बढ़ने का संकल्प किया था।"

यहाँ पर हमें यह स्वीकार ही करना पड़ेगा कि उस समय के राज्य-विप्लव संगठित होने के मूल कारण हमीं थे। हमारे मीरजाफ़र, हमारे रायदुर्लभ, हमारे जगत सेठ और

हमारे हिन्दुस्तानी राज-कर्मचारियों का विश्वासघात ही सिराजुद्दौला के सर्वनाश और देश की पराधीनता का मूल कारण हुआ।

पलासी का युद्ध

घायल सिपाहियों को काटोया के किले में सुरक्षित रखकर बाकी अंग्रेजी फौज २२ जून सन् १७५७ को सायंकल के समय भागीरथी के पार होकर मीरजाफर के बताये हुए रास्ते से दल बाँधकर आगे बढ़ने लगी। पलासी का मैदान साढ़े सात कोस था। इस आशंका से कि कहीं नवाब की सेना पलासी पर अधिकार न जमा ले—अंग्रेजी फौज रात-दिन बड़ी तेजी से और अनेक प्रकार के कष्ट झेलकर एक बजे पलासी के बाग मे पहुँच गई।

सिराजुद्दौला मनकरा छोड़कर कुछ और दक्खिन को बढ़ गया था और जिस स्थान पर गगा घोड़े के टाप की तरह तिरछी बहती है उसके पूरव की ओर तेजनगर वाले लम्बे चौड़े मैदान के उत्तरी भाग में पड़ाव डाल चुका था। इसके दक्खिन की ओर मिट्टी की नीची-सी दीवार, एक कुआँ और दो पुराने तालाब थे। सिराजुद्दौला की फौज के बाजों से बहुत दूर तक यह बन-भूमि प्रतिध्वनित होती थी। अतएव क्लाइव ने समझा कि शत्रु पास है। उस रात को अंग्रेजी सिपाही तो खूब सोये परन्तु सेनापतियों को आँख लगाने का मौका न मिला। वे

हर घड़ी सिर्फ सोच-विचार में पड़े रहे कि आगे क्या होता है !

सिराजुद्दौला ने भी सोने का अवसर न पाया। अकेले सुनसान डेरे में बैठे हुए घड़ी-पल गिनते-गिनते सवेरा हो गया। चिन्ता से क्लेशित व्यथित चित मन्द-मन्द प्रकाश में वह अकेला उदास बैठा हुआ था कि इतने में एक चालाक चोर मौका पाकर उसके सामने ही से गुड़गुड़ी उठाकर ले भागा । सिराजुद्दौला सोते से उठे हुए की तरह उसके पीछे दौड़ा। बाहर आया तो देखा कि उसके संतरी आदि नौकर-चाकर सब न जाने किधर कहाँ भाग गये हैं। सिराजुद्दौला अत्यन्त मर्म-पीड़ित स्वर में धीरे धीरे कहने लगा—"हाय ! इन्होंने मुझे जीते ही जी मुर्दों में शुमार कर लिया।"

अँग्रेजों ने जिस बाग में अपनी सेना जुटाई थी उसका नाम था लक्खी बाग। लोगों का कहना है कि उसमें एक लाख पेड़ थे। उस बाग के पच्छिम उत्तर कोने में एक ऊँचे टीले पर एक मकान था जिस पर चढ़कर शिकार खेला जाता था वह मृगयामञ्च के नाम से प्रसिद्ध था। क्लाइव ने उसके पास में लक्खीबाग के उत्तर की ओर खुले हुये मैदान में व्यूह की रचना की। सिराजुद्दौला ने भी तड़के ही मीरजाफर, रायदुर्लभ और यारलतीफ को पड़ाव से आगे बढ़ने की आज्ञा दी। इसलिए वे अर्द्धचन्द्राकार में सेनाओं की व्यूह रचना करके कतारों में

उड़ते हुये बगुलों के झुण्ड की तरह मन्द-मन्द गति से बाग को घेरने के लिए आगे बढ़ने लगे।

अंग्रेजों ने देखा कि चक्र व्यूह यदि बाग को घेर कर तोपों में आग लगाने लगा तो सर्वनाश ही हो जायगा। इसलिये क्लाइव की गोरा पलटन चार दलों मे विभक्त होकर मेजर किलप्याट्रिक, मेजर ग्राण्ट, मेकर कूट और कप्तान गफ की अधीनता में अपने-अपने हथियार उठाये। बीच में गोरा लोग दायें-बायें और हिन्दुस्तानी सिपाही तोपें सामने करके कतारें बाँध कर खड़े हुये। मीर मदन की फौज सामने वाले तालाब के किनारे पर एकत्र हुई थी। एक ओर फ्रान्सीसी वीर सिनफ्रे, एक ओर वीर मोहन लाल और बीच में सेनापति मीरमदन ने फौज-कशी का भार अपने ऊपर लिया।

सिराजुद्दौला की सेना बख्तर की झूलों से ढके हुये जङ्गी हाथी, सुशिक्षित घोड़े और सुसज्जित तोपें जिस समय धीरे-धीरे सामने को बढ़ने लगी उस समय अंग्रेजों ने सोचा कि सिराजुद्दौला की सेना को जीत सकना बड़ा ही कठिन काम है। जीतना तो दूर रहा सेना की व्यूह का भेद कर सकना भी असम्भव है!

आठ बजे के समय मीरमदन ने तालाब के किनारे से तोपों में आग लगाई। पहले ही गोले से अंग्रेजों की फौज का एक आदमी मरा और एक घायल हुआ। उसके बाद लगातार तोपें

चलने लगी। आध घण्टे तक इसी प्रकार युद्ध होता रहा। अंग्रेजों की जौज के सिपाही धीरे-धीरे जमीन पर गिरने लगे। इस आध घण्टे में १० गोरे और २० हिन्दुस्तानी सिपाही मारे गये। अंग्रेजों की तोपें भी चुप न थीं, उनके प्रचण्ड पीड़न से नवाब की सेना भी धराशायी हो रही थी। परन्तु उससे नवाब के गोलंदाजों की कोई हानि न हुई। वे सकुशल वीरता-पूर्वक अंग्रेजों की फौज के बीच में मिनट-मिनट पर गोले बरसाने लगे। आध ही घण्टे में क्लाइव की युद्ध-पिपासा मिट गई। इसी आध ही घण्टे में उसने समझ लिया कि प्रत्येक मिनट में एक आदमी के मरने और अनेक के जख्मी होने से मेरे तीन हजार सिपाही बहुत समय तक अपनी वीरता प्रकट करने का अवसर न पायेंगे। अतएव अपनी रक्षा के लिए क्लाइव को पीछे हटना पड़ा। अंग्रेजी सिपाहियों की दो तोपें बाहर रह गईं और चार तोपें लेकर वे बाग के भीतर आकर छिप गये। क्लाइव की आज्ञा से सब लोग पेड़ों की आड़ में बैठ गये। नवाब की तोपों का मोरचा चार हाथ ऊँचा था, अतएव मीर-मदन की तोपों के गोले तड़ातड़ अंग्रेजी फौज के ऊपर से छूटने और कुछ पेड़ों की डालों से टकराने लगे।

पेड़ों की आड़ में छिपे रहने पर भी क्लाइव की आशंका दूर नहीं हुई। नवाबी फौज की व्यूह-रचना और युद्ध कौशल से उसका दिल पीपल के पत्ते के समान काँपने लगा। उसने अमीचन्द को बुरा-भला कहना शुरू किया:—

"मैंने तुम्हारा विश्वास करके बड़ा बुरा काम किया! तुमने कहा था कि थोड़ी देर तक वह ही केवल दिखावे के लिए ही युद्ध का नाटक खेला जायगा, उसके बाद सारी कामनाएँ सफल हो जायँगी। सिराजुद्दौला की फौज रण-क्षेत्र में अपनी वीरता न दिखायेगी। इस समय तो बिलकुल उसके विपरीत हो रहा है।"

इस प्रकार क्लाइव की डांट फटकार सुनकर अमीचन्द ने बड़े ही विनीत भाव से निवेदन किया कि:—

"केवल मीरमदन और मोहन लाल की सेनाएँ ही लड़ रही हैं। यही दोनों सिराजुद्दौला के सच्चे सहायक और स्वामिभक्त हैं। सिर्फ इन्हीं को किसी तरह कष्ट झेलकर पराजित करना है। बाकी नवाब के जितने सेनापति हैं, उनमें से एक भी हथियार नहीं चलायेगा।"

मीर मदन सामने बढ़कर बड़ी वीरता से गोले चलाने लगा। उस समय मीरजाफर की सेना यदि और जरा आगे बढ़कर तोपों में आग लगाती तो बचाव बहुत ही कठिन था। परन्तु मीरजाफर, यारलतीफ और रायदुर्लभ ने जहाँ-तहाँ अपनी सेनाए जुटाई थी, उन्हीं स्थानों पर वे सब चित्र में खिंचे हुए से खड़े-खड़े युद्ध का तमाशा देख रहे थे। पसीने में तर क्लाइव ने १२ बजे के समय सबकी सम्मति लेने कें लिए युद्ध-सभा का अधिवेशन किया। उस सभा में यह निश्चय हुआ कि

सारे दिन बाग में छिपे रह कर किसी न किसी तरह आत्म-रक्षा की चेष्टा करनी होगी। "पलासी-विजेता क्लाइव" ने इस तरह से छिप-छिपाकर अपने प्राणों की रक्षा करके ही युद्ध में विजय प्राप्त किया, इस बात को वह स्वयं ही प्रकाशित कर गया है।

तोप के धुएँ से आकाश ढँक गया। उस पर आषाढ़ के नये बादलों से पृथ्वी में और भी अंधकार छा गया। ठीक दोपहर के समय तड़ातड़ पानी बरसने लगा। मीरमदन की बहुत-सी बारूद भीग पड़ गई और तोपें शिथिल गईं। फिर भी वह वीरतापूर्वक शत्रु के सर्वनाश का उपाय कर ही रहा था कि इतने में अंगरेजों के एक गोले ने आकर उसकी जाँघ तोड़ डाली।

सेनापति मीरमदन वीरों की भाँति भागे हुए शत्रु के पीछे धावा कर रहा था दुर्भाग्य से उसके सांघातिक चोट लगी मोहन लाल युद्ध करने लगा। मीरमदन को लोग हाथोंहाथ उठा-कर सिराजुद्दौला के पास ले आये। उसने अधिक कुछ कहने का मौका न पाया। केवल इतना ही कहा कि :—

"शत्रु की सेना बाग में भाग गई है, फिर भी आप के कोई भी सरदार युद्ध नहीं कर रहे हैं। अपनी-अपनी फौजों के साथ तस्वीर की तरह खड़े तमाशा देख रहे हैं।"

बस, इतना कहते-कहते मीरमदन की विशाल भुजाएँ निर्जीव

हो गईं। सिराजुद्दौला के शिर पर मानो आकाश टूट पड़ा। एक मात्र मीरमदन के भरोसे वह शत्रु के कूट कौशलों की पर्वाह न करता था। लाचार होकर सिराजुद्दौला ने मीरजाफर को फिर एक बार उत्तेजित करने के लिए बुलाया।

मीरजाफर ने बहुत कुछ बहाने बाजी और ढील-ढाल करके अन्त में अपने प्रिय पुत्र मीरन और दूसरे अमीर उमरावों को साथ ले दल बांधकर बड़ी सावधानी के साथ कदम रखते हुए सिराजुद्दौला के डेरे में प्रवेश किया। उसने ख्याल किया था कि शायद सिराजुद्दौला उसे कैद कर लेगा, परन्तु डेरे में प्रवेश करते ही सिराजुद्दौला ने अपना राजमुकुट उसके सामने रख दिया और व्याकुल-चित होकर कहने लगा:—

"जो होना था वह हो गया। तुम्हारे अतिरिक्त अब इस राज-मुकुट की रक्षा करने वाला कोई नहीं है। नाना अलीवर्दी जीवित नहीं हैं। तुम्हीं इस समय उनका स्थान पूरा करो। ऐ मीरजाफर! अलीवर्दी के पवित्र नाम को स्मरण करके मेरी इज्जत बचाओ और मेरी जिन्दगी के सहायक बनो।"

मीरजाफर ने यथोचित रीति के अनुसार सम्मान-पूर्वक राज-मुकुट को अभिवादन करते हुए छाती पर हाथ रखा और बड़े ही विश्वस्त भाव से कहा:—

"अवश्य ही शत्रु पर विजय प्राप्त करूँगा। परन्तु अब शाम हो गई है। सवेरे से लड़ते-लड़ते युद्ध के परिश्रम से फौजें शिथिल

पड़ गई हैं। आज सारी फौजें युद्ध के मैदान से पड़ाव में वापस आ जायँ सवेरे फिर युद्ध होगा।"

मीरजाफर की बातों को ध्यान पूर्वक सुन लेने के बाद सिराजुद्दौला ने कहा:—

"अंग्रेजी सेना के रात्रि में आक्रमण करते ही क्या सर्वनाश न होगा ?"

इतना सुनते ही मीरजाफर ने बड़े अभिमान के साथ कहा:—

"फिर हम किस लिए हैं ?"

सिराजुद्दौला को तुरन्तु मतिभ्रम हो गया। वह मीरजाफर की बातों में आ गया और उसकी साहस पूर्ण बातों से अपने को भूलकर अपनी फौजों को पड़ाव में वापस आने की आज्ञा दे दी। महाराज मोहनलाल उस समय अपूर्व वीरता के साथ बड़ी तेजी से शत्रु की सेना पर धावा कर रहा था। उसने सम्मान-पूर्वक कहला भेजा कि:—

"बस अब दोही चार घड़ी में लड़ाई समाप्त हो जायगी। भला यह समय क्या युद्ध के मैदान से लौटने का है? एक कदम भी पीछे हटने से सिपाहियों की सेना का छत्र भंग होगा और सर्व नाशकारी परिणाम हो जायगा। मैं लौटूँगा नहीं, लड़ाई के मैदान से न हटूँगा।"

इस समाचार से मीरजाफर का दिल दहल गया। उसने विविधि उपायों से सिराजुद्दौला को समझा बुझाकर सन्तुष्ट किया और मोहनलाल के पास फिर दुबारा खबर भेजी :—

"अब शान्त हो पड़ाव में वापस आओ।"

इस पुनः संवाद से अत्यन्त क्रुद्ध और क्षुभित होकर मोहन-लाल के दोनों नेत्रों से आग की चिनगारियाँ-सी छूटने लगीं। परन्तु क्या करता ? वह एक मामूली सरदार था। समर-क्षेत्र में सेनापति की आज्ञा का उल्लङ्घन न कर सका। निराश हो कतारें बाँधकर पड़ाव की ओर लौटने लगा। मीरजाफर की कामना पूरी हुई। उसने फौरन ही क्लाइव को लिख भेजा:—

"मीरमदन मर गया। अब छिपने का कोई काम नहीं। इच्छा हो, तो इसी समय नहीं तो रात के तीन बजे पड़ाव पर आक्रमण करना। सहज ही में सारा काम बन जावेगा।"

मोहनलाल को पड़ाव की ओर वापस जाते देखकर अंग्रेजी फौज बाग से बाहर निकलने लगी। क्लाइव इस समय उसी मृगयामञ्च वाले मकान में कपड़े बदल रहा था। किसी-किसी ने कहा है कि वह उस समय निश्चिन्त सोया हुआ था। मेजर किलप्याट्रिक बाग में फौज को तैयार कर रहा था। अंग्रेजी सेना पुनः बाग के बाहर खुले मैदान में जमा हुई। यह खबर

पाते ही क्लाइव दौड़ा आया और फौज में घुस पड़ा। साथ ही साथ इस अपराध में उसने किलप्याट्रिक को कैद कर लिया कि बिना उसकी आज्ञा के किलप्याट्रिक ने ऐसा साहस क्यों किया। परन्तु पीछे जब क्लाइव अपनी गलती को समझ गया तब उसने स्वयं फौजकशी का भार अपने ऊपर लिया और मेजर किलप्याट्रिक के उदाहरण का अनुसरण करते हुए धीरे धीरे आगे बढ़ना आरम्भ किया। उसे देखकर नवाब के बहुतेरे सिपाही भागने लगे। परन्तु फान्सीसी बीर सिन्फ्रे और बीर मोहनलाल घूमकर खड़े हो गये। उनकी फौजों ने पीछे कदम नहीं हटाया।।वे बीरता और निर्भीकता-पूर्वक प्राणपन से युद्ध करने लगे।

इस ओर अनेक सिपाहियों को इधर-उधर भागते देखकर स्वार्थान्ध रायदुर्बल सिराजुद्दौला को भी भागने के लिए उत्तेजित करने लगा। सिराजुद्दौला ने सहसा रण-क्षेत्र को परित्याग नहीं किया। मुसलमान इतिहास-लेखक ने लिखा है कि:—

"जिस समय दिन का अन्त हो रहा था, उस समय सिराजुद्दौला ने देखा कि अपनी असंख्य सेना-सरदारों में से कुछ थोड़े ही से आदमी मेरे पक्ष में लड़ रहे हैं। ऐसी दशा में उसने सोचा कि राजधानी की रक्षा के लिए मुर्शिदाबाद को चलना उचित हैं। राजबल्लभ ने भी इसी राय का समर्थन किया।"

अवसर पाकर मीरजाफर अंग्रेजों की सेना को मदद देने के लिए बड़ी खुशी के साथ आगे बढ़ा। परन्तु अंग्रेज लोग शत्रु मित्र को न पहिचान कर उसके ऊपर भी गोले बरसाने से नहीं चूके। तीसरे पहर पाँच बजे तक अविराम युद्ध करते-करते मोहन लाल और सिनफ्रे भी नवाब के विश्वास-घाती सेना-नायकों से खीझ कर रणक्षेत्र छोड़ने पर बाध्य हुये।

सिराजुद्दौला की सेना में अकेला मीरजाफर ही विश्वासघा-तक न था। वास्तव में उसकी सारी सेना विश्वासघातकों से छलनी-छलनी हो चुकी थी। राजदुर्लभ यारलतीफ भी अपने तईं शत्रु के हाथ बेच चुके थे। ऐन मौके पर जब कि विजय सिराजुद्दौला के पैरों के पास खेलती हुई सी दिखाई देती थी, मीरजाफर, रायदुर्लभ और यारलतीफ अपनी ४५००० सेना के सहित मुड़कर अंग्रेजों की ओर जा मिले। कर्नल मालेसन लिखता है कि:—

"जब तक मीर मदन जिन्दा रहा तब तक वह अपनी केवल १२०० सेना से तीनों विश्वासघातकों के प्रयत्नों को निष्फल करता रहा। उसके जीते जी अंग्रेजी सेना के लिये अपने पैर जमा सकना सर्वथा असम्भव था। किन्तु मीर मदन की मृत्यु से सिराजुद्दौला लाचार हो गया। उसका दिल टूट गया।

आज तक पलासी ग्राम के लोग मीरजाफ़र की दगा और मीरमदन की वफ़ादारी दोनों का अत्यन्त करुण भरे शब्दों में ज़िक्र करते हैं।

बहुत थोड़े रक्तपात के बाद २३ जून सन् १७५७ की शाम को पलासी के युद्ध में पराजित होकर असहाय सिराजुद्दौला को अपने हाथी पर सवार होकर मुर्शिदाबाद की ओर जाना पड़ा। मैदान क्लाइव के हाथों में रहा।

सुप्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहास लेखक कर्नल मालेसन उस दिन के संग्राम के विषय में लिखता है :—

"केवल उस समय जब कि विश्वासघातकता अपना काम कर चुकी, जब कि विश्वासघातकता ने नवाब को मैदान से बाहर निकाल दिया और जब कि विश्वासघातकता नवाब की सेना को ऊँचे स्थान से हटा चुकी, केवल उस समय क्लाइव आगे बढ़ सका। इससे पहले क्लाइव के आगे बढ़ने में उसका और उसकी सेना का नेस्त व नाबूद हो जाना निश्चित था।"

क्लाइव ने अपनी सेना के साथ पास के ग्राम दादपुर में रात गुज़ारी। शुक्रवार २४ तारीख को सबेरे क्लाइव ने मीरजाफ़र को अपने खेमे में बुलाया। मीरजाफ़र अपने पुत्र मीरन के साथ क्लाइव के खेमे में पहुँचा। मालूम होता है कि मीरजाफ़र का पाप इस समय उसकी छाती पर सवार था। सम्भव है कि

क्लाइव की ओर से भी उसके दिल में दगा का डर रहा हो। क्लाइव के सामने पहूँचते ही ठीक उस समय जब कि गारद उसकी पेशवाई के लिए आगे बढ़ी मीरजाफर घबरा कर चौंक पड़ा। उसका चेहरा एकदम स्याह पड़ गया। क्लाइव ने फौरन उसे गले लगाकर तीनों प्रान्तों का सूबेदार कहा और सलाम किया। मीरजाफर सम्हला। क्लाइव ने उसे विश्वास दिलाया कि अंगरेज धर्म समझकर अपने वादों को पूरा करेंगे। इसके बाद क्लाइव ने उसे सिराजुद्दौला का पीछा करने की सलाह दी। फौरन वहाँ से कूचकर २५ तारीख को सबेरे मीरजाफर मुर्शिदाबाद पहुँचा।

एक दिन पूर्व २४ तारीख को सबेरे सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद पहुँच चुका था। सिराजुद्दौला का ख़जाना लबालब भरा हुआ था। धन को पानी की तरह बहाकर उसने फिर एकबार फौज खड़ी करने और अपनी किस्मत आजमाने का प्रयत्न किया। किन्तु पलासी की हार का समाचार सारे देश में बिजली की तरह फैल चुका था। सिराजुद्दौला के भाग्य का सूर्य अब अस्त हो रहा था और अस्त होने वाले सूर्य की पूजा कोई नहीं करता। सिराजुद्दौला ने देख लिया कि अब कोई मेरा साथ देने के लिए तैयार नहीं है।

उसके कुछ दर्बारियों ने उसे सलाह दी अब आप भी हार मानकर अंगरेजों के साथ सन्धि कर लें, किन्तु उस वीर ने

अत्यन्त तिरस्कार के साथ इस सलाह को ठुकरा दिया। अन्त में देश-द्रोही मीरजाफ़र के आने का समाचार सुनकर और कोई चारा न देख कर २४ जून की आधी रात को सिराजुद्दौला केवल अपने अनुचरों के साथ महल का एक खिड़की से होकर फकीर के भेष में भगवान गोला नामक नगर की ओर निकल गया।

२५ जून को सबेरे मीरजाफ़र मुर्शिदाबाद पहुँचा। उसके पीछे-पीछे २६ जून को क्लाइव अपनी सेना के साथ मुर्शिदाबाद आया। किन्तु तीन दिन तक क्लाइव मुर्शिदाबाद से लगभग छः मील बाहर सयदाबाद की फ्रान्सीसी कोठी में ठहरा रहा। उसके अपने पत्र से ज़ाहिर है कि वह इस समय एकाएक मुर्शिदाबाद के शहर में प्रवेश करने से डरता था।

२९ जून को मीरजाफ़र से समय निश्चित करके २०० गोरे और ५०० हिन्दुस्तानी सिपाहियों के साथ विजयी क्लाइव ने मुर्शिदाबाद के शहर में प्रवेश किया। कुछ दिनों बाद क्लाइव ने पार्लमेन्ट की कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था:—

"नगर के लोग, जो उस अवसर पर तमाशा देख रहे थे, कई लाख अवश्य रहे होंगे, और यदि वे चाहते तो लकड़ियों और पत्थरों से हम यूरोपियन लोगों को वहीं खतम कर सकते थे।"

यह अनुमान करना अब निरर्थक है कि यदि मुर्शिदाबाद के निवासी उस समय ऐसा कर बैठते, तो भारत के बाद इतिहास ने किस ओर पलटा खाया होता। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय क्लाइव ने नवाब मीरजाफर के एक पक्ष समर्थक की हैसियत से मुर्शिदाबाद मे प्रवेश किया था। बहुत सम्भव है कि यदि नगर-निवासियों को उस समय क्लाइव के वास्तविक रूप का पता होता, यदि उन्हें मालूम होता कि क्लाइव और उसके साथी इन चालों से अन्दर ही अन्दर भारत की आजादी छीनने की कोशिशें कर रहें हैं, तो बहुत सम्भव है कि नगर-निवासियों का व्यवहार क्लाइव के साथ कुछ दूसरा ही होता। किन्तु अभी तो विश्वासघातक मीरजाफर की आँखें खुलने में भी कुछ समय बाकी था।

२६ जून का तीसरा पहर मीरजाफर के राजगद्दी पर बैठाये जाने के लिए नियत था। मालूम होता है कि. उसका पापी दिल भीतर से अशान्त था। इसीलिए ऐन मौके पर उसने सिराजुद्दौला की राजगद्दी पर बैठने से इन्कार कर दिया। क्लाइव को उसका हाथ पकड़ कर उसे राजगद्दी पर बैठाना पड़ा। पहले क्लाइव नये नवाब के सामने होकर आदाब बजा लाया और फिर बाकी दरबारियों ने दर्जा-बदर्जा सलामियाँ दी।

मीरजाफर के नवाब होते ही कम्पनी और उसके मददगारों

के लिये मुर्शिदाबाद के खजाने से अपनी अपनी थैलियाँ भरने का समय आया। खजाने की जॉच पड़ताल के लिए एक दिन नियत किया गया। यह कार्य दोनों जैन जगत सेठों के सुपर्द किया गया। क्लाइव और उसके साथियों ने जब यह देखा कि मुर्शिदाबाद के खजाने की हालत, जैसी उन्होंने सुन रक्खी थी, वैसी अब न थी, तब वे इस बात पर राजी हो गये कि मीरजाफर ने जितना धन उन्हें देने का वादा किया था, उसमें से आधा फौरन अदा कर दे और आधा तीन वर्ष के अन्दर तीन किश्तों में दे दे। क्लाइव का परम मित्र अंग्रेज इतिहास-लेखक ओर्म लिखता है:—

"××× ६ जुलाई सन् १७५७ ईसवी तक (कलकत्ते के अंग्रेज) कमेटी के पास चांदी के सिक्कों में बहत्तर लाख एकहत्तर हजार छः सौ छासठ (७२,७१,६६६) रुपये पहुँच गये। यह खजाना सात सौ सन्दूकों में भरकर सौ किश्तियों में लादा गया। सैनिकों की निगरानी में ये सब किश्तियां नदिया गईं। वहाँ से अंग्रेजी जङ्गी जहाजों की तमाम किशितियों तथा दूसरी किश्तियों को साथ लेकर, झण्डे फहराती विजय का बाजा बजाती हुई आगे बढ़ी। ××× इससे पहले कभी भी अंग्रेज कौम को एक साथ इतना अधिक नकद धन कहीं किसी लड़ाई में न मिला था।"

बटवारे के समय छोटे से छोटे अंग्रेज अफसर को कम से

कम ४५,००० रुपये दिये गये किन्तु अपने हिन्दुस्तानी मददगारों के साथ क्लाइव और उसके साथियों ने फिर एक बार दगा की। इस तमाम साजिश में आदि से लेकर अन्त तक मुख्यतम भाग अमीचन्द का था। निस्सन्देह बिना अमीचन्द की सहायता के न बंगाल में अंग्रेजों का व्यापार इतना बढ़ पाता, न वे चन्दर नगर विजय कर सकते और न सिराजुद्दौला सूबेदारी की गद्दी से उतारा जा सकता। आज ही के दिन की आशा में अमीचन्द ने सिराजुद्दौला के भारतीय दर्बारियों और मुलाजिमों को विदेशी अंग्रेजों की ओर से रिश्वतें देने में अपने धन को पानी की तरह बहाया था। अमीचन्द ने अपनी आत्मा के साथ, अपने राजा और मालिक के साथ और अपनी कौम के साथ दगा की, किन्तु अंग्रेजों के साथ उसका व्यवहार बराबर सच्चा रहा। कहते हैं कि चोर-चोर आपस में एक दूसरे के साथ बड़ा सच्चा व्यवहार करते हैं, किन्तु क्लाइव, वाट्सन इत्यादि का व्यवहार अमीचन्द के साथ इसके विपरीत रहा।

अंगरेजों ने जो सन्धि मीरजाफर के साथ की थी, उसमें तेरह शर्तें थीं। अमीचन्द का उनमें कहीं जिक्र न था। यह सन्धि सफेद कागज पर लिखी हुई थी। उसी के साथ एक दूसरी जाली सन्धि चौदह शर्तों की लाल कागज पर लिखकर अमीचन्द को दिखाई गई थी, जिसमें एक चौदहवीं शर्त यह भी थी कि मीरजाफर को गद्दी दिये जाने के समय अमीचन्द को तीस लाख रुपया नकद और उसके अलावा नवाब के तमाम खजाने

का पाँच फी सैकड़ा दिया जायगा। वाट्सन ने इस जाली सन्धि पत्र पर दस्तखत करने से इन्कार कर दिया था, किन्तु क्लाइव ने लुशिंगटन नामक एक शख्स के हाथ से वाट्सन के जाली दस्तखत उस पर बनवा दिये थे। इस प्रसंग पर इससे पहले भी प्रकाश डाला जा चुका है। अब पाठक देखेंगे कि इसका क्या परिणाम होता है।

मीरजाफर के नवाब नियुक्त होने के बाद एक दिन जगत सेठ के भवन पर जब पहली बार सन्धि-पत्र पढ़कर सुनाया गया तब अमीचन्द चकित होकर चिल्ला उठा:—

"यह वह सन्धि नहीं हो सकती जो सन्धि मैंने देखी थी वह लाल कागज पर थी।"

इस पर क्लाइव ने उत्तर दिया:—

"ठीक है अमीचन्द, किन्तु यह सन्धि सफेद कागज पर लिखी हुई है।"

स्वभावत: अमीचन्द के दिल पर इस सदमें का जबर्दस्त असर हुआ। बाद में स्वास्थ्य ठीक करने के लिये क्लाइव ने उसे तीर्थ-यात्रा की सलाह दी। वह तीर्थ-यात्रा के लिए गया, किन्तु इस सदमें से डेढ़ वर्ष के अन्दर अमीचन्द की मृत्यु हो गई।

उन दिनों इंगलिस्तान में जाल-साजी की सजा प्राण-दण्ड

थी। किन्तु क्लाइव ने पार्लिमेंन्ट की कमेटी के सामने बड़े अभिमान के साथ अपनी इस जालसाजी का जिक्र किया और उसके बदले में क्लाइव को "लार्ड" की उपाधि दी गई।

इधर भगवान गोला से चलकर राजमहल के पास सिराजुद्दौला जब कालिन्द्री नदी के जल प्रवाह को पार कर रहा था और उसकी नाव जिस समय बखराबर हाल नाम के एक पुरातन ग्राम के पास पहुँची तो उस समय उसकी गति एकाएक रुक गई। नाजिरपुर का मुहाना पार कर लेते ही बड़ी गङ्गा में प्रवेश हो जाता, परन्तु जल के अभाव से नाजिर पुर का मुहान सूखा पड़ा था इसलिए नाव न चल सकी।

इस आकस्मिक दुर्घटना के कारण सिराजुद्दौला के सर्वनाश का सूत्रपात हुआ। उसका ख्याल था कि मेरे हार जाने की बात अभी दूर-दूर तक नही पहुँची है। इसी भरोसे पर वहा स्वयं नदी के किनारे पर उतर पड़ा। जितने मल्लाह थे वे सब इधर-उधर बिखर कर नदी के बहाव का पता लगाने लगे। इसी अवसर पर सिराजुद्दौला ने कुछ खाने-पीने के लिए पास की पुरानी मसजिद में आतिथ्य ग्रहण किया।

इस मसजिद में दानशाह नामक एक प्रसिद्ध मुसलमान फकीर का समाधि मन्दिर था। आज भी वह शाहपुर नामक ग्राम में टूटी-फूटी अवस्था में पड़ा है। मसजिद में रहने वाले आदमी एक छोटे से गाँव में सिराजुद्दौला के समान अतिथि की

नौका को देख कर बड़े आश्चर्य चकित हुये। बाद को जब उन्होंने मल्लाहों से पूछ-ताछ कर पता लगाया तब उन्हें सब हाल मालूम हुआ। मीरकासिम और मीरदाऊद की फौजें पास ही ठहरी थी। रुपये के लालच से लोगों ने उन्हें सिराजुद्दौला का पता दे दिया। भूख से सताये सिराजुद्दौला को रोटी का ग्रास भी गले से नीचे उतारने का मौका न मिला और वह परिवार के सहित मीर कासिम के हाथों में कैद हो गया।

अंगरेजों ने कहा है कि सिराजुद्दौला ने अपने बने जमाने में दानशाह नामक फकीर के नाक-कान कटवा डाले थे। विपत्ति के दिनों में उसी दान शाह ने अपना बदला लेने के लिए सिराजुद्दौला को पकड़वा दिया। महात्मा विवारिज ने इस कथन पर विश्वास न करके लिखा है:—

'यह लोगों द्वारा कही जानेवाली बात किसी भी दृष्टि कोण से ठीक नहीं हो सकती क्यों कि मुताखरीन के अनुवादक हाजी मुस्तफा ने अपनी टीका में लिखा है कि फकीर सिराजुद्दौला को कतई नहीं पहिचानता था। उसके कीमती खड़ाऊँ देखकर उसे सन्देह हुआ और फिर साथ के मल्लाहों से सब पता लगा कर उसने नवाब को पकड़वा दिया।'

सिराजुद्दौला जैसे धर्मानुरागी मुसलमान का दानशाह जैसे एक प्रसिद्ध मुसलमान फकीर के नाक कान काटना सर्वथा

ही असम्भव है। दानशाह के समाधि मन्दिर की शिला लिपि द्वारा और उसके वंशजों से प्रमाण संग्रह करके यह ज्ञात हुआ है कि दानशाह उस समय जीवित ही नहीं था।

यह तो ठीक ही जान पड़ता है कि सिराजुद्दौला कालिन्द्री के किनारे साहपुर नामक ग्राम में दानशाह के समाधि मन्दिर के पास ही कैद हुआ था । रियाजुस्सलातीन के रचयिता गुलाम हुसेन सलेमी मालदा के रहने वाले थे, उन्हीं की बात अधिक विश्वास के योग्य है । परन्तु दानशाह अथवा उसके वंशजों से इसका कुछ सम्बन्ध यह ठीक नहीं प्रतीत होता। एकमात्र सिर्फ हन्टर नामक अंगरेज ने लिखा है कि—

"दानशाह ने सिराजुद्दौला को पकड़वा कर मीरजाफर से एक बहुमूल्य जागीर प्राप्त की थी और स्वदेश में बड़ी ख्याति पाई थी। उसके वंशज आज भी उस जागीर का उपभोग कर रहे हैं।,,

यदि यह बात सत्य होती तो मालदा के जिले में कहीं पर इस जागीर का पता जरूर लगता परन्तु वहाँ पर इस तरह की किसी जागीर का पता नहीं है। सुना जाता है कि दानशाह के अधिकार में बिना कर की बहुत सी जमीन थी। उस समाधि के पुराने ईंट पत्थरों को देखने से भी जान पड़ता है

कि वह एक समृद्धिशाली पुरुष था। परन्तु उसके वंशजों के अधिकार में इस समय सिर्फ कुछ बीघे जमीन बिना लगानी रह गई है जिसके भी सम्बन्ध में लोग कहते हैं कि बहुत जमाना हुआ, जब उन्हें ये सब बिना लगानी जमीन गौड़-प्रदेश के अधिपति हुसेनशाह नामक पठान बादशाह से दान में प्राप्त हुई थी और दानशाह के पूर्वजों के समय से वे उसका उपभोग करते चले आ रहे हैं।

मीरकासिम ने जिस समय सिराजुद्दौला को कैद किया, उस समय सिराजुद्दौला के पास न कोई हथियार था और न कोई साथी। लाचार हो उसने अपने छुटकारे के बदले में बहुत सा धन देना चाहा, परन्तु हजार कोशिशें करने पर भी फल कुछ न हुआ। मीरकासिम की फौज ने लूटमार के लालच में उन्मत्त हो उसकी नाव पर आक्रमण किया। स्वयं मीरकासिम भी धन का लोभ परित्याग न कर सका। उसने भी मौका पाकर चालाकी से लुत्फुन्निसा बेगम के बहुमूल्य रत्न-आभूषण ले लिये। मसीय लास इस समय तीस मील दूर था। उसके सिराजुद्दौला के साथ मिलने से पहले ही सिराजुद्दौला की सारी आशायें निर्मूल हो गईं।

बड़ी खुशी के साथ मीरदाऊद ने यह खबर मुर्शिदाबाद को भेजी, जिसे सुनते ही मीरजाफ़र की प्रबल चिन्ता दूर हो गई। वह क्लाइव के पास बैठा हुआ हीरा झील वाले

महल में कुछ सलाह मशवरा कर रहा था। यह समाचार पाते ही उसने सिराजुद्दौला को कैदी की दशा में पकड़ लाने के लिए फौरन ही युवराज मीरन को राजमहल भेज दिया।

२ जुलाई सन् १७५७ ईसवी को सिराजुद्दौला कैदी के भेष में मुर्शिदाबाद लाया गया। अपने उस वीर तथा शाही शत्रु के साथ भी कम्पनी का व्यवहार अत्यन्त लज्जा-जनक रहा। कहा जाता है कि मीरजाफर उसे आदर के साथ मुर्शिदाबाद में नजरबन्द रखना चाहता था। किन्तु उसी दिन रात को मुहम्मद बेग नामक एक मनुष्य ने सिराजुद्दौला को कत्ल कर डाला। अगले दिन उसका कटा हुआ सिर हाथी पर रख कर मुर्शिदाबाद की गलियों में घुमाया गया।

"रियाजुस्सलातीन" नामक ग्रन्थ का मुसलमान रचयिता लिखता है:—

"अंगरेज सरदारों और जगत सेठ की साजिश से सिराजु-द्दौला को कत्ल किया गया।"

सिराजुद्दौला की हत्या के दो दिन बाद क्लाइव ने सिलेक्ट कमेटी के नाम एक पत्र में बड़े गर्व के साथ उन्हें यह सूचना दी—

"महाशयगण! सिराजुद्दौला खतम हो चुका। नवाब उसकी

जान बख्शना चाहता था, किन्तु उसके पुत्र मीरन और 'बड़े लोगों' ने देश के अमन के लिए उसे मार डालना आवश्यक समझा, क्योंकि उसके शहर के पास आते ही, जमींदार लोग बलवा करने लगे थे ।"

निस्सन्देह इन 'बड़े लोगों' में सब से मुख्य क्लाइव ही था ।

क्लाइव और उसके साथियों के दुष्कृत्यों पर पर्दा डालने के लिए अंगरेज इतिहास-लेखकों ने आम तौर पर झूठे इलजामों और नई जालसाजियों द्वारा सिराजुद्दौला के चरित्र को कलंकित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। किन्तु सिराजुद्दौला की सच्चाई, उसकी योग्यता और उसकी ईमानदारी में किसी तरह का भी सन्देह नहीं हो सकता ।

वास्तव में उसकी योग्यता के कारण ही इंगलिस्तान के ईसाई 'व्यापारियों' ने अपने और अपनी कौम के भावी हित के लिए उसका नाश आवश्यक समझा । उसका वह खजाना भी जो चाँदी, सोने और जवाहरात से लबरेज था, इन विदेशियों के लिए काफी लालच की चीज थी। उसमें दोष भी जबर्दस्त थे किन्तु वे दोष थे—विदेशियों की चालों को न समझ सकना, उन पर विश्वास और दया करना और बराबर उनके साथ अमन से रहने की आशा करना ।

एक ओर सिराजुद्दौला के ये व्यक्तिगत दोष, दूसरी ओर भारतीय जनता में राजनैतिक बोध तथा उससे उत्पन्न होने वाले देश-प्रेम और राष्ट्रीयता के भावों की कमी, और तीसरी ओर उच्च-श्रेणी के भारतवासियों के चरित्र की लज्जा-जनक स्वार्थ परायणता और विश्वासघातकता—इन तीनों ने मिलकर न केवल सिराजुद्दौला का ही अन्त कर दिया वरन् सिराजुद्दौला की लाश के साथ-साथ भारत की आजादी को भी सदियों के लिए दफन कर दिया।

कत्ल के समय सिराजुद्दौला की उम्र २५ वर्ष की भी न थी। समस्त अंग्रेज इतिहास लेखकों में शायद कर्नल मालेसन ही एक ऐसा है जिसने सिराजुद्दौला के साथ इन्साफ करने की कोशिश कीं है। वह लिखता है:—

"सिराजुद्दौला में और चाहे कोई भी दोष क्यों न रहे हों उसने न अपने मालिक के साथ विश्वासघात किया और न अपने मुल्क को बेंचा। इतना ही नहीं, वरन् कोई निष्पक्ष अंग्रेज ६ फ़रवरी और २३ जून के बीच की घटनाओं पर इन्साफ से राय कायम करते हुए इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि शराफत के पैमाने पर सिराजुद्दौला का नाम क्लाइव के नाम की अपेक्षा ऊंचा नजर आता है। इस शोकान्त नाटक के प्रधान पात्रों में अकेला एक सिराजुद्दौला ही ऐसा था जिसने किसी को धोखा देने की कोशिश नहीं की।"

इस परिस्थिति में और इन उपायों द्वारा पलासी के सुप्रसिद्ध मैदान में हिन्दुस्तान के अन्दर अँगरेजी साम्राज्य की नीव रखी गई, जिसका मुख्य श्रेय निस्सन्देह क्लाइव ही को मिलना उचित है। सम्भवतः उस दिन की लज्जाजनक स्मृति को मिटाने के लिए कुछ दिनों बाद पलासी अथवा 'पलासी बाग' के एक-एक पेड़ की लकड़ी व जड़ें तक खोद कर इंगलिस्तान पहुँचा दी गई।

पलासी युद्ध के बाद

हिन्दू मुस्लिम पक्षपात का आरम्भ

सिराजुद्दौला की मृत्यु के बाद मीर जाफर बंगाल, बिहार और उड़ीसा की गद्दी पर बैठा। विश्वासघातकों में किसी प्रकार के उच्च मानसिक या नैतिक गुणों का मिलना प्रायः असम्भव है। अतएव इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि शासक की दृष्टि से मीर जाफर अयोग्य, निर्बल और अदूर-दर्शी साबित हुआ। इसके अतिरिक्त वह सदा ही क्लाइव तथा उसके अन्य अंग्रेज साथियों के हाथों की कठपुतली बना रहा और बिना क्लाइव की इच्छा और आज्ञा के कोई काम न कर सकता था। मुर्शिदाबाद दरबार के एक हाजिर तबियतदार ने मीरजाफर का नाम 'कर्नल क्लाइव का गधा' रक्खा था और यह खिताब मीर जाफर के मरने के समय तक उसके साथ लगा रहा।

अलीवर्दी खाँ यह भली भांति जानता था कि प्रजा के सुख और समृद्धि के लिये बिना मजहब का विचार किये योग्य पुरुषों को राज्य की ऊँची से ऊँची और जिम्मेदारी की जगह पर नियुक्त करना राजा का परम धर्म है और इस धर्म का सच्चाई के साथ पालन करने से ही राज्य की जड़ें सदा के लिये चिरस्थायी हो सकती हैं।

यही सोच समझकर उसने अपने राज्य में लगभग सभी ऊँची पदवियों पर हिन्दुओं को ही नियुक्त कर रखा था। अपने नाना अलीवर्दी खाँ की इसी नीति का पालन करते हुए सिराजुद्दौला ने भी हिन्दुओं को ऊँची-ऊँची पदवियों पर बनाये रखना अपना राजकीय धर्म समझ लिया था। इसमें सन्देह नहीं कि सिराजुद्दौला के अपने अत्यन्त अल्प शासन-काल में भी उसे रात-दिन षड़यंत्रों और साजिशों का ही सामना करना पड़ा। अलीवर्दी खाँ और सिराजुद्दौला दोनों ही अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक आँख से देखते थे और उनके साथ एक समान उदारतापूर्ण व्यवहार करते थे। किन्तु उन दोनों की मृत्यु के बाद ही हवा का रुख बदल गया। आश्चर्य की बात यह हुई कि बंगाल के शासन में अंग्रेजों का दखल होते ही मीरजाफर ने हिन्दुओं को समस्त ऊँची-ऊँची पदवियों से हटाकर उनके स्थान में अपने सहधर्मियों को नियुक्त करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि यह भेद-भाव उत्पन्न करने वाली नीति मीरजाफर और उसकी प्रजा दोनों के ही लिए हानिकारक और घातक थी तथापि अंगरेजों के लिए तो सभी दृष्टिकोण से लाभदायक प्रतीत हुई। इतिहास से भी स्पष्ट है कि मीरजाफर इन सभी विषयों में क्लाइव और उसके साथियों के इशारे पर चल रहा था और उन सबों की संगीनों के बल पर ही सारे खेल खेल रहा था।

सबसे पहले मीरजाफर और क्लाइव ने मुर्शिदाबाद की

सूबेदारी के अधीन बड़े-बड़े प्रान्तों से हिन्दू राजाओं को हटाकर उनकी जगह पर मुसलमानों को नियुक्त करके साम्प्रदायिकता का विष वृक्ष आरम्भ किया।

पहला हिन्दू-नरेश जिसे क्लाइव और मीरजाफर ने मिलकर मिटा देना चाहा बिहार प्रान्त का शासक राजा रामनारायण था। राजा रामनारायण अलीवर्दी खाँ के खास आदमियों में से था और अलीवर्दी खाँ ने ही उसे बढ़ाकर इस ऊँचे दरजे तक पहुँचाया था। अलीबर्दी खाँ और सिराजुद्दौला दोनों का ही राजा रामनारायण हमेशा वफादार रहा। सिराजुद्दौला के विरुद्ध जो षड़यन्त्र और साजिश की गई थी उसमें वह शामिल न था किन्तु जब उसने सिराजुद्दौला के मारे जाने और मीरजाफर के गद्दी पर बैठने की खबर सुना तब अपने प्रान्त में भी मीरजाफर की सूबेदारी का नियमानुसार एलान कर दिया। फिर उस निरपराध राजा रामनारायण पर यह दोष लगाया गया कि तुमने फ्रान्सीसियों को अपने यहाँ आश्रय दे रखा है और अवध के नवाब-वजीर के साथ मिलकर तुम मीरजाफर के विरुद्ध षड़-यन्त्र और साजिश करने लगे हो। इसमें सन्देह नहीं कि यह सब मनगढ़न्त कहानी केवल उसे बिहार की गद्दी से उतारने के लिए तैयार की गई थी।

छः जुलाई सन् १७५७ को क्लाइव के आदेशानुसार मेजर कूट २३० गोरे और लगभग ३०० हिन्दुस्तानी सैनिक लेकर

मुर्शिदाबाद से पटने की ओर रवाना हुआ। लोगों में भ्रम पैदा करने के लिए सबसे पहले यह बहाना बतलाया गया कि ये सब सैनिक फ्रान्सीसियों का पीछा करने के लिए पटना भेजे जा रहे हैं। किन्तु १२ अगस्त को मेजर कूट के पास क्लाइव का एक पत्र पहुँचा जिसमें क्लाइव ने उसे यह आदेश दिया था कि तुम पटने पहुँच कर मीरजाफर के एक भाई महमूद अमीन खाँ के साथ मिलकर रामनारायण को गद्दी से उतारने का प्रयत्न करो।

अपने सैनिकों के साथ मेजर कूट सकुशल पटने पहुँच गया किन्तु उस थोड़ी-सी सेना से राजा रामनारायण को परास्त कर सकना कठिन था। इसी बीच में राजा रामनारायण को भी मेजर कूट के नाम भेजे गये क्लाइव के गुप्त पत्र की उड़ती हुई खबर मिल गई थी, इसलिए उसने उस समय व धीरज से काम लिया। अन्त में समझौते की बातचीत होने लगी। २२ अगस्त को राजा रामनारायण के महल में बैठक की गई। जितने इल-जाम उस पर लगाये गये थे, उन सब को उसने बड़ी शान्ति के साथ झूठा सिद्ध कर दिया। इस बैठक में मेजर कूट और महमूद अमीन के साथ मीरजाफर का दामाद मीर कासिम भी मौजूद था। अन्त में जब बातें हो चुकी तब एक ब्राह्मण को बुला-कर सब के ही सामने राजा रामनारायण ने मीरजाफर को सूबे-दार मान लिया और उसकी वफादारी की शपथ ली। मीर-कासिम और महमूद अमीन ने कुरान उठाकर अपने दिलों की

सफाई का एलान किया। अपने सैनिकों के साथ ७ सितम्बर को पटने से चलकर मेजर कूट सात दिन में मुर्शिदाबाद वापस पहुँच गया, किन्तु क्लाइव ने अपने मन में जो इच्छा की थी वह यों ही अधूरी रह गई। उन दिनों राजा रामनारायण एक अच्छा शक्तिशाली और प्रतापी नरेश था। क्लाइव का मुख्य उद्देश्य उसके प्रताप को नष्ट कर उसकी शक्ति को तोड़ देना था। इसीलिए उस धर्म वीर रामनारायण पर अभी और संकटों का आना बाकी था।

दूसरा हिन्दू नरेश जिस पर मीरजाफर और क्लाइव की क्रूर दृष्टि पड़ी उड़ीसा का राजा रामरमसिंह था। जिस तरह बिहार-बगाल के सूबेदार के अधीन था उसी तरह उड़ीसा का प्रान्त भी था। मीरजाफर ने राजा रामरमसिंह को अपने प्रान्त की मालगुजारी का हिसाब समझाने के बहाने मुर्शिदाबाद बुलवा भेजा। उस समय क्लाइव भी मुर्शिदाबाद में ही था। उधर राजा रामरमसिंह को मीरजाफर के बुलवा भेजने पर सन्देह हुआ इसलिए वह उसके बुलवाने पर स्वयं नहीं आया। मीर-जाफर की इच्छा के अनुसार मालगुजारी का हिसाब समझाने के लिए उसने अपने एक भाई और एक भतीजे को हिसाब की किताबों सहित मुर्शिदाबाद भेज दिया। ज्यों ही ये दोनों मुर्शिदा-बाद पहुँचे त्यों ही कैद कर लिये गये। इस घटना से राजा राम रामसिंह का सन्देह सच्चा साहिब हो गया। कुछ भी हो, राजा रामरमसिंह बड़ा साहसी था। वह यह भी जानता था कि मीर-

जाफर तो बनावटी सूबेदार है। मुर्शिदाबाद दरबार की असली बागडोर तो क्लाइव के हाथों में है । इसीलिए उसने तुरन्त नये सूबेदार मीरजाफर के इस अनुचित व्यवहार की शिकायत करते हुए क्लाइव को लिखा—"मैंने एक विशाल सेना इकट्ठी कर ली है। उसमें २००० सवार और ५,००० पैदल सैनिक हैं। ऐसी दशा में यदि नया नवाब मुझे कैद करने या दबाने के लिय सेना भेजने की भूल करेगा, तो मैं उसके मुकाबले के लिए काफी हूँ किन्तु यदि आप बीच मे पड़कर मेरी सलामती का वचन दें तो मैं स्वयं आकर मीरजाफर से मिलने और एक लाख रुपये नजराना भेंट करने के लिए तैयार हूँ।"

इस पत्र को पाते ही दूरदर्शी क्लाइव समझ गया कि इस समय राजा रामरमसिंह से भिड़ना ठीक नहीं है। इसलिये मीर-जाफर से क्लाइव के कहने पर राजा रामरमसिंह के भाई और भतीजे दोनों ही तुरन्त छोड़ दिये गये और उड़ीसा की गद्दी पर राजा रामरमसिंह को पहले के ही समान सम्मान के साथ बहाल रखा गया।

तीसरा हिन्दू नरेश जिसके बल और प्रताप को तोड़ने का क्लाइव और मीरजाफर ने इरादा किया वह पूर्निया का राजा युगल-सिंह था। पहले उस प्रान्त का शासक सिराजुद्दौला का रिश्तेदार शौकतजंग था। जब वह मर गया तब सिराजुद्दौला ने राजा युगलसिंह को सब तरह से योग्य समझकर उस प्रान्त का

शासक नियुक्त किया था। क्लाइव के समझाने पर मीरजाफर ने वहाँ से राजा युगलसिंह को हटाकर उसके स्थान पर अपने एक आदमी खुद्दामहुसेन को वहाँ का शासक बनाना चाहा किन्तु युगलसिंह तुरन्त मुकाबले के लिये तैयार हो गया। फिर क्या था कम्पनी और सूबेदार की सेनाओं ने मिल कर पूर्निया पर चढ़ाई कर दी। उसका नतीजा यह हुआ कि राजा युगलसिंह कैदकर लिया गया और उसके स्थान पर खुद्दामहुसेन पूर्निया की गद्दी पर बैठा दिया गया।

राजा दुर्लभ राम मीरजाफर का बड़ा सहायक था। उसको सूबेदार बनाने में दुर्लभराम का भी बड़ा हाथ था। वह मुर्शिदाबाद दरबार में माल के महकमे में हाकिम था। मीरजाफर के ऊपर उसके अनेक अहसान थे। सिराजुद्दौला के विरुद्ध साजिश में उसने अंग्रेजों और मीरजाफर की बड़ी सहायता की थी। इसीलिये उसका बल और प्रभाव दोनों ही अधिक बढ़े हुये थे। राजा युगलसिंह को कैद कर लेने के बाद मीर जाफर ने उसको भी मिटा देना चाहा। अतएव उसके भी नाश के उपाय सोचे जाने लगे। किन्तु जैसे ही उसे मीरजाफर का इरादा मालूम हुआ वैसे ही वह कमर कसकर मुकाबला करने को तैयार हो गया। क्लाइव और उसके साथी अँग्रेज राजा दुर्लभराम के प्रभाव को भली भाँति जानते थे इसलिये वे डर गये। वाट्स तुरन्त बीच बचाव करने के लिये आगे बढ़ा और उसने मीरजाफर तथा राजा दुर्लभ राम में सुलह करा दी।

क्लाइव सूबेदारी भर में अंग्रेजों के बल और उनके प्रभाव की धाक जमा देने के प्रयत्न में लगा हुआ था। इसी लिए वह मीर जाफर को समस्त प्रजा में अप्रिय बना देने के उपाय करने लगा था। अपने उद्देश्य में सफल होने के लिए ही वह इस प्रकार की तमाम अनुचित छेड़-छाड़ करके बंगाल के तमाम पुराने और प्रतिष्ठित बड़े-बड़े परिवारा के बल को तोड़ने का प्रयत्न करने लगा किन्तु स्वार्थान्ध मीरजाफर उसकी चाल को जरा भी न समझ सका।

राजा रामनारायण पर चढ़ाई

कुछ ही दिनों में राजा रामनरायण पर एक बड़ी सेना लेकर दुबारा चढ़ाई करने की योजना तैयार की गई। इस योजना के पहले यह अफवाह उड़ी या उड़ाई गई कि अलीवर्दी खाँ कि बूढ़ी बेवाने अवध के नवाब वजीर को पत्र लिखा है कि आप आकर मीरजाफर के विरुद्ध रामनरायण की सहायता कीजिए। इसी पत्र का बहाना लेकर क्लाइव और मीरजाफर के लिए केवल कुछ महीने पहले की सन्धि और दोनों ओर की कसमों को मिट्टी में मिलाकर अब फिर बिहार प्रान्त पर चढ़ाई करना और राजा रामनरायण को नीचा दिखाना जरूरी हो गया।

क्लाइव ने इस मौके से लाभ उठाते हुये पचास हजार सेना इकट्ठी करली। इतना ही नहीं मीरजाफर को डर दिखाकर उससे धन खींचने का भी क्लाइव को यह अपूर्व अवसर दिखाई पड़ा।

किन्तु इस समय मीरजाफर की अर्थिक दशा बड़ी ही शोचनीय थी। मुर्शिदाबाद के खजाने की जो दशा उसने पलासी-युद्ध से पहले समझ रखी थी वह पलासी-युद्ध के बाद न निकली। इस खजाने का भरोसा करके ही उसने अंग्रेज कम्पनी को अलग और क्लाइब तथा उसके अनेक साथियों को व्यक्तिगत रूप से अलग बड़ी-बड़ी रकमें देने का बचन दे रखा था। दूसरे इन्हीं रकमों के कारण उसकी भीतरी हालत इतनी तंग हो गई थी कि उसके ऊपर सेना की कई महीने की तनखाहें चढ़ गई थी, इसी लिए उसकी सेना में भयानक असन्तोष बढ़ता जा रहा था!

जब कोई भी उपाय दिखाई न पड़ा तब विवश होकर मीरजाफर ने यह प्रार्थना की कि कम्पनी का जो कर्जा मेरे जिम्मे बाकी रह गया है, उसमें कुछ कमी कर दी जावे। मालूम पड़ता है कि शायद क्लाइब ने उसे इसकी आशा भी दिला रखी थी। इसी उद्देश्य से मीरजाफर ने कई बार बड़ी-बड़ी रकमें बतौर रिश्वत के क्लाइव की भेट की। इन रकमों के विषय में सन् १७७२ ई० में पार्लियामेंट की एक कमेटी के सामने गवाही देते हुए क्लाइव ने कहा था कि 'नवाब की उदारता ने सहज ही में मुझे धनवान बना दिया।'

इतना सब करने पर भी मीरजाफर का वह प्रार्थना-पत्र रद्दी की टोकरी में फेंक दिया गया। और कहाँ तक कहा जाय!

ठीक उस मौके पर जब कि बिहार पर चढ़ाई करने की सभी तैयारियाँ की जा चुकी थीं क्लाइव ने कम्पनी की एक-एक पाई चुकता कराये बिना मुर्शिदाबाद से एक कदम आगे चलना भी स्वीकार नहीं किया। इतना ही नहीं, पिछली रकमों के अतिरिक्त और भी कई तरह की नई-नई रकमें इस मौके पर मीरजाफर से तलब की गई। चूँकि इस अवसर पर क्लाइव की शक्ति बहुत बढ़ गई थी उसके पास मीरजाफर को कुचलने के लिए पचास हजार सेना भी मौजूद थी और मीरजाफर को भाँति-भाँति के भय दिखाये गये थे इसलिए उसे लाचर होकर झुक जाना पड़ा। इस प्रसंग के सम्बन्ध में इतिहास लेखक मैलकम लिखता है कि इस अवसर पर—

"एक रकम सेना के असाधारण खर्च के लिए वसूल कर ली गई। जो जमीनें कम्पनी को दी गई थी उनके पर्वाने बाकायदा जारी कराये गये। दरबार से हुकुम जारी कराये गये कि नवाब के पहले छः महीने के कर्जे की तमाम बकाया तुरन्त अदा कर दी जावे। बाकी तमाम कर्जों को चुकाने के लिए उस समय तक जब तक कि कर्जा पूरा न हो जावे, बर्धमान नदिया और हुगली तीन जिलों की सरकारी मालगुजारी कम्पनी के नाम करा ली गई। क्लाइव ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम ८ फरवरी के पत्र में लिखा था—"इससे अब हमारे कर्जों का चुकाया जाना नवाब के हाथों से बिलकुल स्वतन्त्र हो गया ××× "

इस प्रसंग में हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इन कर्जों में कोई ऐसी रकम शामिल न थी जो सचमुच कम्पनी ने या किसी अंग्रेज ने कभी एक पाई भी मीरजाफर को कर्ज में दी हो। यह तो वास्तव में केवल वह धन था जो मीरजाफर ने गद्दी के बदले में अंग्रेजों को देने का वादा कर लिया था।

जब क्लाइव और मीरजाफर में सब तरह का सन्तोषजनक समझौता हो गया तब वे दोनों पचास हजार सेना सहित पटने की ओर बढ़े। चार महीने से ऊपर यह विशाल सेना मैदान में ही पड़ी रही और इसका सारा खर्च मीरजाफर को ही बर्दाश्त करना पड़ा किन्तु फिर भी कहीं किसी मौके पर एक गोली भी न चलने पाई। इसी से अनुमान करना पड़ता है कि इस समय क्लाइव मीरजाफर को मनमाना चकमा दे रहा था। राजा रामनारायण के समान शक्तिशाली मनुष्य को सदा के लिए अपना शत्रु बना लेना अंग्रेजों के लिए हर एक दृष्टिकोण से हितकर न था। क्लाइव यह सब समझता था। इस प्रकार उस पर चढ़ाई कर देने का उद्देश्य उस पर कम्पनी की शक्ति का सिक्का जमाना, उसे मीरजाफर की ओर संशक कर देना, उससे धन वसूल करना और अन्त में स्वयं बीच में पड़कर रामनारायण के हक में फैसला करा देना ही था।

इसलिए २३ फरवरी सन् १७५८ को पटने में जो दरबार हुआ था उनमें क्लाइव ने मध्यस्थ का आसन ग्रहण किया था।

मीरजाफ़र का बेटा मीरन नाम के लिये बिहार का नवाब बनाया गया और शासन का सारा भार मीरन के नायब की हैसियत से पहले के ही समान राजा रामनारायण के ऊपर छोड़ दिया गया। इस दयालुता के बदले में राजा रामनारायण से सात लाख रुपये नकद वसूल किये गये। इतिहास लेखक ओर्मे लिखता है कि—"क्लाइव की जो मनोकामना थी वह सब पूरी हो गई।" कुछ दिनों के बाद एक पत्र में क्लाइव ने राजा रामरानायण को "अंग्रेजों का पक्का हितसाधक" लिखा है।

हिन्दुस्तान की राजनीति में पड़कर भी क्लाइव अपने मालिक के हित को कभी नहीं भूला। इन दिनों जितना शोरा बंगाल में बिकता था वह सब पटने से ऊपर के भूभाग में तैयार होता था। क्लाइव ने इस समय नवाब पर दबाव डाल कर शोरा तैयार कराने का ठेका कम्पनी के नाम हासिल कर लिया। इस ठेके की बदौलत कम्पनी का व्यापार और बढ़ गया। मई सन् १७५८ ई० में क्लाइव मुर्शिदाबाद लौट आया। उसके कुछ दिनों बाद मीरजाफर राजधानी में वापस आ गया।

कुछ दिन बीत जाने पर मीरजाफर और रामनारायण दोनों ही पर एक और नया संकट आ पहुँचा। जिस तरह मीरन कहने भर के लिये बिहार का नवाब बना दिया गया था उसी तरह काफी समय पहले से दिल्ली-सम्राट के बड़े बेटे को नाम

मात्र के लिये बंगाल बिहार और उड़ीसा का सूबेदार कहा जाता था। सच बात तो यह थी कि शहज़ादे की यह पदवी केवल एक सम्मान-सूचक पदवी चली आती थी और मुर्शिदाबाद के वास्तविक सूबेदार सम्राट के आधीन सूबेदार के समस्त कार्य किया करते थे। किन्तु इस समय शहाजादा अलीगौहर अपनी पदवी को चरितार्थ करने के लिये सेना को साथ लेकर बंगाल की ओर बढ़ा। यह तो मानना ही पड़ेगा कि बंगाल में होने वाली हाल की राज्य-क्रान्ति, अंग्रेजों और मीरजाफर के अन्याय और अत्याचार तथा प्रजा-वर्ग की शोकजनक अवस्था के समाचार सम्राट के दरबार तक पहुँच चुके थे और शहज़ादे का बँगाल आने का सम्बन्ध इन समस्त बातों के साथ कुछ न कुछ अवश्य था।

कुछ भी हो, ज्योंही मीरजाफर ने शहज़ादे के आने की खबर सुनी त्योंही वह डर गया। अपने बचाव के लिये उसने क्लाइव से सहायता माँगी। बिना किसी तर्क के क्लाइव तुरन्त एक बहुत बड़ी सेना और मीरन को साथ लेकर मुर्शिदाबाद से पटने की ओर बढ़ा। उस समय तक शहज़ादा पटने पहुँच चुका था और राजा रामनारायण ने अपने नम्रतापूर्ण व्यवहार से शहज़ादे को प्रसन्न कर लिया था। कहा जाता है कि क्लाइव और मीरन के पहुँचने पर मुर्शिदाबाद की सेना और शहज़ादे की सेना में कुछ समय तक लड़ाई भी हुई थी। हम यह नहीं कह सकते कि लड़ाई का होना कहाँ तक सच है। केवल

यह अनुमान कर सकते हैं कि क्लाइव और मुर्शिदाबाद की सेना का शहजादे की विशाल सेना पर विजय पा सकना सर्वथा असम्भव था। किन्तु उस समय के उल्लेखों से स्पष्ट है कि क्लाइव ने शहजादे के सामने अपनी वफादारी का पूरा प्रदर्शन कर उसको अपनी ओर करने की भरसक कोशिश की थी और अन्त में किसी प्रकार का समझौता भी हो गया था। इसके बाद शहजादा अपनी विशाल सेना के साथ पटने से दिल्ली की ओर लौट गया और कुछ समय के लिए मीरजाफर का भी भय दूर हो गया।

मीरजाफर क्लाइव के ऊपर अधिक प्रसन्न हुआ। जैसे ही वह मुर्शिदाबाद पहुँचा वैसे ही उसने इस उपकार के बदले में क्लाइव को साम्राज्य के 'उमरा' की पदवी और एक जागीर दे दी। जो जमीदारी कलकत्ते के आस-पास कम्पनी को मिली हुई थी उसके मालकाने के रूप मे कम्पनी को सालाना तीन लाख रुपये नवाब की सरकार में जमा कराने पड़ते थे किन्तु उस समय से वह सब जमीदारी "क्लाइव की निजी जागीर" बन गई और मुर्शिदाबाद की सरकार के स्थान में स्वयं क्लाइव ही उन तीन लाख रुपये सालाना का कम्पनी से पाने का हकदार हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि माली हालत बढ जाने के कारण क्लाइव भी उस समय एक हिन्दुस्तानी नवाब बना हुआ था। क्लाइव की इस "जागीर" का जिसे अपने लाचार "गधे" मीरजाफर से हथिया लेना उसके लिए कोई बड़ा कठिन

काम न था, अंग्रेज इतिहास-लेखक बड़े गर्व के साथ अपनी पुस्तकों में उल्लेख करते हैं ।

क्लाइव की नई योजना

यह कहा जा चुका है कि बंगाल की गद्दी के बदले में मीर-जाफर ने जितना धन अंग्रेजों को देने का वादा किया था वह सब एक-एक पाई वसूल किया जा चुका था। व्यापार के लिए बंगाल में अनेक सुविधाएँ और रिआयतें कम्पनी को नवाब की ओर से मिल चुकी थी और इन बाकायदा रिआयतों के अलावा अनेक चीजों के व्यापार का ठेका कम्पनी ने जबरदस्ती अपने हाथों में ले रखा था। तीनों प्रान्तों में अंग्रेजों के छल और बल दोनों का सिक्का अच्छी तरह जम चुका था। यह सभी जानते हैं कि क्लाइव कुछ वर्ष पहले एक निर्धन क्लर्क की हैसियत से भारत आया था। इस समय वही निर्धन क्लाइव जहाँ तक सम्भव है, सँसार में सबसे अधिक धनवान अंग्रेज हो गया था। इस प्रकार बहुत बड़ी सीमा तक अपने उद्देश्य को पूरा कर फरवरी सन् १७६० ई० में क्लाइव अपनी जन्म-भूमि इंगलिस्तान के लिए रवाना हो गया।

चाहे कुछ भी हो, अपनी कौम के लिए क्लाइव की महत्वा-कांक्षाएँ उस समय भी अधिक बढ़ी हुई थीं । उसके नीचे लिखे हुए पत्र से साफ मालूम होता हैं कि भारतवर्ष में अंग्रेजों के लिए साम्राज्य स्थापित करने के विषय में उसका मस्तिष्क

किस तरह काम कर रहा था । ७ जनवरी सन् १७५६ ई० को इंगलिस्तान के प्रधान मन्त्री विलियम पिट के नाम क्लाइव ने यह पत्र लिखा था—

"मैं देख रहा हूँ कि अंग्रेजी सेना की सफलता द्वारा जो महान् क्रान्ति इस देश में की जा चुकी है उसकी ओर और जो सन्धि उस क्रान्ति के बाद की गई है तथा उससे जो बड़े-बड़े फायदे कम्पनी को हुए हैं उन सब की ओर एक दर्जे तक (अंग्रेज) कौम का ध्यान आकर्षित हो चुका है, किन्तु उचित अवसर मिलने पर अभी और बहुत कुछ किया जा सकता है, बशर्ते कि कम्पनी इस तरह की कोशिशों में लगी रहे जो कि उसकी वर्तमान सम्पत्ति और भावी सम्भावनाओं दोनों के महत्व के अनुरूप हों। मैंने कम्पनी की अधिक जोरदार शब्दों में इस बात की जरूरत दिखा दी है कि उन्हें इतनी सेना हिन्दुस्तान भेज देनी चाहिए और उसे हर समय हिन्दुस्तान में रखना चाहिए, जिससे कि वे अपनी सम्पत्ति को बढ़ाने के सब से पहले अवसर से लाभ उठा सकें। दो साल के परिश्रम और अनुभव से मैंने इस देश की हुकूमत के विषय में और यहां के लोगों के स्वभाव के विषय में जो परिपक्व ज्ञान प्राप्त किया उससे मैं साहस के साथ कह सकता हूँ कि इस तरह का अवसर शीघ्र ही आनेवाला है। मौजूदा सूबेदार××× बूढ़ा है और उसका नौजवान बेटा इतना जालिम और निकम्मा है तथा अंग्रेजों का इतना खुला दुश्मन है कि इस नवाब के बाद उसे गद्दी पर बैठने

देना करीब-करीब खतरनाक होगा। केवल दो हज़ार यूरोपियनों की छोटी सी सेना हमें इन दोनों की ओर से निःशंक कर देगी, और यदि इनमें से कोई हमारे साथ उपद्रव करने का साहस करेगा तो इस सेना द्वारा हम राज्य अपने हाथों में ले सकेंगे।"

"हिन्दुस्तान के लोगों को अपने राजाओं के साथ किसी तरह का भी प्रेम नहीं है, इसलिए इस तरह का कार्य कर डालने में हमें और भी कम कठिनाई होगी × × ×।"

"किन्तु सम्भव है, इतना बड़ा राज्य एक व्यापारी कम्पनी के लिए बहुत अधिक हो जावे और मुझे भय है कि बिना अंग्रेज कौम की सहायता के अकेली कम्पनी इतने विस्तृत राज्य को कायम नहीं रख सकती। खूब सोचने की बात है कि यह तमाम नक्शा बिना अपनी मातृभूमि पर खर्च का भार डाले ही पूरा किया जा सकता है, जब कि अमरीका में अपना राज्य कायम करने के लिए इंगलिस्तान को बेहद खर्च बर्दाश्त करना पड़ा था। इंगलिस्तान से एक छोटी सी सेना इसलिए काफी होगी क्योंकि हम जब जितने काले सिपाही चाहे यहाँ जमा कर सकते हैं × × × मैं केवल इतना और कहूँगा कि मैंने सिवाय आपके और किसी को यह बात नहीं लिखी, और मैं आपको भी कष्ट न देता यदि मुझे इस बात का विश्वास न होता कि कौम के फायदे की जो योजना आपके सामने रखी जायगी, आप उसका अच्छी तरह स्वागत न करेंगे।"

निस्सन्देह यह उन समस्त योजनाओं का खासा सुन्दर और सच्चा चित्र है जिन्हें उस समय के अंग्रेज बंगाल के अथवा आमतौर पर भारत के अन्दर तैयार किया करते थे। इस पत्र से यह भी प्रमाणित है कि अंग्रेज उस समय बंगाल में मीर-जाफर और मीरन दोनों के ही खिलाफ एक दूसरी राज्य-क्रान्ति पैदा करने का निश्चय कर चुके थे।

मीरन एक समझदार युवक था। अंग्रेजों की चालों और नीयत को वह उस समय तक भली भाँति पहचान गया था। मीरजाफर भी अंग्रेजों के साथ से बेजार हो चला था। खास कर मीरन अपने बाप को अकसर यह सलाह दिया करता था कि किसी न किसी उपाय से इन अंग्रेजों के पंजे से छुटकारा पाने की कोशिश की जावे। इसीलिए क्लाइव "गद्दी पर मीरन को बैठने देना खतारनाक" समझने लगा था।

क्लाइव के चले जाने के वाद 'ब्लैक होल' के किस्से का रचयिता हॉलवेल कलकत्ते का गवर्नर बनाया गया। पाँच महीने के बाद जुलाई सन् १७६० ई० में हेनरी वंसीटार्ट ने उसके स्थान को ग्रहण किया। उन्ही दिनों केलो बंगाल में कम्पनी की सेनाओं का प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ।

सम्राट शाह आलम की बंगाल-यात्रा

सन् १७५६ ई० के शेष भाग में शहजादे अलीगौहर ने दूसरी बार बिहार पर आक्रमण कर दिया। वास्तव में बात

यह थी कि इतने ही समय के बीच बंगाल की शोकजनक दशा और अनेक प्रकार की शिकायतों का समाचार किसी न किसी प्रकार मुगल दरबार तक पहुँच चुका था। साथ ही साथ बंगाल उस समय तक सम्राट के अधीन था किन्तु फिर भी दिन-प्रति दिन की नई-नई राज्य क्रान्तियों के कारण बंगाल से दिल्ली खिराज जाना कई वर्षों से बन्द हो गया। कहा जाता है कि शहजादे के इस आक्रमण का उद्देश्य उन सब शिकायतों का दूर करना और शाही खिराज वसूल करना छोड़कर और कुछ न था। शहजादे की सेना ने जैसे ही बिहार प्रान्त की सीमा के भीतर प्रवेश किया वैसे ही शहजादे को सम्राट आलमगीर दूसरे की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ। यही शहजादा अब दिल्ली से अपनी अनुपस्थिति में शाह आलम दूसरे के नाम से सम्राट नियुक्त हुआ और भारत-सम्राट की हैसियत से ही उसने उस समय बिहार प्रान्त में प्रवेश किया। शाह आलम उस समय मुगल साम्राज्य का एक मात्र अधीश्वर था। उसकी अधीनता प्रत्येक सूबेदार, भारतीय प्रजा और यूरोपियन व्यापारियों आदि सब पर उचित ही थी, फिर भी अंग्रेजों की नीति उसकी ओर कुछ रहस्यपूर्ण रही।

इधर उन सबों ने मीरजाफर और मीरन दोनों को ही उत्तेजित करते हुए कहा कि आप लोग अपनी सेना को साथ ले कर पटने पहुँच जाइए और साहस तथा वीरता के साथ सम्राट का मुकाबला कीजिए। इतना ही नहीं उन सबों ने सम्राट की

सेना के बिहार में प्रवेश करते ही कर्नल केलो को तुरन्त मीर-जाफर की सहायता करने के लिए अपनी सेना सहित कलकत्ते से मुर्शिदाबाद भेज दिया। कर्नल केलो मुर्शिदाबाद आ गया और फिर वहाँ से मीरन के अधीन नवाब की कुछ सेना और अपनी सेना साथ लेकर १८ जनवरी सन् १७६० ई० को सम्राट की सेना का मुकाबला करने के लिए पटने की ओर अग्रसर हुआ। उधर अंग्रेजों ने मीरजाफर और मीरन दोनों से ही छिपा कर ऊपर ही ऊपर शाह आलम से अपनी गुप्त बातचीत आरम्भ कर दी।

इतिहास-लेखक मिल अपनी पुस्तक में लिखता है कि 'अंग्रेजों का शाह आलम के साथ लड़ाई के लिए तैयार होना ही खुली बगावत थी। गवर्नर हालवेल तो यहाँ तक लिखता है कि 'शाह आलम ने अंग्रेजों की कुल शर्तें मान लेने की रजा-मन्दी प्रकट की।' बड़े खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि आज तक किसी को भी न मालूम हो सका कि वे कौन सी शर्तें थी और अन्त में उनके भाग्य का कैसा फैसला हुआ।

प्रधान सेनापति कर्नल केलो ने अपने पत्रों में इस बात की बड़ी शिकायत की है कि मीरन ने सम्राट के विरुद्ध केलो का वैसा साथ नहीं दिया जैसा कि केलो चाहता था। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मीरजाफर और मीरन दोनों ही सम्राट से लड़ने को तैयार न थे किन्तु फिर भी उलटा-सीधा पाठ पढ़ाकर

के उन दोनों को सम्राट से लड़ाना चाहता था। इसीलिए इस सम्बन्ध में अंग्रेज और उन दोनों में एक प्रकार का खासा मतभेद हो गया था। इसका संकेत किया जा चुका है कि अंग्रेजों और मीरन में पहले से भी भीतर ही भीतर मनमुटाव बढ़ता जा रहा था।

कुछ भी हो, मुर्शिदाबाद की सेना के पहुँचने से पहले ही 'अंग्रेजों का पक्का हितसाधक' राजा रामनारायण अपनी सेना को साथ लेकर सम्राट शाह आलम से युद्ध करने के लिए पटने से बाहर निकला। इसमें सन्देह नहीं कि इस बार वह अच्छी तरह अंग्रेजों के दाँव-पेचों में पड़ गया। नतीजा यह हुआ कि सम्राट की विशाल सेना ने उसे पराजित और घायल कर पीछे हटा दिया और समस्त पटने का मोहासरा आरम्भ कर दिया। १५ फर्वरी को केलो और मीरन की सेनाएँ पटने पहुँची। सम्राट और अँगरेजों में गुप्त पत्र-व्यवहार बराबर हो रहा था। सम्राट की सेना मोहासरे से हट गई। २२ फर्वरी को सम्राट और नवाब की सेनाओं में थोड़ी-सी लड़ाई भी हुई, जिसमें मीरन के कुछ चोट आई।

कहा नहीं जा सकता कि अंगरेजों ने सम्राट को क्या समझाया कि दिल्ली की सेना स्वयं ही वहाँ से मुड़कर सीधी मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ी। मीरन इस समय सम्राट की सेना का पीछा करना नहीं चाहता था। फिर भी केलो ने उसे २६

फरवरी सन् १७६० ई० को पटना छोड़ देने पर विवश किया। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मीरन और मीरजाफर दोनों को एक हद तक अंगरेजों के इशारे पर चलने के लिए विवश होना पड़ता था। ४ अप्रैल को केलो और मीरन की सेना मीरजाफर की सेना से आ मिली। छः अप्रैल को जब कि सम्राट और नवाब की सेनाएँ एक दूसरे के बहुत निकट आ गईं तब केलो ने मीरजाफर पर फिर दबाव डालते हुए कहा कि आप सम्राट की सेना पर तुरन्त आक्रमण कर दीजिए किन्तु मीरजाफ़र और मीरन ने उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया। तीन दिन के ही भीतर सम्राट की सेना जिस रास्ते से आई थी ठीक उसी रास्ते से बिहार की ओर लौट गई।

कम्पनी के डाइरेक्टरों के एक पत्र में लिखा हुआ है कि कुछ अँग्रेजों ने ही कर्नल केलो पर यह भी दोषारोपण किया था कि उस समय उसने किसी न किसी उपाय से सम्राट को मरवा डालने तक का उद्योग किया था, किन्तु वह सफल न हो सका था। यह बात कहाँ तक सत्य है इसे अंग्रेज ही जान सकते हैं।

कर्नल केलो स्वयं मीरजाफर और मीरन की सेनाओं के साथ उन्हीं के खेमों में ठहरा रहा और कप्तान नाक्स को उसने थोड़ी-सी सेना के साथ पटने की ओर भेज दिया। हम जो कुछ कह रहें हैं वह सब कर्नल केलो के ही बयान के आधार पर

समझना चाहिए। मीरन और मीर जाफर दोनों को इस तरह नजरबन्द रखने का एक कारण यह भी था कि अंगरेजों को अपने खिलाफ उनके सम्राट से मिल जाने का अधिक भय था। साथ ही साथ सम्राट से अपनी बातचीत का उन्हें पता लगने देना न चाहते थे। सम्राट की सेना के सामने भी या तो पहले से पूरी तरह निश्चित कोई कार्य-क्रम न था अथवा शाह आलम को राजधानी खाली होने के कारण दिल्ली लौटने की जल्दी थी अथवा कुछ भी रहा हो। दो बार पटने पर चढ़ाई करके कप्तान नाक्स के पहुँचते ही न जाने सम्राट तथा अंगरेजों में क्या बातें हुईं कि सम्राट की सेना शहर का मोहासरा छोड़ कर तुरन्त दिल्ली की ओर लौट गई।

मीरन की हत्या

कुछ लोगों का कथन है कि पूर्निया का नवाब खुदामहुसेन जो मीरजाफर के द्वारा दो वर्ष पहले युगलसिंह के स्थान पर वहाँ का नवाब नियुक्त किया गया था, उस समय अपनी सेना को साथ लेकर मीर जाफर के विरुद्ध सम्राट शाह आलम की सहायता के लिये आ रहा था। इसलिए केलो और मीरन दोनों ही उसका मुकाबला करने के लिए आगे बढ़े। उस समय अंग्रेज कपट-नीति के आधार पर मीरन को पूर्निया के नवाब से लड़ा कर पूर्निया के नवाब का भी नाश कराना चाहते थे किन्तु पूर्निया के नवाब से लड़ने के लिए मीरन किसी भी दशा में

तैयार नहीं हो रहा था। इसीलिए कम्पनी की सेना और पूर्निया की सेना में कुछ समय तक नाम मात्र के लिए लड़ाई हुई।

इस घटना के सम्बन्ध में केलो का कहना है कि मीरन से सहायता न मिल सकने के कारण अंगरेज पूर्निया के नवाब को पराजित न कर सके। २ जुलाई तक केलो और मीरन की सेनाएँ साथ-साथ नवाब पूर्निया की सेना के पीछे-पीछे चलती रही। खुदामहुसेन पर दुबारा अकेले आक्रमण कर देने के लिए केलो में साहस न था और मीरन इस काम में उसका साथ देने को तैयार न था। २ जुलाई की आधी रात को मीर जाफर का बेटा और मुर्शिदाबाद का युवराज मीरन सहसा अपने बिछौने पर मरा हुआ पाया गया। कह दिया गया कि मीरन पर बिजली गिर पड़ी। सुप्रसिद्ध अँगरेज विद्वान् एडमण्ड बर्क ने पार्लियामेंट के सामने बड़ी सुन्दरता के साथ दिखा दिया कि—"यह कैसी विचित्र बिजली थी। जिस खेमे के नीचे मीरन सो रहा था उस पर अथवा उसके कपड़े पर बिजली का तनिक भी असर नहीं हुआ और उसके नीचे सोया हुआ मीरन मर गया। बिजली के गिरने की साधारणतया बड़ी भयानक आवाज यानी कड़कड़ाहट होती है जो मीलों तक सुनाई पड़ती है किन्तु जो विजली मीरन के ऊपर गिरी उससे खेमे के चारों ओर सोये हुये लाखों सिपाहियों और दूसरे आदमियों में से किसी एक की आँख न खुली।" सच बात तो

यह है कि उस समय मीरन अंग्रेजों की आँखों में काँटे के समान चुभ रहा था यह तो स्पष्ट है ही कि जान बूझकर मीरन को मार डाला गया और इस हत्या में कर्नल केलो को छोड़कर दूसरे किसी भी आदमी का हाथ होना संभव नहीं है। इस हत्या के ठीक एक महीने बाद हालवेल ने नये गवर्नर बन्सीटार्ट को लिखा—

'दरबार में एक दल खड़ा हो गया था जिसके नेता नवाब का बेटा मीरन और राजा राजबल्लभ थे। ये लोग अंग्रेजों के जुए को अपने कन्धों पर से हटाने के लिए नित्य उपाय सोचा करते थे और निरन्तर नवाब पर दबाव डालते थे कि जब तक यह न हो सकेगा, तब तक नवाब की हुकूमत केवल कहने भर के लिए हुकूमत रहेगी।'

किसी न किसी प्रकार समस्त सेना को पटने लौटा लाया गया और पटने लौट आने तक मीरन की मृत्यु के समाचार को बड़ी सावधानी के साथ उसकी सेना से छिपा कर रखा गया। कहीं कोई भी नहीं जानने पाया।

बंगाल की शोक जनक अवस्था

ऊपर बयान की गई घटनाओं से ही अनुमान किया जा सकता है कि उस समय बंगाल और वहाँ की प्रजा की दशा अधिक शोकजनक थी। मुसलमान इतिहास-लेखक मौलाना

बदरुद्दीन अहमद उस समय की बंगाल की दुर्दशा का वर्णन करते हुए इस प्रकार लिखता है—

"कम्पनी और उसके खास-खास मुलाजिमों से अलग-अलग जो बड़े-बड़े वादे कर लिये गये थे, उन्हें पूरा करने में नाज़िम (मीरजाफर) के खजाने का एक-एक सिक्का दिया जा चुका था। बंगाल दिवालिया हो चुका था और तेजी के साथ अराजकता की ओर बढ़ा चला जा रहा था। शहजादे की चढ़ाई से वहाँ की दशा और भी खराब हो गई थी। उससे नाज़िम की पूरी बेबसी जाहिर हो गई थी और कम्पनी को पता चल गया था कि बाहर के हमलों से अने इलाके की रक्षा करने के लिए नाजिम हर तरह हमी पर निर्भर है।"

मुर्शिदाबाद के जिस खजाने को बंगाल की प्रजा ने अपनी गाढ़ी कमाई के पैसों से संचित किया था उसी को अपनी आँखों के सामने ढुल-ढुल कर विदेशियों के हाथों में जाते हुए भी देखा। आये दिन के सग्रामों और सैन्य-यात्राओं के कारण देश की कृषि पर मिट्टी जम गई थी और समस्त उद्योग धन्धों का नाश हो रहा था। इस पर देश के एक-एक व्यापार के ऊपर कम्पनी बल-पूर्वक अपना अधिकार जमाती जा रही थी।

नमक, छालिया, इमारती लकड़ी, तम्बाकू, सूखी मछली इत्यादि का व्यापार बंगाल के रहने वालों की जीविका थी और

इन्हीं वस्तुओं के व्यापार से सूबेदार को भी आमदनी होती थी इसीलिए प्रारम्भ काल से ही इस तरह की कई वस्तुओं का व्यापार यूरोप-निवासियों के लिए बंगाल प्रान्त में बन्द कर दिया गया था । विदेशी व्यापारियों के नाम सम्राट की खुली आज्ञाएँ इस विषय में मौजूद थीं। फिर भी पलासी-युद्ध के बाद अंग्रेजों ने इन समस्त वस्तुओं के व्यापार को बलपूर्वक अपने अधिकार में कर लिया।

गद्दी पर बैठने के एक महीने के अन्दर मीर जाफर ने क्लाइव से इस अन्याय और जबर्दस्ती की शिकायत की। कुछ समय के लिये थोड़ी-सी रोक-थाम का भी ढोंग रचा गया, किन्तु आगे चल कर फिर किसी ने कुछ भी पर्वाह नहीं की। शोरे का ठेका कम्पनी को मिल ही चुका था। इन्हीं समस्त कारणों से न केवल राज्य की आय में बहुत बड़ी कमी हो रही थी, बल्कि प्रजा के अन्दर दुःख, दरिद्रता और असन्तोष भी प्रबलता के साथ बढ़ते जा रहे थे। इस पर तारीफ यह थी कि जब कभी मीरजाफर बंगाल के आर्थिक, सैनिक अथवा किसी भी प्रबन्ध में किसी प्रकार का सुधार करना चाहता था तब उसे तुरन्त रोक दिया जाता था

इसमें सन्देह नहीं कि मीरजाफर गद्दी पर बैठने के कुछ ही महीनों में अपनी लाचारी को समझने लगा था और अनुभव करने लगा था कि अंग्रेजों की नई मित्रता ने मुझे मेरे देश

को चुप-चाप नाग-फाँस के समान मजबूती से जकड़ लिया है। सिराजुद्दौला के साथ किये गये उसके विश्वासघात का फल अब मीरजाफर और उसके साथ साथ समस्त प्रजा को भोगना पड़ रहा था।

बंगाल में क्रान्ति का दूसरा रूप

सिराजुद्दौला की हत्या हुए अभी पूरे तीन वर्ष भी न हो पाये थे कि अचानक एक नया संकट आ पहुँचा। मीरजाफर ने अंग्रेजों के साथ जितनी भी सन्धियाँ की थी उन सब की तमाम शर्तों को वह अक्षरशः पूरा कर चुका था। फिर भी सन्धियों से बाहर अनेक प्रकार की अनुचित माँगे मीरजाफर के सामने पेश की जा चुकी थी और दबाव डाल डाल कर वे सब पूरी भी कराई जा चुकी थी। देश तथा प्रजा की हालत बिगड़ चुकी थी। इस दशा में अपने सच्चे मित्र मीरजाफर को पैरों से ठुकराकर उसकी जगह किसी और ऐसे आदमी को गद्दी पर बैठाने के लिए जिसके द्वारा बंगाल को और ज्यादा कामयाबी के साथ चूसा जा सके, अंग्रेजो ने एक दूसरे रूप से राज्य-क्रान्ति के लिए उपाय सोचना आरम्भ कर दिया। यह वही राज्य-क्रान्ति थी जिसका संकेत ऊपर क्लाइव के एक पत्र में आ चुका है।

यद्यपि मीरजाफर एक बहुत बड़ी नकद रकम कम्पनी के नये गवर्नर हालवेल की भेंट कर चुका था, तथापि पहले ही दिन से

हालवेल दूसरे रूप में की जाने वाली क्रान्ति को सफल बनाने के उपाय करने लगा था। मई सन् १७६० में गवर्नर हालवेल और कर्नल केलो के बीच इस नये षड़यन्त्र के सम्बन्ध में गुप्त पत्र-व्यवहार आरम्भ हो गया था। जुलाई के महीने में गवर्नर वन्सीटार्ट के आने पर इस षड़यन्त्र ने अपना विशाल रूप धारण किया। हालवेल और केलो के उस समय के बयानों में मीरन की मृत्यु का स्पष्ट जिक्र आता है। उसीसे मालूम होता है कि मीरन की हत्या इसी षड़यन्त्र से विशेष सम्बन्ध रखती थी। सितम्बर सन् १७६० में इस षड़यन्त्र को अन्तिम रूप देने के लिए और मीरजाफर से छेड़ छाड़ आरम्भ करने का बहाना खोज निकालने के लिए वन्सीटार्ट की अध्यक्षता में कलकत्ते में गुप्त सभाएँ हुईं। ११ सितम्बर की सभा की कार्रवाई में लिखा हुआ है—

"कर्नल क्लाइव की क्रान्ति से आज तक समय-समय पर हमारा असर बढ़ता गया है और उस असर को बनाये रखने के लिए हमें वैसे वैसे ही अपनी सैनिक शक्ति भी बढ़ानी पड़ी है। इस समय हमारे पास एक हजार से ऊपर यूरोपियन सिपाही और पाँच हजार हिन्दुस्तानी सिपाही हैं। इनका खर्च और उसके साथ-साथ सेना का आकस्मिक खर्च मिलाकर इतना ज्यादा है कि हमारी आजकल की सालाना आमदनी से किसी तरह पूरा नहीं हो सकता। × × ×"

× × ×

"इसलिए नवाब से कहना चाहिए कि आप इससे कहीं अधिक सालाना आमदनी कम्पनी के नाम कर दें। और इसके पूरे-पूरे और यथेष्ट प्रबन्ध के लिए इस तरह के कुछ जिलों का अनन्य अधिकार कम्पनी को दे दें जिनका बड़ी आसानी से इन्तजाम कर सके। × × × हम जानते हैं कि हमारी इस तरह के उपाय के रास्ते में जितनी रुकावटें डाली जा सकती हैं सब अवश्य डाली जावेंगी। × × × '

"× × × इस सम्बन्ध में अपनी समस्त इच्छाओं की पूर्ति को निश्चय कर लेने का एक ऐसा अच्छा मौका इस समय हमारे सामने है कि जैसा शायद फिर कभी न आ सके; इस मौके से सत्ता और अधिकार दोनों हमें मिल सकते हैं।"

"दूसरी खास बात जो हमें अपनी वर्तमान कार्य-प्रणाली बदलने पर बिचार करने के लिए लाचार करती है धन की कमी है। यह कमी केवल हम तक ही सीमित नहीं बल्कि नीचे लिखी चीजें भी बहुत दर्जे तक उसी पर निर्भर हैं—

"समुद्र-तट की कार्रवाइयाँ,

"पुद्दुचरी (पौण्डिचरी) का विजय करना, और

"अगले साल (बम्बई, मद्रास और कलकत्ता) तीनों प्रान्तों से माल लादकर इंगलिस्तान जहाज भेजने के पहले से धन का प्रबन्ध।"

बड़े-बड़े उपाय किये गये, फिर भी मीरजाफर पर किसी प्रकार का भी झूठा या सच्चा दोष नहीं लगाया जा सका किन्तु उन अंग्रेजों को तो कम्पनी के लिए अपनी धन और धरती की प्यास बुझाना जरूरी हो गया था। इसलिए कम्पनी की ओर से नई माँगें मीरजाफर के सामने पेश की गई। उनके विषय में इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"मीरजाफर की दशा आरम्भ से ही शोकजनक थी। खजाना सूना हो चुका, देश निर्धन हो चुका था, बड़े बड़े अनिवार्य खर्च उसके सामने थे और इस कड़ी माँगे पूरी करने के लिये वह विवश किया जाता था। × × ×"

मौलवी बदरुद्दीन अहमद लिखता है कि जो माँगें इस समय अंग्रेजों ने मीरजाफर के सामने पेश कीं, उनमें एक यह भी थी कि श्रीहट्ट (सिलहट) और इस्लामाबाद के इलाकों के लिए, फौजदारी' के अधिकार कम्पनी को दे दिये जावें। मीर जाफर इस सीमा तक जाने के लिए तैयार न था। उसने अपने चतुर और विश्वासपात्र दामाद नौजवान मीरकासिम को अंग्रेजों से बातचीत करने के लिए मुर्शिदाबाद से कलकत्ते को रवाना किया।

१५ सितम्बर सन् १७६० ई० की गुप्त सभा में अंग्रेजों ने तय किया कि मीरकासिम और राजा दुर्लभराम दोनों को इस नये षड़यन्त्र में शामिल किया जावे और इसके साथ ही साथ

राजा दुर्लभराम के द्वारा सम्राट शाह आलम को भी अपने पक्ष में करने की कोशिश की जावे। यह भी तय हुआ कि और मामूली लोगों को खास-खास नौकरियों के वादे देकर षड्यन्त्र में शामिल किया जावे तथा इस समय रूपये उनसे वसूल किये जावें। मीरकासिम से बात करने के लिए गवर्नर वन्सीटार्ट और राजा दुर्लभराम से बात करने के लिए हालवेल नियुक्त हुए।

उसी रात को अलग-अलग वन्सीटार्ट ने मीरक़ासिम से और हालवेल ने राजा दुर्लभराम से बातें की। दूसरे दिन गुप्त सभा में आकर वन्सीटार्ट और हालवेल दोनो ने अपनी-अपनी कामयाबी का हाल कह सुनया। शर्तों को तय करने इत्यादि में लगभग दस दिन का समय बीत गया। इतिहास-लेखक माले-सन लिखता है कि—

"२७ सितम्बर को कलकत्ते की अंग्रेज कौन्सिल और मीर-कासिम में एक गुप्त सन्धि हो गई, जिसमें यह तय हुआ कि मीरकासिम को मुर्शिदाबाद दरबार का वजीर-आजम (प्रधान मन्त्री) बना दिया जाय, सूबेदारी के तमाम अधिकार मीर कासिम को दिला दिये जावें, केवल 'सूबेदार' की सूखी उपाधि और व्यक्तिगत खर्च के लिए सालाना एक बंधी रकम जिन्दगी भर के लिए मीरजाफर को मिलती रहे, अंग्रेजों और मीरकासिम में स्थायी मित्रता रहे, मीरकासिम को जब जरूरत हो अंग्रेज

अपनी सेना से उसकी सहायता करें। इसके बदले में मीर कासिम बर्धमान, मेदनीपुर और चट्टग्राम तीनों जिले हमेशा के लिए कम्पनी के नाम कर दे। जो जवाहरात मीरजाफर ने कम्पनी के पास गिरवी रखे थे। उन्हें मीरकासिम नकद रुपया देकर छुड़वा ले। सम्राट शाह आलम के साथ अंग्रेज अथवा मीर कासिम बिना एक दूसरे से सलाह किये कोई समझौता न करें, और तीनों में से किसी प्रान्त में सम्राट के पैर न जमने दिये जावें। श्रीहट्ट जिले में चूना खरीदने के लिए अंग्रेजों को विशेष सुविधाएँ दी जावें, इस उपकार के बदले में मीरकासिम अधिकार मिलते ही वन्सीटार्ट को पाँच लाख रुपये, हॉलवेल को दो लाख सत्तर हजार और इसी तरह कौंसिल के अन्य सदस्यों में से किसी को ढाई लाख, किसी को दो लाख इत्यादि कुल मिलाकर बीस लाख रुपये दे और इनके आलवा पाँच लाख रुपये कम्पनी को बतौर कर्ज दे।"

इस सन्धि-पत्र पर गवर्नर वन्सीटार्ट, उसकी कौंसिल के अन्य सदस्यों और मीर कासिम के दस्तखत हो गये। पाठक भूले न होंगे कि यह वही मीरकासिम था जिसे मीरजाफर ने अपना विश्वास पात्र प्रतिनिधि बनाकर अंग्रेजों के पास बातचीत करने के लिए भेजा था।

३० सितम्बर को सारा सौदा पक्का करके मीरकासिम कलकत्ते से मुर्शिदाबाद के लिए रवाना हुआ।

२ अक्टूबर को मीर जाफर पर दबाव डालने के लिए गवर्नर वन्सीटार्ट और उसके कुछ साथी कलकत्ते से रवाना हुए। मुर्शिदाबाद भागीरथी के एक ओर और कासिमबाजार की कोठी दूसरी ओर थी। १५-१६ और १८ अक्टूबर को वन्सीटार्ट और मीरजाफर से बातचीत हुई। मीरजाफर अंग्रेजो की नई तजवीजों और मीरकासिम के इरादों का हाल सुनकर घबरा गया। उसने मीरकासिम के हाथों में शासन के अधिकार सौंपने से इन्कार कर दिया। मीरकासिम और अंगरेजों के लिए अब पीछे हट सकना एक दम असम्भव था। २० अक्टूबर को सवेरे सूर्य निकलने से कई घण्टे पहले कम्पनी की सेना ने सहसा मीर जाफर को महल में सोते हुए जा घेरा। उस समय मीरजाफर की मानसिक दशा कैसी थी इसका वर्णन मालेसन ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में इस प्रकार किया है—

'निस्सन्देह उस प्रभात की महत्वपूर्ण घड़ी में बूढ़े नवाब को तीन वर्ष से कुछ अधिक पूर्व के उस दिन की अवश्य याद आई होगी, जब कि पलासी के मैदान में, इन्हीं अँग्रेजों के साथ गुप्त समझौता करके उस गद्दी के लिए जिसे कि अब उसका एक दूसरा सम्बन्धी उसी तरह के उपायों द्वारा उसके हाथों से छीन रहा था, उसने अपने स्वामी और आत्मीय सिराजुद्दौला के साथ विश्वासघात किया था। मीरजाफर अवश्य इस समय सोचता होगा कि जिस सत्ता को मैंने इतने नीच और कलंकित उपाय से प्राप्त किया था उससे मुझे क्या लाभ पहुँचा ? मैंने

सिराजुद्दौला से उसका महल छीना ! उस महल में तीन वर्ष तक नवाबी की ! किन्तु इन तीन बर्षों के अन्दर जो यातनाएँ मुझे सहनी पड़ी उनके सामने मेरे जीवन के पहले अट्ठावन वर्ष के समस्त कष्ट फीके हैं ! वे लोग जिनके हाथ मैंने अपना देश बेचा था आज मुझे भय दिखला रहे हैं ! यदि पलासी में मैं अपने उस बालक-सम्बन्धी के साथ वफादार रहा होता, जिसने अत्यन्त करुण शब्दों में मुझसे अपनी पगड़ी की लाज रखने की प्रार्थना की थी, तो इस समय मेरी दशा क्या होती ? निस्सन्देह जो उद्धत विदेशी पलासी से अब तक मुझ पर हुकुम चलाते रहे और जो अब मुझे गद्दी से उतारने की धमकी दे रहे हैं' यदि पलासी के मैदान में मैंने उनके नाश के मुख्य साधन बनने का यश प्राप्त कर लिया होता तो इस समय मेरे हाथों में वास्तविक सत्ता होती, मेरा नाम इज्जत से लिया जाता और मेरा देश बच गया होता ! किन्तु अब—अपने महल की खिड़की से बाहर नजर डालते ही मुझे लाल वर्दी वाले अंग्रेज सिपाही दिखाई देते हैं, जो मेरे बिद्रोही रिश्तेदार के झण्डे के नीचे जमा हैं ! जो व्यवहार मैंने स्वयं सिराजुद्दौला के साथ किया, क्या मैं मीरकासिम से उससे अधिक दया की आशा कर सकता हूँ' इत्यादि । निस्सन्देह, अपने स्वामी और रिश्तेदार के साथ मीरजाफर ने जो व्यवहार किया था उस व्यवहार की स्मृति इस समय मीरजाफर की आँखों के सामने से फिर गई होगी, × × × ।'

पहले तो साहस करके एक बार मीरजाफर ने अंगरेजों का मुकाबला करने की धमकी दी किन्तु उसी क्षण उसने अपनी विवशता का अच्छी तरह अनुभव कर लिया इसीलिए तुरन्त ही उसका सारा साहस मिट्टी के कच्चे घड़े के समान टूट गया, फिर भी स्वाभिमान की रक्षा करते हुए उसने अपने आपको मीर कासिम के हाथों में सौंपने से साफ इन्कार कर दिया। इसके बाद उसी दिन सबेरे मीरजाफर को गद्दी से हटाकर कलकत्ते भेज दिया गया और मीरकासिम को उसके स्थान पर सूबेदारी की गद्दी पर बैठा दिया गया। मीरजाफर को उम्र उस समय साठ वर्ष की और मीर कासिम की उम्र लगभग चालीस वर्ष की थी। २१ अक्टूबर को वन्सीटार्ट और केलो ने इस घटना का वर्णन करते हुए सिलेक्ट कमेटी के नाम एक पत्र लिखा जिसका सार बहुत कुछ उन्हीं दोनों के शब्दों में इस प्रकार है—

"१५ अक्टूबर को नवाब मीरजाफर गवर्नर वन्सीटार्ट से भेंट करने के लिए कासिम बाजार आया। अगले दिन वन्सीटार्ट और केलो नवाब से मिलने मुर्शिदाबाद गये। दोनों ही दिन साधारण बातचीत होती रही। १८ अक्टूबर को अंग्रेजों की पुरानी शिकायतों और नई माँगों पर बातचीत करने के लिए नवाब फिर कासिमबाजार आया। ये सब शिकायतें और माँगें पहले से तीन पत्रों के अन्दर लेख-बद्ध कर दी गई थीं। ये पत्र बातचीत के आरम्भ में ही वन्सीटार्ट ने मीरजाफर को दे दिये।"

"पत्रों को पढ़कर मीरजाफर बहुत घबरा गया। उसने अपने महल वापस जाकर खाना खाने और सलाह करने के लिए समय चाहा। किन्तु अंग्रेजों ने उस पर जोर दिया कि आप यहाँ ही खाना मँगवाकर हाथ के हाथ तमाम मामले का फैसला कर दें। अन्त में बूढ़ा मीरजफर इस दर्जे तक थका हुआ मालूम हुआ कि अंग्रेजों को लाचार होकर उसे आराम करने और फिर विचार करने के लिए अपने महल लौटने की इजाजत देनी पड़ी। अंग्रेजों ने यह भी देख लिया कि बिना किसी प्रकार के शक्ति प्रदर्शन के मीरजाफर राज्य की बागडोर मीर कासिम के हाथों में देने के लिए राजी न होगा। मीरजाफर के जाने के दो घन्टे बाद मीर कासिम वहाँ पहुँचा। मीर कासिम इस समय मीर-जाफर के सामने जाने से डरता था। १६ अक्टूबर की तारीख मीरजाफर को विचार करने के लिए दी गई किन्तु उस दिन मीरजाफर की ओर से कोई उत्तर न मिल सका। तुरन्त वन्सीटार्ट और उसके साथियों ने शक्ति-प्रयोग का निश्चय किया। १६ अक्टूबर की रात को महल के अन्दर किसी त्यौहार के सिलसिले में दावत थी। तमाम लोग थक कर सोये हुए थे। अंग्रेजों ने उस मौके को बहुत गनीमत समझा। चुप-चाप रात को तीन बजे कर्नल केलो ने दो कम्पनी गोरों की और छः कम्पनी काले सिपाहियों की लेकर नदी के पार किया और पौ फटते-फटते मीर कासिम और उसके कुछ आदमियों को साथ लेकर मीरजाफर को महल के अन्दर सोते हुए जा

घेरा। सब कार्रवाई पूर्ण रूप से गुप्त रखी गई। चूँकि महल के अन्दर के सहन के फाटक बन्द थे इसलिये केलो ने बाहर के सहन में अपने सिपाहियों को खड़ा कर दिया। मीरजाफर के पास वन्सीटार्ट का एक पत्र भेजा गया। मीरजाफर पत्र पढ़कर पहले क्रोध से भर गया। उसने मुकाबले का इरादा जाहिर किया। लगभग दो घन्टे तक सन्देश आते जाते रहे। किन्तु अन्त में अपनी लाचारी को पूरी तरह अनुभव कर मीरजाफर ने मीर कासिम को बुलवा भेजा और गद्दी उसके सुपुर्द कर देने की रजामन्दी जाहिर की।"

"मीर कासिम ने शासन का कुल भार अपने ऊपर ले लिया और सेना की पिछली तनखाहों को बकाया अदा करने और सम्राट को बराबर खिराज भेजते रहने का वादा किया। इस तरह २० अक्टूबर को सबेरे मीर जाफर बंगाल की गद्दी से अलग किया गया और उसकी जगह मीर कासिम अली खाँ के नाम की नौबत बजने लगी।"

अंग्रेज द्विभाषिया (दो भाषाओं को जानने वाला) लशिंगटन के कथनानुसार मीरजाफर ने अन्त में कर्नल केलो से जो कुछ कहा वह यह था—

"आप ही लोगों ने मुझे गद्दी पर बैठाया था; आप चाहें तो मुझे उतार सकते हैं। आप लोगों ने अपने वादों को तोड़ना मुनासिब समझा। मैंने अपने वादे नहीं तोड़े। अगर मेरे दिल में

इसी तरह की चालें होतीं और मैं चाहता तो बीस हजार फौज जमा कर सकता था और आपसे लड़ सकता था। मेरे बेटे मीरन ने मुझे इन सब बातों के बारे में पहले ही से सावधान कर दिया था।"

बङ्गाल की इस दूसरी राज्य-क्रान्ति के सम्बन्ध में जो कुछ भी वृत्तान्त कहा गया है वह सब उस क्रान्ति के कर्ता-धर्ता विधाता अंग्रेजों के ही बयानों से है। किन्तु मीरजाफर के साथ किये गये इस विश्वासघात पूर्ण व्यवहार को उचित साबित करने के लिये उस पर कुछ न कुछ अपराध लगाना जरूरी था। १० नवम्बर सन् १७६० ई० को कलकत्ते में अंग्रेज अफसरों की एक सभा हुई जिसमें कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम प्रसिद्ध जालसाज हालवेल का लिखा हुआ वह पत्र पढ़ा गया जिसकी च ऊपर किसी एक स्थान पर की जा चुकी है। उस पत्र में लिखा था—

"नवाब मीरजाफर अली खाँ निहायत जालिम और लालची तबीयत का मनुष्य था, साथ ही बड़ा आलसी भी था और उसके आस-पास के आदमी या तो कमीने गुलाम और खुशामदी थे अथवा उसकी नीच बृत्तियों की पूर्ति के साधक थे, हर श्रेणी के इस तरह के लोगों की अनेक मिसालें मौजूद हैं जिनका बिना किसी कारण उसने खून कर डाला।"

इसके बाद इसी पत्र में पिता अथवा पति के नाम इत्यादि

सहित बड़ी तफसील के साथ अनेक ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की सूची दी हुई है, जिनके सम्बन्ध में कहा गया है कि मीरजाफर ने उन सब को मार डाला। किन्तु १ अक्टूबर सन् १८६५ ई० को मीरजाफर की मृत्यु के बाद क्लाइव और उसके साथियों ने डाइरेक्टरों के नाम एक दूसरा पत्र भेजा जिसमें लिखा है—

"× × × हम आपको सूचित कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि मि० हालवेल ने × × × जिन भयङ्कर हत्याओं का अपराध मीरजाफर पर लगाया है वे उस नरेश के चरित्र पर अन्यायपूर्ण कलङ्क हैं और उसमें कुछ भी सच नहीं है। जिन पुरुषों और स्त्रियों की (हालवेल के उस पत्र में) सूची दी गई है और कहा गया है कि मीरजाफर ने उन्हें मरवा डाला, सिवाय दो के उनमें से सब इस समय जीवित हैं × × ×।"

कहा नहीं जा सकता कि इस प्रकार के और कितने झूठ सिराजुद्दौला और मीरजाफर दोनों के विरुद्ध इस समय तक प्रचलित हैं और इतिहास की पुस्तकों में भी दर्ज हैं।

मीरजाफर को गद्दी से उतार कर कलकत्ते में नजर बन्द रखा गया। दो हजार रुपये माहवार उसके खर्च के लिये नियत किये गये। कहा जाता है कि इस पर बूढ़े मीरजाफ़र ने करबला जाने की इजाजत चाही और उसके लिये खर्च की

दरख्वास्त की, किन्तु उसे करबला जाने की इजाजत भी न मिल सकी ।

अंग्रेजों और कम्पनी को लाभ

अब पाठकों को केवल इतना ही बतलाना शेष रह गया है कि मीरजाफर के साथ किये गये इस विश्वासघात के द्वारा अंग्रेजों और उनकी कँपनी को क्या-क्या लाभ पहुँचा ?

सब से पहले तीन जिले बर्धमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम जिनकी वार्षिक आय कुल बङ्गाल की आय का एक तिहाई थी हमेशा के लिये कम्पनी को सौंप दिये गये। इन तीनों जिलों के लिये मुर्शिदाबाद के दर्बार से कम्पनी के नाम अलग-अलग सनदें जारी कर दी गईं। बर्धमान जिले के लिये जो सनद जारी की गई उसमें लिखा है कि वहाँ के जमींदार और किसान दोनों पहले के ही समान कायम रहेंगे, केवल सरकारी मालगुजारी का जो रुपया अभी तक सूबेदार के कर्मचारी वसूल करके मुर्शिदाबाद भेजा करते थे वह भविष्य में कम्पनी के नौकर बसूल करके कम्पनी के पास कलकत्ते भेजा करेंगे और इस धन के खर्च से कम्पनी साम्राज्य की रक्षा के लिये और जब आवश्यकता पड़े, सम्राट अथवा सूबेदार की सहायता के लिये पाँच सौ यूरोपियन सवार दो हजार यूरोपियन पैदल और आठ हजार हिन्दुस्तानी सिपाहियों की एक सेना रखेगी। इसी तरह की सनदें मेदिनीपुर चट्टग्राम जिले के लिए भी जारी की गईं।

और इसके अतिरिक्त वन्सीटार्ट और केलो ने कलकत्ता कमेटी को लिखा कि इस क्रान्ति से—

"निस्सन्देह कम्पनी को बड़ा लाभ हुआ है। × × × पटने की फौज को देने के लिए कर्नल के हाथ रुपये की रकम भेजी जावेगी और हमें यह भी आशा है कि इसके अलावा कलकत्ते भेजने के लिए हमें तीन या चार लाख रुपये और मिल जावेंगे जिनसे कम्पनी की वहाँ की और मद्रास की इस समय जरूरतें पूरी हो सकेंगी।"

पहले कहा जा चुका है कि सिराजुद्दौला ने एक बार कम्पनी को अलग टकसाल कायम करने से रोक दिया था। फिर बाद में कई एक शर्तों के साथ उसे इजाजत देनी पड़ी। किन्तु इस पर भी सिराजुद्दौला के समय में कम्पनी की टकसाल बंगाल में कायम न हो सकी। इतिहास लेखक ओर्मे लिखता है कि—

"पलासी युद्ध के बाद कलकत्ते में कम्पनी की टकसाल कायम हुई और १६ अगस्त सन् १७५७ ई० को कम्पनी के नाम के पहले रुपये ढाले गये। फिर भी तीन वर्ष तक अंग्रेजों को इस टकसाल से लाभ के स्थान पर हानि होती रही, क्योंकि बँगाल भर में मुर्शिदाबाद के सरकारी रुपयों के सामने कम्पनी के रुपयों को बिना बट्टे कहीं कोई न लेता था। अब अंग्रेजों को इस असुविधा के दूर करने का मौका मिला। २० अक्टूबर को गद्दी पर बैठते ही मीर कासिम ने कम्पनी के नाम एक पर्वाना

जारी किया, जिसमें उसने उन्हें अपने कलकत्ते की टकसाल में मुर्शिदाबाद की सरकारी अशर्फियों और रुपयों के समान तोल और समान धातु की अशर्फियाँ और रुपये ढालने की इजाजत दी और इसके साथ-साथ 'एक निहायत कड़ा हुकुम जारी कर दिया कि कोई सर्राफ सौदागर कलकत्ते के सिक्कों को लेने से इन्कार न करे और न उन पर किसी तरह का बट्टा माँगे।"

निस्सन्देह नवाब और उसकी प्रजा के साथ यह एक बहुत बड़ा अन्याय था। इससे सरकारी आमदनी का एक बड़ा मद टूट गया और मुर्शिदाबाद दरबार की आर्थिक स्थिति को और भी अधिक धक्का पहुँचा। यह सब लाभ तो कम्पनी को हुआ। इसके अतिरिक्त वन्सीटार्ट और उसके साथियों को बीस लाख रुपये नकद मीर कासिम से नजराने में मिले।

अनेक इतिहास-लेखकों ने कड़े शब्दों में मीरजाफर के साथ अंगरेजों के इस विश्वासघात की तीव्र आलोचना की है। इस सम्बन्ध में इतिहास-लेखक टारेन्स लिखता है—

"उन लोगों तक में, जिन्होंने यूरोप निवासियों का दिखाने के लिए यूरोपवालों के एशियाई करतूतों पर मुलम्मा फेरने की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले रखी है, इस अन्याय को प्रायः कोई भी क्षम्य नहीं कहता। मीरजाफर × × × और कम्पनी के बीच मित्रता की कसमें खाई जा चुकी थीं। और वह मित्रता खून से पक्की की जा चुकी थीं। और यदि कभी भी ईमानदारी का कम से कम ऊपरी रूप बनाये रखना शर्मवाले मनुष्य के

लिए जरूरी था तो इस मामले में कलकत्ते के गवर्नर और उसकी कौन्सिल को इतनी शर्म होनी चाहिए थी। किन्तु इस पर भी उस दो लाख पाउण्ड के बदले जो उन्हें व्यक्तिगत हैसियत से मिले और उन तीन जरखेज इलाकों के बदले जो कम्पनी को मिले, इन लोगों ने अपने ऐसे मित्र और सहायक को बेच दिया जो इन पर हद से ज्यादा विश्वास करता था।'

मीर कासिम के समय बंगाल की हालत

मीर कासिम के गद्दी पर बैठते ही मुर्शिदाबाद दरबार और बंगाल की प्रजा की हालत पहले से भी कहीं अधिक शोक जनक हो गई। सब से पहले मीर कासिम ने देखा कि राज्य की माली हालत बहुत ही बिगड़ी हुई है। सरकारी मालगुजारी ठीक तौर पर नहीं वसूल हो रही है और खजाना करीब-करीब खाली हो चुका है और फौज की कई महीने की तनखाहें चढ़ी हुई हैं। इन सब बातों के अलावा ठीक मीरजाफर के ही समान मीर कासिम ने अब महसूस किया कि जो बड़े-बड़े वादे उसने अंग्रेजों के साथ कर रखे थे, उन्हें पूरा कर सकना इतना आसान न था जितना कि वह गद्दी पर बैठने के पहले समझता था।

उन समस्त वादों और अन्य नई-नई माँगों को पूरा करने के लिए मीर कासिम ने अपने यहाँ के जमीदारों और रईसों को अँगरेजों के ही सिपाहियों द्वारा बुला-बुला कर बलपूर्वक उनसे रकमें वसूल करना आरम्भ कर दिया। जब इससे भी काम न चल सका तब उसे विवश होकर नगर धनी जगत सेठ

से कर्ज लेना पड़ा और अन्त में अंगरेजों को रकमें देने के लिए रियासत के हीरे-पन्ने आदि जवाहरात बेचकर और महल के सोने-चाँदी के बर्तन गलवा कर सिक्के ढलवाने पड़े।

पाठकों को याद होगा कि कुछ वर्ष पहले कम्पनी का कर्ज चुकाने के लिए मीर जाफर ने वर्धमान जिले की सरकारी माल-गुजारी कम्पनी के नाम कर दी थी। उसी समय से बर्धमान का जिला अंग्रेजों के प्रबन्ध में आ गया था और कम्पनी के सिपाहियों ने जिनमें अधिकांश देशी सिपाही मद्रास से लाये गये थे, उस जिले भर में लूट-मार जारी कर रखी थी। उन सब तिलंगे सिपाहियों के अत्याचारों की शिकायत करते हुए सितम्बर सन् १७६० ई० में बर्धमान के जमींदार राजा तिलकचन्द ने कलकत्ते के अंग्रेज कमेटी को लिखा—

'अनेक तिलंगों ने मण्डलघाट, मानकर, जहानाबाद, चित वर, बरसात, बलगुरी और चोमहन के परगनों तथा दूसरे स्थानों में घुसकर वहाँ के रहने वालों को लूट लिया है और उनके साथ इस प्रकार के अत्याचार किये हैं जिनसे लोगों का जीवन संकट में पड़ गया है। इन अत्याचारों से विवश होकर वहाँ के रहनेवाले भाग गये है और उन गाँवों में लगभग दो या तीन लाख रुपये की हानि हुई है।'

फिर भी उन तिलंगों की लूट-मार पहले के ही समान जारी रही। इसलिए राजा तिलकचन्द को कुछ समय बाद फिर कल कत्ते की अंग्रेज कमेटी को लिखना पड़ा—

"तिलंगों के व्यवहार से प्रजा को अत्याधिक कष्ट हो रहा है और लाचार होकर प्रजा अपने घर-बार छोड़कर भाग रही है।"

बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि कम्पनी ने इन शिकायतों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। लिखा है कि बर्धमान जिले के कई परगने उस समय वीरान पड़े हुए थे।

आये दिन के राज्य-परिवर्तन के कारण गङ्गाल के शासन की अवस्था अत्यन्त डावाँ डोल हो रही थी। कम्पनी की व्यापार सँबन्धी नीति अन्याय, अत्याचार और उपद्रव समस्त बङ्गाल में बड़ी तेजी के साथ बढ़ते जा रहे थे। अंग्रेजों ने जो लगभग तीस हजार नई सेना मीरकासिम और सम्राट की सहायता तथा साम्राज्य की रक्षा के लिए कहकर जमा कर रखी और जिसके खर्च के लिए मीर कासिम से तीन बड़े-बड़े जिले लिये गये थे, वही सेना अब तमाम बङ्गाल में इन समस्त अन्याय, अत्याचार और उपद्रवों को जारी रखने के लिए बिना किसी संकोच और भय के काम में लाई जा रही थी।

शाही फरमान में कपनी के मुलाजिमों अथवा दूसरे अंग्रेजों को निजी तौर पर बिना सरकारी महसूल दिये तिजारत करने की इजाजत कहीं न थी और न कम्पनी को ही देश के भीतर की मामूली तिजारत में बिना महसूल दिये हिस्सा लेने का अधिकार दिया गया था। इतना ही नहीं बल्कि जैसा पहले कहा जा चुका है कि नमक, छालिया, तम्बाकू इमारती लकड़ी, सूखी मछली इत्यादि अनेक वस्तुओं में आरम्भ से ही बङ्गाल भर के

अन्दर यूरोप-निवासियों को तिजारत करने की सख्त मनाही थी।

सबसे से पहले मीरजाफर के समय में अंग्रेजोंने जबर्दस्ती इस नियम को तोड़ा और नमक इत्यादि की तिजारत आरम्भ कर दी। मीरजाफर ने इसका विरोध किया किन्तु उसकी एक न चल सकी। अब मीरकासिम को नवाब बनाने के बाद कम्पनी के कर्मचारी और दूसरे अंग्रेज भी कम्पनी का पास लेकर बिना किसी तरह का महसूल दिये देश भर में हर चीज का व्यापार करने लगे और जब नवाब के कर्मचारी महसूल माँग थे तब उन्हें कम्पनी के नये सिपाहियों द्वारा ठीक कर दिया जाता था। इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"इस तरह कम्पनी के कर्मचारियों का माल एकदम बिना महसूल सब जगह आता जाता था, जब कि शेष समस्त व्यापारियों को अपने माल पर भारी महसूल देना पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि देश का समस्त व्यापार तेजी के साथ कम्पनी के कर्म चारियों के हाथों में आने लगा और राज्य की आय का एक स्रोत एकदम सूखने लगा। जब महसूल जमा करने वाला कोई सरकारी कर्मचारी कम्पनी के पास के इस दुरुपयोग पर विरोध करता और माल रोकता था तब उसे गिरफ़्तार कर नजदीक की अंग्रेजी कोठी में पहुँचा देने के लिए सिपाहियों का एक दस्ता भेज दिया जाता था।"

वेरेल्स्ट नामक अंग्रेज इस सम्बन्ध में लिखता है—

"उन दिनों बहुत से हिन्दुस्तानी व्यापारी अपनी सुविधा के

लिए कम्पनी के किसी नौजवान मुहर्रिर को धमकी देकर उसका नाम खरीद लेते थे और उसके नाम के "दस्तक" (पास) के द्वारा देश के लोगों को तंग करते थे और उन पर अन्याय करते थे। इसके द्वारा इतनी अधिक आमदनी होने लगी कि कई नौजवान (अंग्रेज) मुहर्रिर १५ हजार और २० हजार रुपये साल खर्च कर सकते थे, नफीस कपड़े पहनते थे और रोज अच्छे से अच्छा खाना उड़ाते थे।"

यह आगे चलकर लिखता है—

"बिना महसूल दिये तिजारत की जाती थी और उसके जारी रखने में बड़े-बड़े अन्याय किये जाते थे। × × × इसी बात के कारण मीरकासिम के साथ लड़ाई हुई।"

कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने ८ फरवरी सन् १७४६ के एक पत्र में कम्पनी के नौकरों, गुमाश्तों, एजेण्टों और दूसरों की इस निजी तिजारत' को नाजायज 'दस्तक का लज्जाजनक दुरुपयोग' हर तरह से अनधिकार युक्त" और नवाब तथा उसकी "कुदरती प्रजा" दोनों के साथ "डबल अन्याय स्वीकार किया है किन्तु डाइरेक्टरों के इस पत्र ने बाद भी इस अन्याय में कोई अन्तर न पड़ा।

उन सिपाहियों के जरिये, जो नवाब के धन से नियुक्त किये गये थे, नवाब की ही प्रजा के ऊपर जिस प्रकार के अत्याचार किये जाते थे, उन सब का कुछ अनुमान मीरकासिम के नाम बाकर-

गंज के एक सरकारी कर्मचारी के २५ मई सन् १७६२ के नीचे लिखे पत्र से किया जा सकता है। वह लिखता है—

"××× यह जगह पहले बड़ी तिजारत की जगह थी, किन्तु अब नीचे लिखी कार्रवाइयों के कारण से वर्बाद हो गई। एक अंग्रेज माल खरीदने अथवा बेचने के लिए यहाँ किसी गुमाश्ते को भेजता है। फौरन् वह गुमाश्ता समझ लेता है कि यहां के किसी भी रहनेवाले के हाथ जबर्दस्ती अपना माल बेचने अथवा जबदस्ती उसका माल खरीदने का मुझे पूरा अधिकार है, और यदि वह रहने वाला खरीदने अथवा बेचने का सामर्थ्य न रखता हो और इन्कार करे तो तुरन्त उस पर कोड़े बरसाये जाते हैं अथवा उसे कैद कर लिया जाता है। यदि वह राजी हो जावे तो भी केवल इतना ही काफी नहीं समझा जाता, बल्कि एक दूसरी जबर्दस्ती यह की जाती है कि अनेक चीजों के व्यापार का ठेका अपने हाथों में ले लिया जाता है अर्थात् जिन-जिन चीजों का व्यापार करते हैं उनका व्यापार किसी दूसरे को नहीं करने दिया जाता और न किसी दूसरे के पास से किसी को खरीदने दिया जाता है। ××× और फिर अंग्रेज समझते हैं कि कम से कम जो हम कर सकते हैं, वह यह है कि दूसरा सौदागर जिस कीमत पर कोई चीज खरीदता है, हम उसी चीज को उससे बहुत कम कीमत पर खरीदें। प्रायः ये लोग कीमत देने से ही इन्कार कर देते हैं और मैं दखल देता हूँ तो तुरन्त मेरी शिकायत होती है।"

अठारहवीं शताब्दी के आखिरी आधे भाग में बंगाल भर में किये गये इस जबरदस्त और व्यापक अत्याचार के विषय में हम इंगलिस्तान के प्रसिद्ध नीतिज्ञ और वक्ता एडमंड बर्क के कुछ वाक्य उद्धृत करते हैं।

'तिजारत जो संसार के हर दूसरे देश को धनवान बनाती है; बगाल को सर्वनाश की ओर ले जा रही थी। पहले समय में जब कि कम्पनी को देश में किसी तरह की राज्य-सत्ता प्राप्त न थी, उन्हें अपने दस्तक या पास के ऊपर बड़े-बड़े अधिकार मिले हुए थे; उनका माल बिना महसूल दिये देश भर में जा आ सकता था। धीरे-धीरे कम्पनी के नौकर अपनी-अपनी निजी तिजारत के लिए इस पास का उपयोग करने लगे। यह मामला जब तक कि थोड़ा थोड़ा होता रहा देश की सरकार ने कुछ हद तक इसे बर्दाश्त किया, किन्तु जब सभी लोग इस तरह की तिजारत करने लगे तब, तिजारत की अपेक्षा उसे डकैती कहना ज्यादा ठीक मालूम होता था।"

'ये व्यापारी हर जगह पहुँचते थे। अपने ही दामों पर माल बेचते थे और दूसरे लोगों को भी जबर्दस्ती लाचार कर के उनका माल अपने ही दामों पर खरीदते थे। बिलकुल यह मालूम होता था कि तिजारत के बहाने एक फौज लोगों को लूटने जा रही है। लोग अपनी देशी अदालतों से रक्षा करते थे, किन्तु व्यर्थ। अंग्रेज व्यापारियों की यह सेना अपने कूच में ततारी आक्रमणकारियों से बढ़कर लूट मार और बर्बादी

करती थी। ××× इस तरह यह अभागा देश दोहरे अन्याय की भयानक लूट द्वारा टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा था।"

सन्देह होने लगता है कि उन दिनों बंगाल में किसका शासन था। वास्तव में शासन न मुगल सम्राट का था, न मुर्शिदाबाद के सूबेदार का; शासन था विदेशियों की कूट नीति अराजकता और इस देश के दुर्भाग्य का और यह सब परिणाम था थोड़े से भारतवासियों की लज्जाजनक देश-घातकता का। हम पहले कह चुके हैं कि बर्धमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम की आय से वे सब सेनाएँ रखी गई थीं जिनके द्वारा बंगाल भर में इस तरह की भयानक नादिरशाही चलाई जा रही थी। वास्तव में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल के अन्दर अंगरेजों के अत्याचारों की तुलना संसार के इतिहास के किसी दूसरे पन्ने के पर मिलना कठिन है।

बंगाल और बिहार भर में उस समय कम्पनी की कोठियाँ फैली हुई थीं। नमक से लेकर इमारती लकड़ी तक अनेक चीजों का समस्त व्यापार अंग्रेजों के हाथों में आ गया था। किसानों की खड़ी खेती कम्पनी के अंग्रेज नौकर जिस भाव चाहे खरीद लेते थे। देश के हजारों लाखों व्यापारियों की रोजी छिन चुकी थी और किसानों की दशा इससे भी अधिक शोकजनक थी। कम्पनी के गुमाश्तों और एजेन्टों से नवाब के कर्मचारियों के साथ रोजाना हर जगह झगड़े होते थे। कम्पनी के गुमाश्ते अनेक झूठी शिकायतें रोजाना कलकत्ते भेजते रहते थे और

वहाँ से वही फौजी सिपाही नवाब के कर्मचारियों अथवा स्वाभिमानी प्रजा को दुरुस्त करने के लिए जगह-जगह भेज दिये जाते थे। नवाब की सरकारी चौकियों में बंगाल भर के अन्दर कहीं पर एक पाई महसूल की वसूल न होती थी। मीर कासिम ने पत्रों द्वारा अनेक बार ही अत्यन्त दीनतापूर्ण शब्दों में गवर्नर वन्सीटार्ट से इन तमाम बातों की शिकायत की, किन्तु इन शिकायतों और मीर कासिम के प्रयत्नों का कुछ भी असर न हुआ।

इन समस्त अपमानों से बंगाल की वास्तविक रक्षा करने और भावी आपत्तियों से देश को बचाने का केवल एक ही उपाय हो सकता था। देश में उस समय केवल एक ही शक्ति थी, जिसके झण्डे के नीचे शेष समस्त शक्तियों का मिलना सम्भव हो सकता था। वह शक्ति दिल्ली के मुगल सम्राट की रही-सही शक्ति थी। उपाय केवल यह था कि विदेशी लुटेरों का मुकाबला करने के लिए दिल्ली सम्राट के झण्डे के नीचे देश की समस्त हिन्दू तथा मुसलमान राज शक्तियों को एकत्रित किया जावे और उनके सम्मिलित प्रयत्नों द्वारा विदेशी लुटेरों को बंगाल तथा भारत से निकालकर बाहर कर दिया जावे।

सब से बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि यह उपाय उस समय उसी नन्दकुमार को सूझा जिसने सन् १७५७ ई० में अमीचन्द के धन के लोभ में आकर अपने स्वामी सिराजुद्दौला, भारतीय प्रजा तथा फ्रान्सीसी तीनों के साथ विश्वासघात किया था। इससे अनुमान किया जाता है कि राजा नन्दकुमार अब अपने

देश को अंग्रेजों के हाथों बिकते हुए और प्रजा के ऊपर उनके अत्याचारों को देखकर अपनी भूल पर पछताने लगा था। इसी लिए राजा नन्दकुमार ने जी तोड़ प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया।

सम्राट शाह आलम और अंग्रेज

सम्राट शाह आलम अभी तक बिहार में था। सितम्बर सन् १७६० ई० में ही अंग्रेज शाह आलम को अपनी ओर करने का निश्चय कर चुके थे। इस समय बंगाल, बिहार और उड़ीसा के अनेक जमींदार जो नई क्रान्ति के विरुद्ध थे, सम्राट के झण्डे के नीचे जमा हो रहे थे। अंगरेजों ने अब जिस तरह हो, बिहार पहुँच कर सम्राट से मामला तय कर लेना आवश्यक समझा।

कर्नल केलो की जगह अब मेजर कारनक बंगाल की सेनाओं का प्रधान सेनापति था। जनवरी सन् १७६१ ई० में कारनक पटने पहुँचा। कम्पनी की सेना के अतिरिक्त राजा रामनारायण की सेना और मुर्शिदाबाद की सेनाएँ इस समय कारनक के साथ थीं। गया मौनपुर के निकट सम्राट की सेना और इन सेनाओं का आमना-सामना हुआ। अन्त में समझौते की बात-चीत होने लगी।

सम्राट शाह आलम कारनक को साथ लेकर पटना आया। मीरकासिम पटने में मौजूद था। मीरकासिम ने हाजिर होकर पिछले खिराज के बदले में एक बहुत बड़ी नकद रकम सम्राट को भेंट की और अपने यहाँ की सरकारी टकसाल में शाह आलम

दूसरे के नाम के सिक्के ढलवाने का वादा किया। यही वादा कलकत्ते की टकसाल के बारे में अंग्रेजों ने भी किया। मीरकासिम ने तीनों प्रान्तों की आमदनी में से चौबीस लाख रुपये सालाना दिल्ली-सम्राट की सेवा में भेजने का वचन दिया। सम्राट शाह-आलम मार्च सन् १७६१ ई० में तोनों प्रान्तों की सूबेदारी का पर्वाना बाजाब्ता मीरकासिम के नाम जारी कर दिया। अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य पूरा हो गया। उन्होंने इस अवसर पर एक कोशिश यह भी की कि जिस तरह मीरकासिम को शाही पर्वाना दिया गया है। उसी तरह जो इलाके अंग्रेज कम्पनी के पास थे उनके लिये कम्पनी को अलग सूबेदारी का पर्वाना दिया जावे किन्तु शाहआलम ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया। इसी समय एक और प्रार्थना अंग्रेजों ने शाहआलम से यह की कि मीरकासिम को सूबेदार रहने दिया जावे, किन्तु तीनों प्रान्तों की दीवानी के अधिकार उससे लेकर कम्पनी को दे दिया जावे। दीवानी का अर्थ यह था कि सूबेदार के अधीन तीनों प्रान्तों से सरकारी मालगुजारी वसूल करके उसका हिसाब सम्राट और सूबेदार दोनों को दे देना और वसूली का कुल खर्च निकाल कर शेष सब धन सूबेदार से सुपुर्द कर देना कम्पनी का काम रहे और उस धन से सरकारी फ़ौजें रखना, अपने प्रान्तों के शासन का शेष समस्त कार्य चलाना और सम्राट को सालाना खिराज भेजना सूबेदार का काम रह जाय।

शाहआलम स्वभावतः इस समय दिल्ली लौटने के लिये

उत्सुक था। राजधानी के अन्दर सिंहासन के लिए किसी दूसरे हकदार के खड़े हो जाने की भी संभावना थी। सम्राट ने चाहा कि अंग्रेज अपनी सेना सहित मेरे साथ दिल्ली चलें। इसके बदले में वह कम्पनी को तीनों प्रान्तों का दीवान बना देने के लिए भी तैयार था। किन्तु अंग्रेजों के पास उस समय इस कार्य के लिए काफी सेना न थी। स्वयं बंगाल के अन्दर वे अपने अनेक शत्रु पैदा कर चुके थे। इसलिए वे सम्राट की इस इच्छा से उस समय लाभ न उठा सके और जून सन् १७६१ ई० में सम्राट शाहआलम पटने से दिल्ली की ओर लौट गया।

अब अंग्रेजों को किसी बात का डर न था। सम्राट शाह आलम से किसी प्रकार निपटारा हो ही गया था। बंगाल का मैदान फिर कम्पनी के कर्मचारियों की लूट और जबर्दस्तियों के लिए खाली हो गया था। इस बार उनका पहला वार राजा रामनारायण पर हुआ। अंग्रेजों के ही कथनानुसार राजा राम-नारायण एक अत्यन्त योग्य शासक था। वह अत्यन्त धनवान भी प्रसिद्ध था और आरम्भ से अंग्रेजों का पक्का हितसाधक रह चुका था।

किन्तु अब मीर कासिम और अंग्रेज दोनों को ही रुपये की जरूरत थी। अपनी सेना के बल लोगों को पकड़ पकड़ कर मीर कासिम के सामने पेश करना और उनसे रकमें वसूल करना अंग्रेजों का इस समय एक खास पेशा था। यह इलजाम लगा कर कि राजा रामनारायण के जिम्मे सूबेदार की बकाया

निकलती है। गवर्नर वन्सीटार्ट ने राजा रामनारायण को छल द्वारा गिरफ्तार कर मीरकासिम के हवाले कर दिया।

निरपराध राजा रामनारायण को मुर्शिदाबाद में हथकड़ियाँ डालकर रखा गया, उससे खूब धन वसूल किया गया और पटने में उसके स्थान पर दूसरा नवाब नियुक्त कर दिया गया।

मीर कासिम का चरित्र और शासन

मीर कासिम साधारण चरित्र का मनुष्य न था।

एक अंग्रेज इतिहास-लेखक लिखता है:—"मीर कासिम के अन्दर एक योद्धा की वीरता और एक राजनीतिज्ञ की दूर-दर्शिता दोनों मौजूद थीं।" कर्नल मालेसन के अनुसार मीर कासिम को मीर जाफर के साथ देश-घातकों की श्रेणी में रखना मीर कासिम के साथ अन्याय करना है। यही विद्वान् इतिहास-लेखक लिखता है कि—"मीर कासिम का इरादा मीर जाफर के साथ विश्वासघात करने का न था। मीर कासिम ने अपने बूढ़े श्वसुर की निर्बलता, भीरुता और अयोग्यता को भली भाँति अनुभव कर लिया था; उसकी आत्मा यह देखकर अत्यन्त तप्त थी कि बङ्गाल का सूबेदार अंग्रेजों के हाथों की केवल एक कठपुतली रह गया था; और यह देखकर ही मीर कासिम ने जैसे हो सका, सूबेदार की सत्ता को फिर से स्थापित करने का संकल्प किया।"

इसमें भी सन्देह नहीं कि मीर कासिम ने गद्दी पर बैठते

ही बङ्गाल की दशा को सुधारने का जी तोड़ प्रयत्न किया और इस प्रयत्न में बहुत दर्जे तक उसे आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई।

चूँकि मुर्शिदाबाद की राजधानी में अंग्रेजों का प्रभाव अधिक बढ़ गया था। इसलिये मीर कासिम ने मुंगेर को अपनी नई राजधानी बनाया। उसने मुंगेर की बड़ी सुन्दर और मजबूत किलेबन्दी की। लगभग चालीस हजार सेना वहाँ जमा की। उस सेना को यूरोपियन ढङ्ग के शस्त्रों की शिक्षा देने के लिये अपने यहाँ अनेक योग्य यूरोपियन नौकर रखे। एक बहुत बड़ा नया कारखाना तोपें ढालने का उसने कायम किया, जिसकी तोपों के विषय में कहा जाता है कि उस समय की यूरोप की बनी हुई तोपों से कहीं बढ़कर थीं। मीर कासिम की सारी प्रजा उससे अत्यन्त सन्तुष्ट थी और उससे प्रेम करती थी।

मीरकासिम के विरुद्ध षड़यन्त्र

किन्तु जैसे ही मीर कासिम और उसकी प्रजा को थोड़ा-बहुत पनपने का समय आया त्यों ही मीर कासिम को भी गद्दी से हटाने की तैयारियाँ होने लगीं। कर्नल मालेसन साफ लिखता है कि:—"मीर कासिम ने अंग्रेजों के साथ अपने सभी वादे पूरे कर दिये फिर भी लालची अंग्रेजों को अपनी धन-पिपासा को शान्त करने का सर्वोत्तम उपाय यही दिखाई दिया

कि मीर कासिम का नाश करके उसके उत्तराधिकारी के साथ नये सिरे से सौदा तय किया जावे।"

जिस तरह मीर जाफ़र के विरुद्ध अंगरेजों ने मीर कासिम को अपने षड्यन्त्रों का केन्द्र बनाया था उसी तरह अब उलट कर फिर मीर कासिम के विरुद्ध बूढ़े मीर जाफ़र को इन नये षड्यन्त्रों का केन्द्र बनाया गया। मीर कासिम के विरुद्ध सामग्री तैयार करने के लिए कलकत्ते की सिलेक्ट कमेटी के कुछ सदस्यों ने ११ मार्च सन् १७६२ ई० को कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र भेजा, जिसमें इन सबों ने मीरकासिम और उस के चरित्र पर अनेक भूठे-सच्चे दोष लगाये, मीर जाफ़र की खूब प्रशंसा की, यह स्वीकार किया कि मीर जाफ़र के चरित्र पर इसके पूर्व जो दोष लगाये जा चुके थे, वे सब भूठे थे और मीर जाफ़र को गद्दी से उतारना एक भूल और अन्याय था।

मीर कासिम के चरित्र को कलँकित करने में अब इन लोगों ने कोई बात उठा न रखी। अंग्रेजों को रूपये देने के लिए ही मीर कासिम को अपने अनेक आश्रितों पर अत्याचार करने पड़े। इतिहास से स्पष्ट है कि अंग्रेज ही इस तरह के अनेक भाग्यहीनों को लाकर मीर कासिम के हवाले करते थे। अंग्रेजों ने ही साढ़े सात लाख रूपये अथवा कुछ अधिक के बदले में अपने सच्चे मित्र निर्दोष रामनारायण को छल से पकड़ कर मीर कासिम के हाथों में दिया और अब अंग्रेज ही मीर कासिम को इन समस्त अन्यायों के लिए दोषी ठहराते थे।

तिजारत और सरकारी महसूल सम्बन्धी अंग्रेजों के अत्याचार इस समय तक समस्त बंगाल में फैल चुके थे, और दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे। इन अत्याचारों के सम्बन्ध में कर्नल मालेसन लिखता है—

'इस लज्जाजनक और अन्याय पूर्ण पद्धति का परिणाम यह हुआ कि इज्जतवाले देशी व्यापारी बर्बाद हो गये। जिले के जिले निर्धन हो गये देश का व्यापार उलट-पुलट हो गया और इसके द्वारा नवाब को जो आमदनी होती थी उसमें धीरे-धीरे किन्तु लगातार कमी आती गई। मीर कासिम ने बार-बार कलकत्ते की कौन्सिल से इन ज्यादतियों की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ।'

अन्त में इन असंख्य शिकायतों के जवाब में इन सभी बातों का निपटारा करने के लिए ३० नवम्बर सन् १७६२ ई० को गवर्नर वन्सीटार्ट और वारन हेस्टिंग्स नवाब से भेट करने के लिए मुंगेर पहुँचे। मीर कासिम ने जो शिकायतें इस समय वन्सीटार्ट के सामने पेश की उनमें से एक यह भी थी—

'जब सूबेदार (मीर कासिम) विहार की ओर गया हुआ था और बंगाल में कोई शासक न रहा था, उस समय अंग्रेजों ने अपने अत्याचारों द्वारा इस सूबे के हर जिले और हर गाँव को बर्बाद कर डाला डाला था, प्रजा से उनकी रोज की रोटी तक छीन ली गई थी और सरकारी महसूलों और मालगुजारी

का जमा होना बिलकुल बन्द हो गया था, जिससे सूबेदार को लगभग एक करोड़ रुपये का नुकसान हुआ।'

१५ दिसम्बर सन् १७६२ ई० को वन्सीटार्ट और मीर कासिम के बीच एक सन्धि हुई जो "मुंगेर की सन्धि" के नाम से प्रसिद्ध है। अन्य बातों के साथ इस सन्धि में यह भी तय हुआ कि अंग्रेज व्यापारी आगे से नमक, तम्बाकू सुपारी इत्यादि सभी चीजों के ऊपर नौं फी सदी महसूल दिया करें और हिन्दुस्तानी व्यापारी इन सभी चीजों पर पच्चीस फी सदी महसूल दिया करें। निस्सन्देह यह सन्धि हिन्दुस्तानी व्यापारियों के साथ न्यायोचित न थी, फिर भी मीर कासिम ने शान्ति की इच्छा से लाचार होकर उसे स्वीकार कर लिया।

वन्सीटार्ट और हेस्टिंग्स दोनों ने ही सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर- किये और दोनों ने कलकत्ते की कौन्सिल के नाम अपने १५ दिसम्बर के पत्र में इस सन्धि की न्याय-पूर्णता और उदारता तथा मीर कासिम की सच्चाई-तीनों की ही स्पष्ट शब्दों में प्रसंशा की है। वन्सीटार्ट ने मीर कासिम से यह वादा किया कि कलकत्ते वापस पहुँच कर मैं कम्पनी और सरकार के बीच के सब मामले तय कर दूंगा। किन्तु कलकत्ते पहुँचते ही बजाय सब मामले तय करने के गवर्नर वन्सीटार्ट ने कम्पनी और उसके कर्मचारियों की धींगा धींगी को पूर्ववत जारी रखने के लिए जगह-जगह नई फौजे रवाना कर दी। इसके साथ-साथ कलकत्ते की अंग्रेजी कौन्सिल ने अपना नियमानुसार इजलास करके

तुरन्त अंग्रेजी कोठियों और उनके गुमाश्तों के पास ये स्पष्ट सूचनाएँ भेज दी कि मुंगेर की शर्तों पर कदापि कोई अमल न करे और यदि नवाब के कर्मचारी अमल कराने पर जोर दें तो उनकी खूब गत बनाई जावे। इसी इजलास में यह भी कहा गया कि मुँगेर की सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए वन्सी टार्ट ने नवाब मीरकासिम से सात लाख रुपये रिश्वत ली थी। जो हो सन्धि-पत्र की स्याही अभी सूखने भी न पाई थी कि सन्धि तोड़ दी गई। नवाब के कर्मचारी यदि कोई बोलते थे या महसूल माँगते थे तो पूर्ववत् उन पर मार पड़ती थी। मीर कासिम ने वन्सीटार्ट को ५ मार्च सन् १७६३ के पत्र में फिर लिखा कि—'तीन साल से सरकार को अंग्रेजों से एक भी पाई अथवा एक भी चीज नहीं मिली, इसके विपरीत सरकार के कर्मचारियों से अंगरेज बराबर जुर्माने और हर्जाने वसूल कर रहे हैं।"

मीर कासिम ने बार-बार शिकायत की किन्तु कोई फल न हुआ। अंगरेज व्यापारियों का बिना महसूल व्यापार करना और देशी व्यापारियों से भारी महसूल वसूल किया जाना दोनों बराबर जारी रहे। इस घोर अन्याय के कारण देशी व्यापारियों का अस्तित्व ही मिटता जा रहा था। लाचार होकर और देशी व्यापारियों को जीवित रखने का और कोई उपाय न देख देख मार्च सन् १७६३ को मीर कासिम ने अपनी सूबेदारी भर में चुङ्गी की सब चौकियों के उठवा दिये जाने की आज्ञा दे दिया और प्रान्त भर में एलान कर दिया कि आज से दो साल तक

किसी तरह के तिजारती माल पर किसी तरह का भी महसूल न लिया जाय। इसमें सन्देह नहीं कि मीर कासिम की सालाना आमदनी को इससे गहरा धक्का पहुँचा, किन्तु देशी व्यापारियों को अन्याय से बचाने और उन्हें जीवित रखने का मीर कासिम को और कोई उपाय न सूझ सकता था। इस आज्ञा से मीर कासिम की विवशता और उसकी प्रजा पालकता दोनों समान रूप से प्रकट होती हैं।

असंख्य हिन्दुस्तानी व्यापारियों को इस आज्ञा से लाभ हुआ। स्वार्थ-परायण अंग्रेजों को यह कब सहन हो सकता था। तुरन्त कलकत्ते में कौन्सिल की फिर बैठक हुई। उसमें यह तय हुआ कि नवाब की नई आज्ञा अनुचित है और नवाब को मजबूर किया जाय कि अपनी इस आज्ञा को वापस लेकर देशी व्यापरियों से पहले की ही तरह महसूल वसूल करे। ऐमयाट और हे नामक दो अंग्रेज मुंगेर जाकर नवाब से मिलने और ये सब बातें नये सिरे से तय करने के लिए नियुक्त हुए।

बंगाल की प्रजा के साथ अत्याचारों और बंगाल के शासक के साथ जबर्दस्तियों का प्याला अब लबालब भर चुका था। मीर कासिम को यह भी मालूम था कि बंगाल के तीनों प्रान्तों को दीवानी के अधिकार प्राप्त करने के लिए दिल्ली सम्राट के साथ अंग्रेजों का गुप्त पत्र-व्यवहार बराबर जारी है। मीर कासिम और वन्सीटार्ट के बीच इस समय जो पत्र-व्यवहार हुआ वह पढ़ने के योग्य है। मीर कासिम ने बार-बार अपने कर्मचारियों

और अपनी प्रजा के ऊपर अंग्रेजों के अत्याचारों की शिकायतें की। अत्यन्त दीनतापूर्ण शब्दों में उसने लिखा कि—'कम्पनी के जो तिलंगे सिपाही सम्राट और सूबेदार की सहायता के लिए कह कर रखे गये थे और जिनके खर्च के लिए मैं कम्पनी को पचास लाख रुपये की जमीदारी दे चुका हूँ, वे अब देश भर में मेरे आदमियों के विरुद्ध काम में लाये जा रहे हैं।' अन्त को एक पत्र में उसने साफ लिखा कि—'मुझे मालूम हुआ है कि बहुत से अँग्रेज एक दूसरा सूबेदार खड़ा करना चाहते हैं। × × × प्रत्येक आदमी पर प्रकट है कि यूरोप वालों का विश्वास नहीं किया जा सकता।' मीर कासिम के साथ अंग्रेजों के इस समय के व्यवहार की आलोचना करते हुए मालेसन लिखता है

"किसी भी जाति के इतिहास में उनसे अधिक अनुचित नीच और अधिक लज्जाजनक कार्रवाइयों की मिसाले नहीं मिलती, जो कार्रवाइयाँ कि मीरजाफर को गद्दी से हटाने के बाद तीन वर्ष तक कलकत्ते की अंग्रेज गवर्मेण्ट ने की।"

मालेसन यह भी लिखता है कि—"मीरकासिम का एक मात्र अपराध यह था कि उसने यूरोप-निवासियों के अत्याचारों से अपनी प्रजा की रक्षा करने का प्रयत्न किया।' इस पर भी 'मीरकासिम अपनी स्वाधीनता और प्रजा के सुख का नाश किये बिना किसी कीमत पर भी अंग्रेजों के साथ अमन से रहने के लिए उत्सुक था।'

किन्तु मीरकासिम के विरुद्ध षड़यन्त्र अभी भली भाँति पकने न पाया इसलिए उसके अन्तिम पत्र के उत्तर में वन्सीटार्ट ने मीरकासिम को लिख दिया—"यह बात कि अंग्रेज दूसरा सूबेदार खड़ा करना चाहते हैं, चालबाज लोगों की मनगढ़न्त है × × ×।"

इसके बाद जब वन्सीटार्ट ने मीरकासिम को लिखा कि ऐमयाट और हे एक नई सन्धि करने के लिए मुँगेर भेजे गये हैं तो मीरकासिम ने उत्तर में लिखा कि—"हर साल नई सन्धि करना नियम के विरुद्ध है, क्योंकि इन्सानों की सन्धियों की कुछ उमरें होती हैं।" उसने यह भी लिखा कि—"एक ओर आप चारों ओर फौजें भेज रहे हैं और दूसरी ओर मुझसे बात चीत करने के लिए आदमी भेज रहे हैं।"

वास्तव में ऐमयाट और हे का मुंगेर भेजना केवल एक चाल थी। बंगाल के अन्दर तीसरी क्रान्ति के लिए अंग्रेजों की तैयारी जोरों के साथ जारी थी। मीरकासिम को इतने में पता चला कि मेरे विरुद्ध षड़यन्त्रों का जाल स्वयं मेरी राजधानी के अन्दर पूरा फैल चुका है। वही जगतसेठ जो छः साल पहले सिराजुद्दौला के पतन में अंग्रेजों का सहायक हुआ था अब फिर इस नये षड़यन्त्र में शामिल था। पता चलते ही मीरकासिम ने जगत सेठ और उसके भाई स्वरूपचन्द दोनों को मुंगेर बुलाकर नजरबन्द कर दिया। ये दोनों भाई मीरकासिम की प्रजा थे।

अंग्रेजों को इस पर विरोध करने का कोई अधिकार न था। किन्तु वन्सीटार्ट ने इस पर भी विरोध किया।

इसी बीच ऐमयाट और हे दोनों अंग्रेज दूत मुँगेर पहुँच गये। २५ मई सन् १७६३ को इन दोनो ने कम्पनी की ओर से ग्यारह नई माँगे लिखकर मीरकासिम के सामने पेश कीं—

१—यह कि अंग्रेज कौंसिल ने तिजारती महसूल और एजेण्टों के विषय में जो कुछ तय किया है, नवाब उसे ज्यों का त्यों लिखकर स्वीकार करें।

२—यह कि नवाब अपनी प्रजा अर्थात् देशी व्यापारियों पर नये सिरे से महसूल लगावे और अंग्रेजों की बिना महसूल तिजारत जारी रहे,

३—यह कि अंग्रेजों और उनके जिन-जिन आदमियों की नई आज्ञा के कारण व्यापारिक हानि हुई है, नवाब उन सब का हर्जाना पूरा करें,

४—यह कि नवाब अपने उन सब कर्मचारियों को जिन्हें अंग्रेज कहें, दण्ड दे। इत्यादि

स्पष्ट है कि कोई स्वाभिमानी शासक इन शर्तों को स्वीकार न कर सकता था। ऐमयाट का व्यवहार भी नवाब के साथ अत्यन्त रूखा और घृष्टता पूर्ण था। यहाँ तक कि उसने मीर-कासिम की शिकायतें सुनने तक से इन्कार कर दिया। वास्तव में अंग्रेज युद्ध चाहते थे और युद्ध की पूरी तैयारी कर चुके थे। १४ अप्रैल सन् १७६३ को ही अँगरेजों ने अपनी सेना को तैयार

हो जाने की आज्ञा दे दी थी। पटने में एलिस नामक एक अंग्रेज कम्पनी के एजेन्ट की हैसियत से रहता था। एलिस ने वहाँ के नायब नाजिम को दिक करना और बात-बात में उसकी आज्ञाओं का उल्लङ्घन करना आरम्भ कर दिया था। मीर कासिम ने अनेक बार बन्सीटार्ट से एलिस के व्यवहार की शिकायत की किन्तु व्यर्थ।

अब कलकत्ते से एलिस को लिख दिया गया कि तुम आज्ञा पाते ही पटने पर अधिकार करने के लिए तैयार रहो। कम्पनी की काफी सेना पहले ही पटने पहुँचा दी गई थी। उधर ऐमयाट सुलह के लिए मुंगेर में ठहरा हुआ था। और इधर हथियारों से भरी हुई कई नौकाएँ एलिस की सहायता के लिए कलकत्ते से पटने की ओर जा रही थीं। जब ये नौकाएं मुंगेर के पास से निकलीं तब नवाब उन्हें देखकर चौंक गया। उसने नौकाओं को आगे बढ़ने से रोक दिया और २ जून सन् १७६३ को बन्सीटार्ट को लिखा कि—'कम्पनी की नई माँगें अनुचित और पहली सन्धियों के विरुद्ध हैं××× पटने की अंग्रेजी सेना या तो कलकत्ते वापस बुला ली जावे और या मुंगेर में रखी जावे, नहीं तो मैं निजामत छोड़ दूंगा।'

इसके जवाब में ऐमयाट ने मीर कासिम से साफ-साफ कहा कि बजाय वापस बुलाने के पटने में अंग्रेजी सेना बढ़ाई जायगी। हथियारों की नौकाएँ मुंगेर में रुकते ही कलकत्ते की कौंसिल ने, जो केवल एक बहाना खोज रही थी। ऐमयाट और हे को

वापस बुला लिया और एलिस को आज्ञा दे दी कि तुम तुरन्त पटने पर हमला करके नगर पर अधिकार कर लो ।

युद्ध का आरम्भ

युद्ध का आरम्भ हो गया । २४ जून की रात को अचानक हमला करके एलिस ने पटने पर अधिकार कर लिया । मीर कासिम की सहनशीलता की कोई सीमा न थी । इतिहास-लेखक ऐल्फ़िन्सटन लिखता है कि —"अत्यन्त नाराज होते हुए भी उसने धैर्य और सहनशीलता से काम लिया । किन्तु अब लाचार होकर उसे एलिस के विरुद्ध सेना भेजनी पड़ी । मीर कासिम की सेना ने पटने पहुँच कर फिर से नगर को अंगरेजों से जीत लिया । इस बार के युद्ध में कम्पनी के लगभग तीन सौ यूरोपियन और ढाई हजार हिन्दुस्तानी सिपाही काम आये । एलिस और कई यूरोपियन साथी १ जुलाई को कैद करके मुंगेर पहुँचा दिये गये ।

२८ जून को मीर कासिम ने वन्सीटार्ट और उसकी कौन्सिल के नाम यह पत्र लिखा—

"××× रात को डाकू की तरह मिस्टर एलिस ने पटने के किले पर आक्रमण किया, वहाँ के बाजार को और व्यापारियों तथा नगर के लोगों को लूटा और सुबह से तीसरे पहर तक लूट और हत्याकांड जारी रखा । ××× चूँकि आप लोगों ने अन्याय और अत्याचार के साथ शहर को रौंद डाला है, लोगों को बर्बाद किया है और कई लाख का माल लूट लिया

है, इसलिए अब न्याय यही है कि कम्पनी गरीबों का नुकसान भर दे जैसा पहले कलकत्ते में हो चुका है। आप ईसाई लोग विचित्र साथी निकले। आपने सन्धि की, उस पर ईसा मसीह के नाम से कसम खाई। इस शर्त पर कि आपकी सेना नित्य मेरा साथ देगी और मेरी सहायता करेगी। आपने अपनी सेना के खर्च के लिए मुझसे इलाका लिया। वास्तव में मेरे ही नाश के लिए आप सेना रख रहे थे, क्योंकि उसी सेना के हाथों ये सब कार्य हुए हैं × × × इसके अलावा कई साल से अंग्रेज गुमाश्तों ने मेरे राज्य के भीतर जो अत्याचार किये हैं, जो बड़ी-बड़ी रकमें लोगों से जबर्दस्ती वसूल की हैं और जो नुकसान किये हैं उचित न्याय यह है कि कम्पनी इस समय उन सब का हर्जाना दे। आपको सिर्फ इतनी ही तकलीफ करने की जरूरत है कि जिस तरह बर्धमान और दूसरे इलाके आपने लिये थे उसी तरह मुझ पर कृपा करके आप उन्हें वापस लौटा दीजिए।"

इसमें सन्देह नहीं कि सभी तरह से लाचार होकर मीर कासिम ने अब कड़ाई करने का पक्का विचार कर लिया।

७ जुलाई को यह पत्र कलकत्ते पहुँचा। उसी दिन कलकत्ते की अंग्रेज कौन्सिल की ओर से मीर कासिम के साथ युद्ध की घोषणा प्रकाशित हुई, जिसमें प्रजा को यह सूचना दी गई कि मीर कासिम के स्थान पर मीर जाफर को अब फिर से बंगाल की गद्दी पर बैठा दिया गया है। नवाब मीर जाफर के ही नाम पर बंगाल भर मे सेना एकत्र की गई और मीर जाफर के ही

नाम पर प्रजा से अंग्रेजी सेना का साथ देने के लिए कहा गया। किन्तु इस घोषणा से पहले ही पटना विजय भी हो चुका था और फिर से छिन भी चुका था। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कलकत्ते के अंग्रेज व्यापारियों की कौन्सिल को बंगाल के सूबेदार को गद्दी से हटा कर दूसरा सूबेदार नियुक्त करने का अधिकार कभी किसी ने न दिया था।

७ जुलाई से पहले ही एक और नई सन्धि मीर जाफर के साथ कर ली गई थी, जिसके विषय में इतिहास लेखक ऐल्फिन्सटन लिखता —

'यद्यपि अधिकांश अंगरेज कहते यह थे कि मीर जाफर को फिर से गद्दी पर बैठाना केवल उसके न्यायपूर्ण अधिकारों का उसे वापस देना है, तथापि वे उससे नई और अधिक कड़ी शर्तें स्वीकार करा लेने में न झिझके।'

बर्धमान इत्यादि तीनों जिले और जितनी रिआयतें मीर कासिम ने उन्हें दे रखी थी वे सब इस नई सन्धि द्वारा कायम रखी गई। ऐल्फिन्सटन लिखता है कि—'आगे के लिये यह नियत कर दिया गया कि नवाब छः हजार सवार और बारह हजार पैदल से अधिक सेना अपने पास न रखे। सारे हिन्दुस्तानी व्यापारियों से पहले की तरह सभी माल पर पच्चीस फी सदी महसूल लिया जावे। अंगरेज व्यापारी नमक पर ढाई फी सदी महसूल दिया करें और बाकी हर तरह के माल पर उन्हें बिना महसूल दिये देश भर में व्यापार करने का

अधिकार रहे। मीर जाफर अंग्रेजों को युद्ध के खर्च के लिए तीस लाख, अँग्रेजी स्थल-सेना के लिए पच्चीस लाख और जल-सेना के लिए साढ़े बारह लाखे रूपये दे और अंगरेज व्यापारियों का जितना नुकसान मीर कासिम के समय में देशी व्यापारियों से महसूल न लिये जाने के कारण हुआ है, अब मीर जाफर उसे पूरा करे। सन्धि के समय कहा गया कि यह व्यक्तिगत हर्जाने की रकम पाँच लाख रूपये से अधिक न होगी, किन्तु बाद में इस पाँच लाख रूपये की जगह तिरपन लाख रूपये वसूल किए गये। सन्धि की इन शर्तों के विषय में कर्नल मालसेन लिखता है कि—'मीर कासिम की देशभक्ति ने जिन-जिन बातों से इन्कार कर दिया था, वह मीर जाफर के नीच स्वार्थ ने अंगरेजों को प्रदान कर दीं।"

इतिहास-लेखक स्क्रैफटन लिखता है कि—"नवाब इसके बाद केवल एक बैंक की तरह रह गया, जिसमें कम्पनी के कर्मचारी जितनी बार और जितनी रकम चाहें, ले सकते थे।"

कम्पनी की सेना मेजर एडम्स के अधीन ५ जुलाई को अर्थात् युद्ध की घोषणा से दो दिन पहले कलकत्ते से मुर्शिदाबाद की ओर रवाना हुई। मीर कासिम की सेना सिपहसालार मोहम्मद तकी खाँ के अधीन मुंगेर से चली। तकी खाँ एक वीर और योग्य सेनापति था। किन्तु लिखा जाता है कि उसकी तमाम तजवीजों में बात-बात में मुर्शिदाबाद का नायब नाज़िम सय्यद मोहम्मद खाँ जो जाहिर है कि अंगरेजों से मिला हुआ था रूकावटें

डालता रहता था। स्वयं उसकी सेना के अन्दर अंगरेज पूरी सफलता के साथ विश्वासघात के बीज बो चुके थे! तीन स्थानों पर दोनों ओर की सेनाओं में कई छोटे-बड़े युद्ध हुए। इन युद्धों का विस्तृत वृत्तान्त "सीअरुल-मुताखरीन" नामक पुस्तक में दिया हुआ है।

उस पुस्तक में मुसलमान सेना के अन्दर के एक खास देश घातक मिर्जा ईरज खाँ का ज़िक्र आता है, जिसने भीतर ही भीतर अंगरेज से मिलकर मीरकासिम और महोम्मद तकी खाँ के साथ विश्वासघात किया। करीब दो सौ यूरोपियन और दूसरे ईसाई जो नवाब की सेना में विविध पदों पर और खास कर तोपखाने में नौकर थे, ऐन मौके पर शत्रु के पक्ष में जा मिले। सारांश यह कि इन युद्धों में से किसी एक में मोहम्मद तकी खाँ मार डाला गया। इन्हीं युद्धों के सम्बन्ध में कर्नल मालसेन लिखता है कि—"अँगरेजों की सफलता में जितनी सहायता भारतीय नेताओं और नरेशों की परस्पर ईर्ष्या से मिलती है उतनी दूसरी किसी भी चीज से नहीं मिली।"

ऊदवानाला का युद्ध

मीर कासिम की सेना ने अब ऊदवानाला नामक ऐतिहासिक स्थान पर अपना अन्तिम पड़ाव किया। प्राकृतिक स्थिति और मीर कासिम की दूरदर्शिता दोनों ने मिलकर इस स्थान को अत्यन्त सुरक्षित और अभेद्य बना रखा है। एक ओर गंगा थी दूसरी ओर ऊदवानाला नाम की गहरी नदी, जो गंगा में

गिरती थी। तीसरी ओर राजमहल की दुरारोह पहाड़ियाँ और चौथी ओर मीर कासिम की बनवाई हुई जबर्दस्त खाड़ियाँ और किलेबन्दी जिसके ऊपर सौ-सौ से ऊपर मजबूत तोपें लगी हुई थीं। पहाड़ियों की तलहटी में खाड़ियों से ऊपर को ओर एक झील और एक लम्बी चौड़ी दलदल थी। इस दलदल के अन्दर से एक अत्यन्त पेचदार रास्ता किले से बाहर आने-जाने का था कि जिसका अंगरेजी सेना को किसी तरह पता न चल सकता था। एक महीने तक मीर कासिम की सेना इस किले के भीतर और कम्पनी का सेना जिसके साथ बूढ़ा मीर जाफ़र भी था, ऊदवानाला के बाहर पड़ी रही, किन्तु न अंगरेज अपनी तोपों के गोलों से सँगीन किलेबन्दी पर किसी तरह का असर पैदा कर सके और न भीतर की सेना को तनिक भी हानि पहुँचा सके। दूसरो ओर मिर्जा नजफ खाँ नामक एक साहसी और परहेज-गार मुसलमान सेनापति प्रतिदिन रात के पिछले पहर उसी दल-दल के रास्ते आकर अँगरेजी सेना पर धावा करता और बहुतों को खत्म कर तथा लूट का माल ले कर उसी रास्ते से लौट जाता। अंगरेजी सेना किसी तरह उनका पीछा न कर पाती थी। युद्ध की सामग्री भी अंग्रेजों के बजाय मीर कासिम की सेना के पास कहीं अधिक उत्तम थी। अंग्रेज इतिहास-लेखक ब्रूम लिखता है कि—'भारत की बनी हुई जो बन्दूकें इस समय मीरकासिम की सेना के पास थीं वह अंग्रेजी सेना की, इंगलिस्तान की बनी हुई बन्दूकों से धातु, बनावट, मजबूती, उपयोगिता

इत्यादि सभी बातों में कहीं अच्छी थी, जाहिर था कि ईमानदारी के साथ अंग्रेज किसी तरह मीर मासिम पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते थे।

मीर कासिम की सेना का एक खास दोष, जो उसके लिए घातक सिद्ध हुआ, यह था कि उसने अनेक यूरोपियन और आरमीनियन ईसाइयों को अपनी सेना के अनेक बड़े-बड़े ओहदों पर नियुक्त कर रखा था। कलकत्ते में इस समय आरमीनिया का एक प्रसिद्ध ईसाई व्यापारी खोजा पेतरूस रहता था। इस व्यापारी का एक भाई खोजा ग्रिगरी मीर कासिम की सेना में एक अफसर था। और भी कई आरमीनियन ईसाई इस समय मीर कासिम की सेना में नौकर थे। मेजर एडम्स ने खोजा पेतरूस के द्वारा गुप्त पत्र व्यवहार कर इन समस्त लोगों को अपनी ओर फोड़ लिया।

इनके अलावा मीर कासिम की सेना में एक अँगरेज सैनिक भी था, जो कुछ समय पहले अंगरेजी सेना को छोड़कर नवाब की सेना में भरती हो गया था। इस अंगरेज को अपनी सेना में भरती कर लेना मीर कासिम के नाश का मूल कारण साबित हुआ। उसने मिर्जा नजफ खाँ के आने जाने के मार्ग को धीरे-धीरे भली भाँति देख लिया और एक दिन, जब कि मालूम होता है, कि भीतर के अन्य ईसाई विश्वासघातकों के साथ सारी योजना पक्की की जा चुकी थी, ४ सितम्बर की रात को लगभग दस बजे यह व्यक्ति नवाब की सेना से निकलकर अंगरेजों

की ओर चला आया और वहाँ से शत्रु की सेना को साथ ले उसी मार्ग से रातों रात अचानक नवाब की सेना पर आ टूटा। किले के भीतर के अनेक कर्मचारी शत्रु से मिले हुए थे और अनेक के विषय में "सीअरूल-मुताखरीन" से पता चलता है कि वे अपने स्थान की अभेद्यता और शत्रु की अशक्तता पर अत्याधिक भरोसा करके अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गये थे। ऐसी दशा में सेना का कर्त्तव्य विमूढ़ हो जाना स्वाभाविक था। परिणाम यह हुआ कि मीर कासिम के पूरे पन्द्रह हजार सैनिक उस रात के युद्ध में मारे गये।

इस अंगरेज विश्वासघातक के कार्य के विषय में कर्नल मालेसन लिखता है कि—

"केवल एक व्यक्ति के इस कार्य ने अंगरेजों के नैराश्य कों विश्वास में बदल दिया और इस कार्य के परिणाम ने मीर कासिम की सेना के आत्म-विश्वास को नैराश्य में बदल दिया। अंगरेजी सेना के लिए इस व्यक्ति ने इस मौके पर ईश्वर का काम किया। जनरल एडम्स ने मीर कासिम की सेना को केवल विजय ही नहीं किया बल्कि उसका संहार कर डाला।"

मीर कासिम की लगभग चार सौ तोपें इस युद्ध में अगरेजों के हाथ आईं। ऊदवानाला ही अंगरेज व्यापारियों के विरुद्ध बंगाल के भारतीय सूबेदारी की आशा का अन्तिम आधार था। ४ सितम्बर सन् १७६३ की रात को वह आशा सदा के लिए टूट गई। जो चीज सिराजुद्दौला के लिए पलासी साबित हुई वही

मीर कासिम के लिए ऊद्वानाला साबित हुआ और दोनों स्थानों पर लगभग एक ही प्रकार के उपायों द्वारा अंगरेज व्यापारियों ने बंगाल की सरकारी सेना पर विजय प्राप्त की।

ऊद्वानाला की पराजय का एक कारण यह भी बताया जाता है कि उस रात मीर कासिम स्वयं अपनी सेना के साथ किले के भीतर मौजूद न था। अंगरेज इतिहास-लेखक बोल्ट्स की राय है कि "यदि मीर कासिम स्वयं अपने कर्मचारियों को सावधान रखने और अपने सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिए मौजूद होता तो—"शायद ही नहीं वरन बहुत अधिक सम्भव था कि उस दिन से अंगरेज कम्पनी के पास इन प्रान्तों में एक फुट जमीन भी न रह जाती।"

मीर कासिम के शासन का अन्त

ऊद्वानाला की हार मीर कासिम के लिए एक बहुत बड़ा धक्का था। फिर भी उसने विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की और न वह इतनी जल्दी हिम्मत हारा। ऊद्वानाला के बाद उसने मुंगेर के किले को सम्हाला। यह किला भी अत्यन्त मजबूत था। उसकी रक्षा का उचित प्रबन्ध कर मीर कासिम अजीमाबाद (पटना) के लिए रवाना हो गया। कहा जाता है कि उसके जाते ही मुंगेर के किलेदार अरब अली खाँ ने नकद रिश्वत लेकर अपना किला चुपचाप अंग्रेजों के सुपुर्द कर दिया। अंग्रेजों ने मुंगेर पर अधिकार कर अब मीर कासिम का पीछा किया।

असहाय मीर कासिम को इस समय अपने चारों ओर

सिवाय दगा के और कुछ न दिखाई दिया। अंग्रेजों को अब केवल दो बातों की चिन्ता थी। एक एलिस इत्यादि जो अंग्रेज मीर कासिम के पास अभी तक कैद थे उन्हें छुड़ा लेना और दूसरे किसी प्रकार मीर कासिम को कैद करना। १६ सितम्बर सन् १७६२ को एडम्स और कारनाक ने मीर कासिम के एक फ्रान्सीसी नौकर जाँती को अन्य बातों के साथ-साथ यह भी लिखा—

"यदि आप हमारे आदमियों को मीर कासिम अली खाँ के हाथों के निकाल कर हमारे पास भेजने की तदबीर कर सकें तो आप अंग्रेजों की कृतज्ञता पर पक्का भरोसा रखिए. और हम आपको, पचास हजार रुपये तुरन्त देने का वादा करते हैं।"

"सीअरुल-मुंताखरीन" में लिखा है कि इसके बाद मीर कासिम को किसी तरह गिरफ्तार करने की अंगरेजों को चिन्ता हुई। वन्सीटार्ट और वारन हेंस्टिंग्स ने कलकत्ते के ईसाई सौदागर खोजा पेतरूस से, जिसे आगा बेदरूस भी कहते थे, खोजा ग्रिगरी के नाम जिसे गुरघिन खाँ भी कहते थे, इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखवाया। अचानक एक दिन रात को एक बजे मीर कासिम के एक विश्वस्त जासूस ने उसे जगाकर खबर दी— "आप बिछौने पर पड़े क्या कर रहे हैं अपका सेनापति गुरघिन खाँ आपको साफ़ फिरंगियों के हाथों में बेच रहा है। कुछ बाहर के लोगों के साथ और मालूम होता है कि भीतर के लोगों यानी आपके कैदियों के साथ भी उसकी साजिश हो चुकी है।"

अभी तक एलिस और उसके अंग्रेज साथियों के साथ मीर-

कासिम ने बड़ी उदारता का व्यवहार किया था। इन खुले राज-द्रोहियों को खत्म कर देने के बजाय वह तीन महीने से बराबर उन्हें आदर-पूर्वक अपने साथ रखे था और खिला-पिला रहा था किन्तु "सीअरुल-मुताखरीन" के अनुसार जब उसने देखा कि ये सब लोग अब भी मेरे विरुद्ध एक गहरी साजिश कर रहे हैं और बाहर से हथियार आदि का भी गुप्त प्रबन्ध कर चुके हैं तब उसने विवश होकर पटने में खोजा ग्रिगरी को, एलिस और उसके तमाम साथियों को, केवल एक अंग्रेज डाक्टर फुलरटन को छोड़कर जगतसेठ और उसके भाई महाराजा स्वरूपचन्द को अर्थात् उन सबको जो इस साजिश में शालिम थे, कत्ल करवा दिया। कहा जाता है कि खोजा ग्रिगरी इस साजिश का प्रधान था।

इसके बाद जब अंग्रेज पटने की ओर बढ़े तब मीर कासिम ने कर्मनासा नदी को पार कर कुछ सेना और तोपखाने सहित ४ दिसम्बर सन् १७६३ को अपनी सीमा से निकल कर नवाब शुजाउद्दौला के सूबे अवध में प्रवेश किया। तीन साल तक वह बँगाल का सूबेदार रहा। उसका समस्त शासन-काल आपत्तियों से भरा हुआ था। अब इस प्रकार उसके शासन-का अन्त हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि वह योग्य वीर तथा अपने देश और प्रजा का सच्चा हित-चिन्तक था। सिराजुद्दौला के समान वह भी विश्वासघात का शिकार हुआ! उसके शासन काल और पतन के वृत्तान्त को पढ़कर तथा उसके विरोधियों के

समस्त कार्यों की तुलना कर प्रत्येक निष्पक्ष मनुष्य के चित्त में उसकी ओर दया, प्रेम तथा सहानुभूति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। वास्तव में बहुत दर्जे तक वह अन्तिम वीर था, जिसने बंगाल की स्वाधीनता की रक्षा के लिए एक बार जी तोड़ प्रयत्न किया और इसी प्रयत्न में अपने आप को मिटा डाला।

मीर जाफ़र का अन्त

मीर जाफर को भी अंग्रेजों ने अपनी महत्त्वाकांक्षा की शिखर तक पहुँचने के लिए बतौर एक सीढ़ी के इस्तेमाल किया और ज्योंही वे ऊपर तक पहुँच गये, उन्होंने बिना संकोच उसे लात मार कर अलग कर दिया। उसके जीवन के अन्तिम दिनों को उन्होंने अत्यन्त दुःखमय बना दिया। अक्टूबर सन् १७६४ में उससे पांच लाख रुपये माहवार कम्पनी को देने का वादा करा लिया, जिससे वह अन्त तक बहुत तंग रहा और नित्य शिकायत करता रहा। सन्धि से बाहर नित्य नई और बढ़-बढ़ कर माँगें उससे की जाती रहीं। आये दिन की इन जबर्दस्तियों ने उसके स्वास्थ्य और आयु दोनों पर बुरः प्रभाव डाला। प्रसिद्ध इतिहास लेखक सर विलियम हण्टर लिखता है—

"मीर जाफर जनवरी सन् १७६५ में मरा और कहा जाता है है कि जिस अनुचित ढंग से कलकत्ते के अंगरेजों ने अपने व्यक्तिगत नुकसानों के हर्जाने की अदायगी के लिए उससे तकाजे शुरू किये, उनसे उसकी मौत और जल्दी हुई।"

मीर जाफर के बड़े बेटे मीरन की हत्या का हाल पाठकों को

बतलाया जा चुका है। मीर जाफर की मृत्यु के बाद उसका दूसरा बेटा नजमुद्दौला अब मुर्शिदाबाद की गद्दी पर बैठा किन्तु असम्भव था कि अंगरेज हर ऐसे अवसर से पूरा लाभ न उठाते।

क्लाइव का फिर भारत आना

कम्पनी का कारबार अब बहुत बढ़ गया था। उसकी आकाँक्षाएँ अत्यन्त ऊँची हो गई थी। इस कारबार की सुव्यवस्था और इन आकाँक्षाओं की पूर्ति के लिए कम्पनी के डाइरेक्टरों ने क्लाइव को जो अब 'लार्ड क्लाइव' था, दुबारा भारत भेजना आवश्यक समझा। क्लाइव फिर एक बार 'फोर्ट विलियम का गवर्नर' नियुक्त हुआ। जिस समय क्लाइव इँगलिस्तान से कलकत्ते आ रहा था, मद्रास में उसने मीरजाफर की मृत्यु का समाचार सुना। उसका खास उद्देश्य इस समय बंगाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार सम्राट शाहआलम से प्राप्त करना था। इतिहास लेखक ह्वीलर लिखता है—

"मीर जाफर की मृत्यु के समाचार को सुनकर क्लाइव बहुत प्रसन्न हुआ। वह अब बंगाल प्रान्तों के राज-शासन में उस नवीन पद्धति को चालू करने के लिए उत्सुक था, जिसका सात वर्ष से अधिक हुए वह इंगलिस्तान के प्रधान मंत्री पिट से उल्लेख कर चुका था। वह चाहता था कि एक ऐसे नये आदमी को नवाब बना दिया जाय जो शून्य मात्र हो, सारा शासन-प्रबन्ध हिन्तुस्तानी कर्मचारियों के हाथो में रहे, असली मालिक अंग्रेज रहें, वे ही मालगुजारी वसूल करें, तीनों प्रान्तों के बाहर

के हमलों और भीतर के विद्रोहों से रक्षा करें, युद्ध करें और सन्धियाँ करें किन्तु अँग्रेजों की यह बादशाहत जन-साधारण की आंखों से छिपी रहे। वे केवल नवाब का नाम लेकर और मुगल सम्राट के दिये हुए अधिकार से शासन करते रहें।"

क्लाइव को उस समय तक यह मालूम न था कि अंग्रेजों ने नजमुद्दौला को नवाब स्वीकार कर लिया है। उसकी तजवीज यह थी कि मीर जाफर के छः वर्ष के एक पोते को गद्दी पर बैठा कर उसके नाम पर अपनी यह समस्त योजना पूरी करे।

मई सन् १७६५ में क्लाइव कलकत्ते पहुँचा। यहां आकर जब उसने सुना कि स्पेन्सर और उसके साथियों ने नजमुद्दौला को नवाब स्वीकार कर लिया और इस सौदे में बीस लाख रुपये नकद अपनी जेबों में भर लिये तब क्लाइव को बड़ा क्रोध आया। फिर भी वह भारत पहुँचते ही अपनी पूर्वोक्त योजना की पूर्ति से प्रयत्नों में लग गया।

सम्राट शाहआलम उन दिनों इलाहाबाद में था और बंगाल के तीनों प्रान्तों की 'दीवानी' के अधिकार सम्राट से प्राप्त कर लेने की कोशिशें अँग्रेज पहले भी कर चुके थे। यही बात क्लाइव की ऊपर लिखी योजना में भी शामिल है। उसने इस कार्य के लिए अब सीधे इलाहाबाद पहुँचने का इरादा किया।

मार्ग में सब से पहले क्लाइव मुर्शिदाबाद में ठहरा। वहां पर मोहम्मद रजा खाँ की सहायता से क्लाइव ने पाँच लाख रुपये नकद बतौर नजर के अपने लिए नवाब नजमुद्दौला से

वसूल किये और शेष इस तरह का पक्का प्रबन्ध कर दिया कि जिससे भविष्य के लिए प्रायः समस्त क्रियात्मक सत्ता अंग्रेजों के हाथों में आ गई और सूबेदार केवल एक नाम मात्र की चीज रह गया। वहाँ से चलकर क्लाइव जनरल कारनक के पास बनारस पहुँचा !

कम्पनी को दीवानी के अधिकार

बनारस से आगे बढ़कर क्लाइव इलाहाबाद पहुँचा। ९ अगस्त सन् १७६५ ई० को उसने सम्राट शाह आलम से भेंट की और उसी दिन बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार अंग्रेज कम्पनी को देकर निर्बल तथा अदूरदर्शी शाह-आलम ने मुर्शिदाबाद की सूबेदारी और मुगल साम्राज्य दोनों की मौत के पर्वाने पर हस्ताक्षर कर दिये।

कम्पनी को बँगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी का अधिकार प्राप्त होने के बाद अँग्रेजों को खुल कर स्वतन्त्रता-पूर्वक अपनी इच्छानुसार मनमानी कार्रवाई करने का अवसर प्राप्त हो गया। फिर उसके बाद भारत में अंग्रेजों का मुकाबला करने के लिये कोई ऐसी संगठित शक्ति न रह गई जो इन विदेशियों को देश से बाहर निकालने में समर्थ होती। फल स्वरूप समस्त भारत में अपना प्रभुत्व और सत्ता का विस्तार करने के लिये उन्हें खुला और साफ रास्ता मिल गया।

—::❀:: समाप्त ::❀::—